MANGALAYATAN
UNIVERSITY
Learn Today to Lead Tomorrow

Micro Economics

ECO-1101

Edited By

Prof. R.C Sharma

DIRECTORATE OF DISTANCE AND ONLINE EDUCATION

MANGALAYATAN UNIVERSITY

विषय-सूची

1.	**अर्थशास्त्र का अर्थ, परिभाषा एवं क्षेत्र**	**1-19**
	1.1. उद्देश्य (Objectives)	1
	1.2. प्रस्तावना (Introduction)	1
	1.3. अर्थशास्त्र एवं व्यष्टिगत अर्थशास्त्र (एक परिचय) (An Introduction: Economics and Microeconomics)	2
	1.4. अर्थशास्त्र की विभिन्न परिभाषाएँ एवं प्रकृति	3
	1.5. अर्थशास्त्र के क्षेत्र (Scope of Economics)	12
	1.6. व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र में अन्तर	17
	1.7. व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र की पारस्परिक निर्भरता	17
	1.8. सारांश (Summary)	18
	1.9. अभ्यास प्रश्न (Review Questions)	19
2.	**माँग एवम् पूर्ति**	**20-87**
	2.1. उद्देश्य (Objectives)	21
	2.2. प्रस्तावना (Introduction)	21
	2.3. माँग की धारणा (Concept of Demand)	21
	2.4. माँग तालिका तथा माँग वक्र (Demand Schedule and Demand Curve)	23
	2.5. माँग के निर्धारक तत्व या माँग फलन (Determinants of Demand or Demand Function)	25
	2.6. विभिन्न निर्धारक तत्व कैसे कार्य करते हैं? (How do Different Determinants Work?)	26
	2.7. माँगी गई मात्रा में परिवर्तन और माँग में परिवर्तन (Change in Quantity Demanded and Change in Demand) *अथवा* माँग वक्र पर संचलन और माँग वक्र का खिसकाव (Movement Along Demand Curve and Shift of the Demand Curve)	30
	2.8. माँग में विस्तार तथा वृद्धि में अंतर (Distinction between Extension and Increase in Demand)	34
	2.9. माँग में संकुचन तथा कमी में अंतर (Distinction between Contraction and Decrease in Demand)	35
	2.10. माँग की लोच (Elasticity of Demand)	36
	2.11. माँग की कीमत लोच (Price Elasticity of Demand)	36
	2.12. माँग की कीमत लोच की दो अंतिम सीमाएँ (Two Extreme Situations of Price Elasticity of Demand)	37
	2.13. माँग की कीमत लोच की सामान्य स्थितियाँ (Normal Situations of Price Elasticity of Demand)	39
	2.14. माँग की लोच की विभिन्न स्थितियों $E = 1$, $E > 1$ तथा $E < 1$ को प्रकट करने वाली माँग वक्रें (Demand Curves Showing $E = 1$, $E > 1$ and $E < 1$)	39
	2.15. माँग की कीमत लोच की माप (Measurement of Price Elasticity of Demand)	40
	2.16. माँग की लोच से संबंधित कुछ प्रमेय (Some Theorems on Elasticity of Demand)	48
	2.17. माँग की कीमत लोच को प्रभावित करने वाले तत्व (Factors Determining the Price Elasticity of Demand)	49
	2.18. माँग की आय लोच (Income Elasticity of Demand)	51
	2.19. माँग की आय लोच की माप (Measurement of Income Elasticity of Demand)	51
	2.20. माँग की आय लोच की श्रेणियाँ (Degrees of Income Elasticity of Demand)	52
	2.21. माँग की आड़ी लोच (Cross Elasticity of Demand)	54

2.22. माँग की आड़ी लोच की माप (Measurement of Cross Elasticity of Demand) 54
2.23. माँग की आड़ी लोच की प्रकृति तथा श्रेणियाँ (Nature and Degrees of Cross Elasticity of Demand) 55
2.24. माँग की कीमत लोच का महत्त्व (Importance of Price Elasticity of Demand) 58
2.25. पूर्ति एवं संबंधित विचार (Supply and Related Concepts) 59
2.26. पूर्ति का नियम (Law of Supply) 63
2.27. पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन तथा पूर्ति में परिवर्तन (Change in Quantity Supplied and Change in Supply) 65
2.28. पूर्ति की लोच (Elasticity of Supply) 68
2.29. उपभोक्ता की बचत की व्याख्या 79
2.30. सारांश (Summary) 86
2.31. अभ्यास प्रश्न (Review Questions) 87

3. घरेलू, फर्म एवम् बाजार की संरचना **88–149**

3.1. उद्देश्य (Objectives) 89
3.2. प्रस्तावना (Introduction) 89
3.3. तटस्थता वक्र क्या है? (What is an Indifference Curve?) 90
3.4. तटस्थता अनुसूची (Indifference Schedule) 91
3.5. तटस्थाता वक्र चित्रीय प्रस्तुतीकरण (Graphical Presentation of Indifference Curve) 91
3.6. तटस्था मानचित्र (Indifference Map) 92
3.7. सीमांत प्रतिस्थापन की दर (Marginal Rate of Substitution) 93
3.8. सीमांत प्रतिस्थापन की दर घटती क्यों है? (Why does the Marginal Rate of Substitution Diminish?) 97
3.9. घटती सीमांत उपयोगिता का नियम तथा घटती सीमांत प्रतिस्थापन की दर के नियम की तुलना (Comparison of the Law of Diminishing Marginal Utility and the Law of Diminishing Marginal Rate of Substitution) 97
3.10. तटस्थता वक्र विश्लेषण की मान्यताएँ (Assumptions of Indifference Curve Analysis) 98
3.11. तटस्थता वक्रों की विशेषताएँ (Properties of Indifference Curves) 99
3.12. तटस्थता वक्रों के आकार के कुछ अपवाद (Some Exceptional Shapes of Indifference Curves) 103
3.13. बजट रेखा या कीमत रेखा (Budget Line or Price Line) 105
3.14. बजट रेखा की विशेषताएँ (Properties of Budget Line) 106
3.15. बजट रेखा या कीमत रेखा का स्थानांतरण (Shifting of the Budget Line or Price Line) 107
3.16. उपभोक्ता संतुलन (Consumer's Equilibrium) 109
3.17. उपभोक्ता संतुलन की दो आधारभूत शर्तें (Two Basic Conditions of Consumer's Equilibrium) 109
3.18. उपभोक्ता संतुलन पर वस्तु की कीमत में होने वाले परिवर्तन का प्रभाव (Effect of Change in Commodity Price on Consumer's Equlibrium) 111
3.19. कीमत प्रभाव (Price Effect) 112
3.20. आय प्रभाव (Income Effect) 113
3.21. प्रतिस्थापन प्रभाव (Substitution Effect) 113
3.22. प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव की पहचान या कीमत प्रभाव का प्रतिस्थापन प्रभाव और आय प्रभाव में विभाजन (Identification of Substitution Effect and Income Effect of Splitting Price Effect into Substitution Effect and Income Effect) 113
3.23. हिक्स का दृष्टिकोण (The Hicksian Approach) 113
3.24. गिफ्फन का विरोधाभास (Giffen's Paradox) 119
3.25. गिफ्फन वस्तुओं की स्थिति में आय तथा प्रतिस्थापन प्रभाव (Income and Substitution Effects in Case of Giffen Goods) 119

3.26. आय तथा प्रतिस्थापन प्रभावों के संभव संयोग (Possible Combinations of Income and Substitution Effects) 121
3.27. एकाधिकार क्या है? (What is Monopoly?) 122
3.28. एकाधिकार की विशेषताएँ (Features of Monopoly) 122
3.29. एकाधिकार में संतुलन (Monopoly Equilibrium)
अथवा
एकाधिकार में कीमत तथा उत्पादन का निर्धारण
(Determination of Price and Output under Monopoly) 124
3.30. कुल आय तथा कुल लागत वक्र दृष्टिकोण (Total Revenue and Total Cost Curve Approach) 124
3.31. सीमांत आय तथा सीमांत लागत दृष्टिकोण (Marginal Revenue and Marginal Cost Approach) 126
3.32. कीमत विभेद या भेदमूलक एकाधिकार (Price Discrimination or Discriminating Monopoly) 129
3.33. कीमत विभेद के प्रकार (Types of Price Discrimination) 130
3.34. कीमत विभेदीकरण की श्रेणियाँ (Degrees of Price Discrimination) 130
3.35. कीमत विभेद की आवश्यक शर्तें (Essential Conditions for Price Discrimination) 131
3.36. कीमत विभेद कब लाभदायक होता है? (When Price Discrimination is Profitable) 132
3.37. भेदमूलक एकाधिकार में कीमत एवम् उत्पादन का निर्धारण
(Price and Output Determination under Discriminating Monopoly) 132
3.38. क्या एकाधिकारी कीमत सदैव पूर्ण प्रतियोगी कीमत से अधिक होती है?
(Is Monopoly Price always Higher than the Perfectly Competitive Price?) 135
3.39. अपूर्ण व एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता (Imperfect and Monopolistic Competition) 135
3.40. अविश्वास नीति और एकाधिकार (Monopoly and Antitrust) 141
3.41. अपूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ (Imperfect Competition) 142
3.42. सारांश (Summary) 148
3.43. अभ्यास प्रश्न (Review Questions) 148

4. अर्थव्यवस्था का घरेलू बाजार 150–168

4.1. श्रम बाजार क्या है? (What is labour market) 150
4.2. श्रम बाजार की परिभाषा (Definition of labour market) 150
4.3. श्रम बाजार की विशेषताएँ: (Characteristics of labour market) 151
4.4. श्रम बाजार के प्रकार: (Types of labour market) 151
4.5. श्रम बाजार की माँग और आपूर्ति: (Demand and supply in labor) 152
4.6. व्युत्पन्न माँग (Derived demand) 153
4.7. रिकार्डो के सिद्धांत की भूमिका (Introduction to Ricardian Theory) 154
4.8. भूमि (Land) 154
4.9. सीमांत उत्पादकता का आशय तथा उसकी माप 159
4.10. प्रतियोगिता बाजार में सरकार की भूमिका 164
4.11. सारांश (Summary) 167
4.12. अभ्यास प्रश्न (Review Questions) 168

इकाई-1
(Unit-1)

अर्थशास्त्र का अर्थ, परिभाषा एवं क्षेत्र
(Meaning, Definition and Scope of Economics)

नोट

संरचना

1.1 उद्देश्य (Objectives)
1.2 प्रस्तावना (Introduction)
1.3 अर्थशास्त्र एवं व्यष्टिगत अर्थशास्त्र (एक परिचय)
(An Introduction: Economics and Micro Economics)
1.4 अर्थशास्त्र की विभिन्न परिभाषाएँ एवं प्रकृति
(Nature and Different Definitions of Economics)
1.5 अर्थशास्त्र का क्षेत्र (Scope of Economics)
1.6 व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र में अन्तर
1.7 व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र की पारस्परिक निर्भरता
1.8 सारांश (Summary)
1.9 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1.1. उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- अर्थशास्त्र एवं व्यष्टिगत अर्थशास्त्र के अर्थ को समझने में।
- अर्थशास्त्र की विभिन्न परिभाषाएँ एवं प्रकृति को समझने में।
- अर्थशास्त्र के क्षेत्र की व्यापक जानकारी समझने में।

1.2. प्रस्तावना (Introduction)

अर्थशास्त्र का अध्ययन क्यों?:–

अर्थशास्त्र सामाजिक विज्ञान की वह शाखा है, जिसके अंतर्गत वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, वितरण, विनिमय और उपभोग का अध्ययन किया जाता है **अर्थशास्त्र** का प्रयोग यह समझने के लिए किया जाता है कि अर्थव्यवस्था किस तरह से कार्य करती है और समाज में विभिन्न वर्गों का आर्थिक सम्बन्ध कैसा है।

अर्थशास्त्र के माध्यम से छात्रों को उन तत्वों का अध्ययन करना आवश्यक होता है जो उन्हें आगे चलकर निर्णयन में सहायक होते हैं। इस अध्याय के माध्यम से छात्रों को विभिन्न आर्थिक सिद्धान्त, उपभोक्ता व्यवहार एवं उपभोक्ता की बचत के विभिन्न तत्वों के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई है। इस इकाई के माध्यम से छात्रों को उपयोगिता ह्रास नियम एवं सम-सीमांत उपयोगिता नियम को सविस्तार समझाया गया है जिससे वे अर्थशास्त्र में पारंगत हो सकें।

अंग्रेजी भाषा के इकॉनॉमिक्स (Economics) शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के Economica या

ग्रीक भाषा के Oikonomia से हुई है। जिसके दो शब्दों–Oikos अर्थात गृह तथा Nomas अर्थात नियम के मेल से बना है। इस तरह इसका अर्थ 'गृह प्रबन्ध' है।

भारत में चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' नामक पुस्तक की रचना की थी परन्तु इस पुस्तक में अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र दोनों के ही विचार सम्मिलित थे। अरस्तू ने अपने ग्रंथ 'इकॉनॉमिका' (Economica) में अर्थशास्त्र को परिभाषित करने का प्रयत्न किया। वाणिज्यवादी अर्थशास्त्रियों और प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियों ने भी आर्थिक कार्य-कलापों पर अपने विचार व्यक्त किये थे।

नोट

अर्थशास्त्र का आज हम जिस रूप में अध्ययन करते हैं, वह आधुनिक अर्थशास्त्र के पिता एडम स्मिथ की देन है। 1776 ई. में एडम स्थिम (Adam Smith) की पुस्तक 'An Enquiry into the Nature and Causes of Wealth of Nations' के प्रकाशन के साथ अर्थशास्त्र का एक विज्ञान के रूप में विकास आरम्भ हुआ लेकिन एक वैज्ञानिक विषय के रूप में विकसित होने के बाद भी लगभग सौ वर्षों तक इसको राजनीतिक अर्थशास्त्र के रूप में जाना जाता रहा।

18वीं शताब्दी के अंत तथा 19वीं शताब्दी के मध्य (1776–1850) तक कई महान् अर्थशास्त्रियों जैसे–रिकार्डो, माल्थस, जे.बी. से ने एडम स्मिथ के विचारों का समर्थन किया। इन सभी अर्थशास्त्रियों को प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री कहा जाता है। 19वीं शताब्दी के मध्य के पश्चात् 20वीं शताब्दी के पहले तीन दशकों (1850–1930) तक मेन्जर, मार्शल, वालरस, पीगू, कूर्नो आदि अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

1.3. अर्थशास्त्र एवं व्यष्टिगत अर्थशास्त्र (एक परिचय) (An Introduction: Economics and Microeconomics)

परंपरागत रूप से अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु का अध्ययन दो व्यापक शाखाओं के अंतर्गत किया जाता रहा है : **व्यष्टि अर्थशास्त्र तथा समष्टि अर्थशास्त्र।** व्यष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत हम बाजार में उपलब्ध विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं के परिप्रेक्ष्य में विभिन्न आर्थिक अभिकर्ताओं के व्यवहार का अध्ययन करके यह जानने का प्रयास करते हैं कि इन बाजारों में व्यक्तियों की अंत:क्रिया द्वारा वस्तुओं तथा सेवाओं की मात्राएँ और कीमतें किस प्रकार निर्धारित होती हैं। इसके विपरीत समष्टि अर्थशास्त्र में हम कुल निर्गत, रोजगार तथा समग्र कीमत स्तर आदि समग्र उपायों पर अपना ध्यान केंद्रित करते हुए पूरी अर्थव्यवस्था को समझने का प्रयास करते हैं। हम यह जानना चाहते हैं कि समग्र उपायों के स्तर किस प्रकार निर्धारित होते हैं तथा उनमें समय के साथ परिवर्तन किस प्रकार आता है। समष्टि अर्थशास्त्र में अध्ययन के कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न इस प्रकार हैं–अर्थव्यवस्था में कुल निर्गत का स्तर क्या है? कुल निर्गत निर्धारण किस प्रकार किया जाता है? कुल निर्गत में समय के साथ किस प्रकार वृद्धि होती रहती है? क्या अर्थव्यवस्था के संसाधनों (उदाहरण के लिए श्रम) का पूर्ण रूप से उपयोग किया जा रहा है? संसाधनों का पूर्ण रूप से उपयोग न होने के क्या कारण हैं? कीमतों में वृद्धि क्यों होती है? अत: जिस प्रकार व्यष्टि अर्थशास्त्र में विभिन्न बाजारों का अध्ययन किया जाता है, वैसा समष्टि अर्थशास्त्र में नहीं। समष्टि अर्थशास्त्र में हम अर्थव्यवस्था के कार्य निष्पादन की समग्र अथवा समष्टिगत उपायों के व्यवहार का अध्ययन करने का प्रयास करते हैं।

व्यष्टि अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र की एक विधा है जो प्रबंधकीय निर्णय लेने में सहायक होती है। समयानुसार और परिस्थिति में परिवर्तन के फलस्वरूप व्यष्टि अर्थशास्त्र की प्रकृति और क्षेत्र में अंतर आता है। प्रबंधकीय अर्थशास्त्र को व्यावसायिक अर्थशास्त्र, व्यावसायिक प्रबंध का अर्थशास्त्र, प्रतिष्ठान का अर्थशास्त्र इत्यादि नाम से भी जाना जाता है। मैकनायर एवं मेरीयाम के अनुसार, "प्रबंधकीय अर्थशास्त्र व्यावसायिक परिस्थितियों का विश्लेषण करने के लिए, अर्थशास्त्र की सैद्धान्तिक विधि का प्रयोग है।"

बेट्स एवं पार्किंसन के अनुसार, "प्रबंधकीय अर्थशास्त्र फर्मों के सिद्धांत एवं व्यवहार के बर्ताव का अध्ययन है।" दरअसल प्रबंधकीय अर्थशास्त्र व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र का रूप है।

बोल्डिंग के अनुसार 'व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र विशेष फर्मों, परिवारों, वैयक्तिक कीमतों, मजदूरियों, आयों, वैयक्तिक उद्योग तथा विशिष्ट वस्तुओं का अध्ययन है।' .... जबकि समष्टिभावी अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र

का वह भाग है जो कि अर्थव्यवस्था की व्यक्तिगत इकाइयों का अध्ययन न करके समूहों (Aggregates) तथा औसतों से संबंध रखता है, इन समूहों को उपयोगी ढंग से परिभाषित करने का प्रयत्न करता है तथा उनके संबंधों की विवेचना करता है।

व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र का सूक्ष्म अध्ययन 'सम्पूर्ण (totality) की दृष्टि' से नहीं करता है बल्कि वह विभिन्न इकाइयों को टुकड़ों के रूप में अध्ययन करता है, उनकी अलग-अलग संस्थिति की समस्या पर विचार करता है तथा उनके अन्तर्वैयक्तिक संबंधों पर प्रकाश डालता है जैसा कि चैम्बरलिन ने कहा "व्यष्टिभावी मॉडल पूर्णतया व्यक्तिगत व्याख्या पर आधारित है तथा इसका संबंध अन्तर्वैयक्तिक संबंधों (interpersonal relations) से भी होता है।"

लर्नर ने भी अपने दृष्टिकोण में इस प्रकार के सूक्ष्म अध्ययन पर बल दिया। लर्नर के अनुसार "व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र किसी भी अर्थव्यवस्था को उसी रूप में एक सूक्ष्मदर्शी के द्वारा देखता है, यह देखता है कि किस प्रकार आर्थिक शरीर के असंख्य कोषाणु (सेल)–उपभोक्ता के रूप में व्यक्ति या परिवार तथा उत्पादक के रूप में व्यक्ति तथा फर्म सम्पूर्ण आर्थिक संगठन के क्रियाशीलन में अपनी भूमिका अदा करते हैं।"

इस विश्लेषण के आधार पर हम निम्नलिखित शब्दों में प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की परिभाषा दे सकते हैं: "व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र सामान्य अर्थशास्त्र का वह व्यावहारिक पहलू है जो व्यावसायिक फर्म का अध्ययन करता है और इसकी समस्याओं को सुलझाने के लिए उचित निर्णय लेने में प्रबंध की मदद करता है।"

1.4. अर्थशास्त्र की विभिन्न परिभाषाएँ एवं प्रकृति

जब एडम स्मिथ की पुस्तक 'An Enquiry into the Nature and Causes of Wealth of Nations' प्रकाशित हुई थी तो उसके साथ ही अर्थशास्त्र का जन्म भी हुआ था। इस पुस्तक के प्रकाशन के लगभग एक शताब्दी तक इस नए विज्ञान को 'राजनीतिक अर्थव्यवस्था' के नाम से संबोधित किया गया यद्यपि इस दौरान कुछ अर्थशास्त्रियों ने इसे नए-नए नाम देने के प्रयास भी किए थे। उदाहरणार्थ, हेटले ने इसे 'Catallactics' अथवा 'विनिमय का विज्ञान' संज्ञा दी, हार्न ने इसे 'Plutology' अथवा 'धन का विज्ञान' कहकर पुकारा और ईंग्राम ने इसको 'chrematistics' अथवा 'धनोपार्जन का विज्ञान' कहकर सम्बोधित किया था। किंतु इन प्रयासों के बावजूद 19वीं शताब्दी के मध्य तक इस विज्ञान का प्रारम्भिक नाम राजनीतिक अर्थव्यवस्था बराबर प्रचलित रहा। इसके उपरान्त इसे 'अर्थशास्त्र' का नया नाम दिया गया। अर्थशास्त्र की अनेक परिभाषाएँ हमें उपलब्ध हैं, लेकिन इनमें से कोई भी ऐसी परिभाषा नहीं जिसे पूर्णतः दोषमुक्त कहा जा सके। दूसरे शब्दों में प्रत्येक परिभाषा में कोई न कोई कमी है। विभिन्न परिभाषाओं को हम चार शीर्षकों के अंतर्गत विभाजित कर सकते हैं–

1. 'धन' प्रधान परिभाषाएँ
2. 'कल्याण' प्रधान परिभाषाएँ
3. 'दुर्लभता' प्रधान परिभाषाएँ
4. 'विकास' केन्द्रित परिभाषाएँ

'धन' प्रधान परिभाषाएँ (Wealth Definitions)

प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र को 'धन का विज्ञान' कहकर परिभाषित किया। अर्थशास्त्र के पिता एडम स्मिथ ने अपनी विख्यात पुस्तक का नाम 'राष्ट्रों के धन के स्वरूप तथा कारणों की खोज' रखा। उनके अनुसार, "अर्थशास्त्र राष्ट्रों के धन के स्वरूप तथा कारणों की खोज करता है।" इसी प्रकार फ्रान्सीसी लेखक जे.बी.से के अनुसार "अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो धन की विवेचना करता है।" अमेरिकी अर्थशास्त्री वाकर के अनुसार, "अर्थशास्त्र ज्ञान की वह शाखा है जो धन से संबंधित है।"

उपरोक्त विचारधारा के अर्थशास्त्र का अध्ययन विषय धन है, यह अठारहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होकर उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक चलती रही।

धन संबंधी परिभाषाओं की आलोचनाएँ

नोट

धन संबंधी परिभाषाएँ दोषपूर्ण थी। अतएव इनकी तीव्र आलोचनाएँ हुईं। आलोचनाओं के प्रमुख स्तम्भ निम्नलिखित हैं:

1. इस परिभाषा के अनुसार मानव गौण हो जाता है और सम्पत्ति प्रथम हो जाती है। जबकि प्रथम स्थान मानव कल्याण को दिया जाना चाहिए। धन को अत्यधिक महत्त्व देने के कारण मानव कल्याण की उपेक्षा होने लगी। यूरोप के उद्योगपतियों ने केवल धन को केंद्र मानकर मजदूरों, स्त्रियों और बच्चों को कम मजदूरी देकर उनका शोषण आरम्भ कर दिया। इसकी बुद्धिजीवियों में रोषपूर्ण प्रतिक्रिया हुई। कुछ विद्वानों ने अर्थशास्त्र और अर्थशास्त्रियों की खूब आलोचना की विलियम मौरिस, चार्ल्स डिकेन्स, जॉन इस्किन आदि ने, कुबेर का ग्रन्थ और रोटी मक्खन का विज्ञान कहकर निन्दा की।
2. **अर्थशास्त्र का सीमित एवं संकुचित क्षेत्र**—इस परिभाषा में धन शब्द का अर्थ बहुत संकुचित कर दिया है। इसी से अर्थशास्त्र का क्षेत्र भी संकुचित हो जाता है। धन सिर्फ भौतिक पदार्थ नहीं है इसमें कुछ ऐसी सेवाएँ भी सम्मिलित हैं जो मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। इस परिभाषा के आधार पर तो एक सेवानिवृत व्यक्ति अर्थशास्त्र के अध्ययन में शामिल नहीं होता लेकिन माँग का नियम, प्रतिस्थापन नियम तो उस पर लागू होते हैं।
3. **अर्थ-मानव की कल्पना**—यह परिभाषा 'अर्थ-मानव' की धारणा पर आधारित है जो वास्तविकता के विपरीत है। 'साधारण' मनुष्य जिसका अर्थशास्त्र में अध्ययन किया जाता है, 'अर्थ-मानव' से कहीं भिन्न होता है। 'अर्थ-मानव' तो नैतिक औचित्य को त्यागकर सदैव विशुद्ध आर्थिक दृष्टिकोण से ही प्रेरित होता है, उस पर अन्य प्रेरणाओं का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता। परंतु साधारण मनुष्य कई प्रकार की प्रेरणाओं, जैसे दया, धर्म, राजनीति इत्यादि से प्रभावित होता है। अतएव 'अर्थ-मानव' वास्तविक नहीं है और इस पर आधारित अर्थशास्त्र की परिभाषा दोषपूर्ण ही होगी।

इन आलोचनाओं के कारण 19वीं शताब्दी के अंत में 'धन' संबंधी परिभाषा को त्याग दिया गया।

'कल्याण' प्रधान परिभाषाएँ (Welfare Approaches)

उन्होंने 'धन' की अपेक्षा 'मानव कल्याण' को अधिक बल देते हुए अर्थशास्त्र की परिभाषा के स्वरूप को ही बदल देने वाले डाक्टर मार्शल पहले अर्थशास्त्री थे। निस्सन्देह, 'धन' अब भी महत्त्वपूर्ण समझा जाता था किन्तु अब उसका स्थान गौण हो गया और प्रथम स्थान मानव-कल्याण को दिया जाने लगा था। डॉ. मार्शल ने स्पष्टतः कहा कि 'धन' मानव के लिए है न कि 'मानव' धन के लिए अर्थात्, धन साध्य नहीं वरन् साधन है। अर्थशास्त्र का उद्देश्य तो 'मानव-कल्याण' में वृद्धि करना है। धन गौण है, प्रथम स्थान तो मानव ही है। डॉ. मार्शल के शब्दों में, "यह (अर्थशास्त्र) एक ओर 'धन' का अध्ययन करता है और दूसरी ओर उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण यह 'मानव' के अध्ययन का एक भाग है।" अतः एव उन्होंने मानव-कल्याण को ध्यान में रखते हुए जो परिभाषा दी है—

"राजनीतिक अर्थव्यवस्था अर्थशास्त्र जीवन के साधारण व्यवसाय के संबंध में मानव-जाति का अध्ययन है। यह व्यक्तिगत एवं सामाजिक क्रियाओं के उस भाग का परीक्षण करता है जिसका विशेष संबंध जीवन में कल्याण अथवा सुख से सम्बद्ध भौतिक पदार्थों की प्राप्ति एवं उपभोग से है।"

डॉ. मार्शल की परिभाषा का विश्लेषण

प्रधानतः, अर्थशास्त्र मानव का अध्ययन करता है। द्वितीय, यह मानव-जीवन के आर्थिक पहलूओं का अध्ययन करता है। मानव जीवन के कई पहलू होते हैं, जैसे—सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं आर्थिक।

स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र का मानव जीवन के सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक पहलुओं से कोई संबंध नहीं है। अर्थशास्त्र तो विशुद्धत: मानव-जीवन के आर्थिक पहलू से ही संबंधित है। किन्तु एक व्यक्ति के जीवन का आर्थिक पहलू क्या होता है? स्पष्टत: आर्थिक पहलू से अभिप्राय इस तथ्य से है कि वह व्यक्ति अपनी आय कैसे कमाता है और उसे कैसे व्यय करता है। अत: अर्थशास्त्र मानव-कल्याण का नहीं, बल्कि उसके केवल एक भाग का अध्ययन करता है। दूसरे शब्दों में, अर्थशास्त्र आर्थिक अथवा भौतिक कल्याण का ही अध्ययन करता है। इसी कारण इस परिभाषा को कल्याणवादी परिभाषा भी कहा जाता है।

डॉ. मार्शल के अतिरिक्त और भी कई विख्यात अर्थशास्त्री हुए हैं जिन्होंने अर्थशास्त्र की कल्याणवादी परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं। प्रो. केनन के शब्दों में, "राजनैतिक अर्थशास्त्र का उद्देश्य उन सामान्य कारणों की व्याख्या करना है जिन पर मानव का भौतिक कल्याण निर्भर रहता है।" प्रो. पीगू के कथनानुसार, "अर्थशास्त्र में आर्थिक कल्याण, सामाजिक कल्याण के उस भाग से है जिसे प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: मुद्रा के मापदण्ड से संबंधित किया जा सकता है।" उन्होंने इस बात पर बल दिया कि अर्थशास्त्र में आर्थिक हितों का अध्ययन किया जाता है। यह धारणा अर्थशास्त्र को एक व्यावहारिक विज्ञान (Applied Science) के रूप में प्रकट करती हैं।

अभी हाल ही में अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो. असीमाकोपश्लास ने अर्थशास्त्र की कल्याण संबंधी परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है: "अर्थशास्त्र वह विषय है जो समाज में व्यक्तियों एवं वर्गों के भौतिक कल्याण से संबंधित होता है।"

कल्याण संबंधी परिभाषाओं की आलोचनाएँ

यद्यपि कल्याणवादी परिभाषा का प्रतिपादन डॉ. मार्शल एवं प्रो. पीगू जैसे सुविख्यात अर्थशास्त्रियों ने किया है तथापि यह परिभाषा पूर्णत: दोषमुक्त नहीं है। विगत कुछ वर्षों से इस परिभाषा की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की गई है।

1. **अर्थशास्त्र के क्षेत्र को सीमित करना**—प्रो. रॉबिन्स के अनुसार, अर्थशास्त्र की कल्याणकारी परिभाषा अत्यंत संकुचित है क्योंकि इसमें केवल भौतिक वस्तुओं का ही समावेश है और अभौतिक वस्तुओं की उपेक्षा कर दी गई है। अत: यह परिभाषा बहुत ही असन्तोषजनक है। भौतिक एवं अभौतिक वस्तुओं के बीच की सीमा को वास्तविक जीवन में स्पष्टत: अंकित नहीं किया जा सकता है। भौतिक एवं अभौतिक वस्तुएँ परस्पर इस तरह जुड़ी हुई हैं कि उनको एक-दूसरे से पृथक् करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। हमारे दैनिक जीवन में बहुत-सी ऐसी वस्तुएँ हैं जो हमारी आग्रहपूर्ण आवश्यकताओं को संतुष्ट करती है और मात्रा में सीमित भी है, लेकिन किसी भी अर्थ में उन्हें भौतिक वस्तुएँ नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार, डाक्टरों, वकीलों, अध्यापकों इत्यादि की सेवाएँ भी हैं जो मात्रा में सीमित होती है और मानव कल्याण में वृद्धि करती है, लेकिन फिर भी उनमें भौतिकता नाम की कोई चीज नहीं होती (अर्थात् वे अभौतिक होती है)। अत: प्रो. रॉबिन्स के अनुसार, अर्थशास्त्रियों को भौतिकता के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए, बल्कि उन सभी पदार्थों को (चाहे वे भौतिक हों अथवा अभौतिक) जो मात्रा में सीमित हैं और मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि करते हैं, अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री में सम्मिलित करना चाहिए।
2. **अर्थशास्त्र के अध्ययन को केवल भौतिक साधनों तक सीमित करना**—प्रो. रॉबिन्स ने कल्याणकारी अर्थशास्त्रियों की परिभाषा में एक और अन्य त्रुटि भी बतायी है। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार, अर्थशास्त्र केवल भौतिक कल्याण के कारणों की व्याख्या करता है, जबकि विचित्र बात यह है कि इनकी एक अभौतिक परिभाषा प्रस्तुत की है। उन्होंने एडम स्मिथ द्वारा प्रतिपादित उत्पादक एवं अनुत्पादक श्रम के बीच के अंतर को अस्वीकार कर दिया है और इस अन्तर को अवास्तविक बताया है। उन्होंने अपनी ओर से उत्पादक एवं अनुत्पादक श्रम के बीच एक नया अंतर प्रस्तुत किया है। इस अंतर के अनुसार समाज के कुछ सदस्यों, जैस-अध्यापकों, वकीलों, डॉक्टरों और गायकों का श्रम तो उत्पादक है और इसी नाते वह

नोट

अर्थशास्त्र का अविच्छिन्न अंग हैं। स्पष्ट है कि इन सदस्यों की सेवाएँ अभौतिक है लेकिन फिर भी उन्हें अर्थशास्त्र का अभिन्न अंग माना जाता है।

3. **अर्थशास्त्र का भौतिक कल्याण से संबंध स्थापित करना मिथ्या है**—कल्याणवादी अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र और भौतिक कल्याण के बीच जो संबंध स्थापित किया है, प्रो. रॉबिन्स ने उसकी भी आलोचना की है। उनके कथनानुसार अर्थशास्त्र का भौतिक कल्याण से कोई संबंध नहीं है। अर्थशास्त्र तो बहुत सी ऐसी क्रियाओं का अध्ययन करता है जिनका भौतिक कल्याण से दूर का भी संबंध नहीं होता। जो लोग नशीली वस्तुओं (जैसे शराब, अफीम आदि) का निर्माण करते हैं उनकी ये क्रियाएँ निश्चय ही आर्थिक क्रियाएँ है। क्या ये क्रियाएँ भौतिक कल्याण में वृद्धि करती है? कदापि नहीं। लेकिन फिर भी अर्थशास्त्री इन क्रियाओं का अध्ययन करते हैं क्योंकि इनका संबंध दुर्लभ वस्तुओं के उत्पादन एवं वितरण से है। इन्हीं के माध्यम से मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। इस प्रकार, कल्याणवादी अर्थशास्त्रियों की उक्त परिभाषा अन्तर्विरोधी प्रतीत होती है।

   प्रो. केनन के अनुसार, "युद्ध की राजनीतिक अर्थव्यवस्था" का विचार निश्चय ही विरोधाभास है। उनका यह तर्क उचित प्रतीत होता है कि चूँकि युद्ध भौतिक कल्याण में वृद्धि नहीं करता और अर्थशास्त्र केवल भौतिक कल्याण से ही संबंधित है, अतः युद्ध अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री नहीं बन सकता। कल्याणवादी अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र को जो 'भौतिक कल्याण' का विचार प्रदान किया है, वह वास्तव में अन्तर्विरोधी एवं अस्थिर विचार है।

4. **परिमाणात्मक रूप में भौतिक कल्याण को मापना संभव नहीं**—'कल्याणकारी' परिभाषा की आलोचना इस आधार पर भी की गई है कि भौतिक कल्याण को परिमाणात्मक रूप से मापना संभव नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रो. पीगू मुद्रा को भौतिक कल्याण के मापने का साधन मानते हैं। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या मुद्रा भौतिक कल्याण को संतोषजनक ढंग से माप सकती है? कदापि नहीं। यदि दो व्यक्ति किसी एक वस्तु के लिए समान कीमत चुकाते हैं तो इसका यह अभिप्राय नहीं है कि उन दोनों व्यक्तियों को उस वस्तु के उपभोग से 'समान' उपयोगिता एवं 'समान' कल्याण प्राप्त होता है। संभव है कि इन दोनों में से एक व्यक्ति धनी हो और दूसरा गरीब। स्पष्टतः इन दोनों व्यक्तियों को वस्तु के उपभोग से जो उपयोगिताएँ प्राप्त होती हैं, वे समान नहीं हो सकतीं।

5. **अर्थशास्त्र विशुद्ध रूप से सामाजिक विज्ञान नहीं है**—'कल्याणवादी' परिभाषा की आलोचना इस कारण भी की जा सकती है कि यह परिभाषा अर्थशास्त्र को विशुद्धतः एक सामाजिक विज्ञान बना देती है। दूसरे शब्दों में, यदि इस परिभाषा को स्वीकार कर लिया जाए तो अर्थशास्त्र मानव का सामाजिक प्राणी के रूप में अध्ययन करेगा। ऐसी परिस्थिति में अर्थशास्त्र केवल उन्हीं व्यक्तियों की क्रियाओं का अध्ययन करेगा जो समाज के सदस्य हैं और समाज में विचरण करते हैं, अर्थशास्त्र सामाजिक विज्ञान के रूप में उन व्यक्तियों की समस्याओं का अध्ययन नहीं करेगा जो शेष समाज से पृथक हो गये हैं। ऐसी परिस्थिति में रॉबिन्स क्रूसो अथवा हिमालयवासी साधु-संन्यासी की क्रियाएँ अर्थशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र से बाहर रहेंगी, क्योंकि ये दोनों ही व्यक्ति समाज की सदस्यता से विमुक्त हो चुके हैं। 'कल्याणवादी' परिभाषा में इस प्रकार का विचार निश्चयात्मक रूप से निहित है। लेकिन क्या हम इस विचार को स्वीकार कर सकते हैं? नहीं। प्रो. रॉबिन्स के कथनानुसार अर्थशास्त्र के आधारमूलक नियम रॉबिन्सन क्रूसो अथवा हिमालयवासी साधु-सन्यासी पर भी ठीक उसी प्रकार लागू होते हैं जिस प्रकार वे समाज के नियमित सदस्यों पर लागू हैं। उदाहरणार्थ, अर्थशास्त्र का प्रतिस्थापन-नियम एक मूलभूत नियम है जो समाज और समाज से बाहर वालों सब पर लागू होता है।

6. **परिभाषा विश्लेषणात्मक न हो कर वर्गात्मक है**—अन्ततः प्रो. रॉबिन्स ने 'कल्याणवादी' परिभाषा की इस आधार पर भी आलोचना की है कि यह परिभाषा विश्लेषणात्मक न होकर वर्गात्मक है। 'कल्याणवादी' अर्थशास्त्र के अनुसार अर्थशास्त्र का संबंध मानवीय क्रियाओं

के एक निश्चित वर्ग से है, न कि प्रत्येक क्रिया के एक निश्चित पहलू से। इस प्रकार 'कल्याणवादी' अर्थशास्त्री समस्त मानवीय क्रियाओं को दो वर्गों में विभाजित करते हैं– (1) आर्थिक क्रियाएँ और (2) गैर-आर्थिक क्रियाएँ। लेकिन मानव-क्रियाओं के इस वर्गीकरण को प्रो. रॉबिन्स 'तर्कहीन' एवं 'अवैज्ञानिक' कहकर अस्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि आर्थिक क्रिया का गैर-आर्थिक पहलू भी हो सकता है। अत: मानव-क्रियाओं का कोई कठोर वर्गीकरण नहीं किया जा सकता। मानव-क्रियाओं का ऐसा वर्गीकरण करने के बजाए अर्थशास्त्रियों को इनके एक निश्चित पहलू पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। वह कौन सा पहलू है? प्रो. रॉबिन्सन के अनुसार, अर्थशास्त्रियों को मानव-क्रियाओं के उस पहलू पर ध्यान देना चाहिए जो साधनों की दुर्लभता से प्रभावित होता है।

इन आलोचनाओं के कारण प्रो. रॉबिन्स ने 'कल्याणवादी' परिभाषा को अस्वीकार कर दिया है। इसके स्थान पर उन्होंने एक नयी परिभाषा का निर्माण किया है। उनका दावा है कि उनके द्वारा प्रस्तुत परिभाषा उपर्युक्त सभी दोषों एवं आलोचनाओं से सर्वथा मुक्त है। चूंकि प्रो. रॉबिन्स की परिभाषा 'उद्देश्यों' की तुलना में 'साधनों की दुर्लभता' पर अधिक बल देती है, इसीलिए आर्थिक साहित्य में इसे 'दुर्लभता' परिभाषा की संज्ञा दी जाती है।

दुर्लभता अथवा सीमितता प्रधान परिभाषाएँ

सन् 1932 में प्रो. रॉबिन्स की महान् पुस्तक An Essay on the Nature and Significance of Economic Science के प्रकाशन के उपरान्त अर्थशास्त्रियों की परिभाषा के संबंध में एक नया विवाद उत्पन्न हो गया था। इस पुस्तक के प्रकाशन से पूर्व तो ऐसा प्रतीत होता था कि डॉ. मार्शल ने परिभाषा की समस्या का स्थायी तौर पर समाधान ही कर दिया था। सन् 1932 से पूर्व जितने भी बड़े-बड़े अर्थशास्त्री हुए उन सभी ने डॉ. मार्शल की परिभाषा को लगभग पूर्णरूपेण स्वीकार कर लिया था। लेकिन प्रो. रॉबिन्स की पुस्तक के परिणामस्वरूप अर्थशास्त्र की पुरानी एवं परम्परागत परिभाषा में अर्थशास्त्रियों का विश्वास अब डगमगाने लगा। वे इस परिभाषा को सन्देहात्मक दृष्टि से देखने लगे। प्रो. रॉबिन्स की परिभाषा इस प्रकार है–

"अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो लक्ष्यों तथा उनके सीमित एवं वैकल्पिक उपयोगों वाले साधनों के परस्पर संबंधों के रूप में मानव-व्यवहार का अध्ययन करता है।"

इस परिभाषा में तीन मूल तत्त्व पाये जाते हैं। अर्थशास्त्र का समूचा ढांचा इन तीनों तत्त्वों पर ही आधारित है। ये तीनों तत्त्व हैं–उद्देश्य, दुर्लभ साधन; एवं वैकल्पिक उपयोग।

1. **उद्देश्य**–उद्देश्य से यहाँ अभिप्राय मानवीय आवश्यकताओं से है। जैसा कि हम अपने अनुभव से जानते हैं, हमारी आवश्यकताएँ असीमित हैं। यदि किसी एक आवश्यकता को संतुष्ट किया जाता है तो दूसरी उठ खड़ी होती है। आवश्यकताओं की इस अनेकता के कारण हम अपनी सभी आवश्यकताओं को पूर्णत: संतुष्ट नहीं कर सकते। चूंकि वे असीमित होती है, इसलिए हमें अधिक आग्रहपूर्ण और कम आग्रहपूर्ण आवश्यकताओं के बीच चयन करना पड़ता है।

2. **दुर्लभ साधन**–यद्यपि आवश्यकताएँ असंख्य हैं लेकिन उन्हें संतुष्ट करने के उपलब्ध साधन अत्यन्त सीमित होते हैं। चूंकि अधिकांश वस्तुओं की पूर्ति उनकी माँग की तुलना में दुर्लभ होती है, इसीलिए तो आर्थिक समस्या उत्पन्न होती है। प्रो. मिल्टन फ्रीडमेन के अनुसार, "यदि साधन दुर्लभ न होते तो आर्थिक समस्या ही न होती। तब तो विश्व निर्वाण की स्थिति में होता।"

   'दुर्लभता' शब्द को हम सापेक्ष अर्थ में ले रहे हैं, निरपेक्ष अर्थ में नहीं। 'दुर्लभ' पूर्ति से ही कोई वस्तु दुर्लभ नहीं हो जाती। मान लीजिए, किसी वस्तु की पूर्ति कम है लेकिन उसकी माँग बिल्कुल नहीं है। क्या ऐसी वस्तु को हम 'दुर्लभ' कहेंगे? कदापि नहीं। जैसा कि प्रो. रॉबिन्स ने कहा है, खराब अण्डे यद्यपि अच्छे अण्डों की तुलना में संख्या में कम होते हैं लेकिन उन्हें 'दुर्लभ' नहीं कहा जा सकता, क्योंकि खराब अण्डों की कुछ भी माँग नहीं होती। इस प्रकार यदि उनकी माँग को ध्यान में रखा जाए तो खराब अण्डे 'दुर्लभ' नहीं कहे जा सकते।

इसके विपरीत, यद्यपि विश्व की मण्डियों में करोड़ों टन खाद्यान्न उपलब्ध है लेकिन फिर भी खाद्यान्न 'दुर्लभ' ही कहे जाते हैं, क्योंकि उनकी माँग उनकी पूर्ति की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। अत: किसी वस्तु की 'दुर्लभता' अथवा 'प्रचुरता' वस्तु की माँग को ध्यान में रखकर ही निश्चित की जाती है।

नोट

3. **दुर्लभ साधनों के वैकल्पिक उपयोग**—प्रो. रॉबिन्स की परिभाषा का तीसरा तत्त्व यह है कि उपलब्ध दुर्लभ साधनों के वैकल्पिक उपयोग होने चाहिए। यदि किसी वस्तु को एक ही उपयोग में लाया जा सकता है तो उसके उपयोग के बारे में कोई आर्थिक समस्या उत्पन्न नहीं होगी। लेकिन वास्तविक जीवन में किसी वस्तु का कोई एक उपयोग न होकर उसके अनेक उपयोग होते हैं। उस वस्तु की कुल माँग इतनी अधिक हो जाती है कि वर्तमान पूर्ति उसे संतुष्ट करने में अपर्याप्त सिद्ध होती है। परिणामत: वह वस्तु आर्थिक महत्त्व की हो जाती है।

प्रो. रॉबिन्स की परिभाषा में यह बात भी निहित है कि वस्तु के वैकल्पिक उपयोग महत्त्व के होने चाहिए। अर्थात् उनमें महत्त्व का अंतर होना चाहिए। कुछ उपयोग कम और कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण होने चाहिए। यदि सभी उपयोग समान महत्त्व के होंगे तो यह चयन करना कठिन हो जाएगा कि अमुक वस्तु को किस विशेष उपयोग में लगाया जाए।

स्पष्ट है कि आर्थिक समस्या तब तक उत्पन्न नहीं होगी जब तक उपर्युक्त तीनों शर्तें पूरी नहीं होतीं। उद्देश्यों की अनेकता अथवा साधनों की दुर्लभता अथवा दुर्लभ साधनों के वैकल्पिक उपयोगों को पृथक-पृथक रूप में लेने पर आर्थिक समस्या कभी उत्पन्न नहीं होती। आर्थिक समस्या तो तभी उत्पन्न होती है जब इन तीनों शर्तों को एक साथ ही समय पर पूरा किया जाए।

आर्थिक विश्लेषण में 'अवसर' लागत अथवा 'विस्थापन' लागत एक महत्त्वपूर्ण धारणा समझी जाती है। यह धारणा "उद्देश्यों की अनेकता" एवं "साधनों की स्वल्पता" का प्रत्यक्ष परिणाम है। चूँकि 'उद्देश्य' असंख्य और 'साधन' सीमित होते हैं, अतएव व्यक्तियों एवं राष्ट्रों के लिए चयन करना अनिवार्य हो जाता है। यदि हम किसी एक विकल्प को अपनाते हैं तो हमें दूसरे विकल्प का परित्याग करना पड़ता है। मान लीजिए किसी व्यक्ति की जेब में दो रुपए का नोट है। इससे वह व्यक्ति या तो सिनेमा देख सकता है या कोई अखिल भारती क्रिकेट मैच देख सकता है, लेकिन दो रुपए से वह दोनों का आनन्द नहीं ले सकता। यदि वह सिनेमा देखता है तो सिनेमा देखने की 'अवसर' अथवा 'विस्थापन' लागत क्रिकेट मैच होगी। इसके विपरीत, यदि वह क्रिकेट मैच देखता है तो क्रिकेट मैच की 'अवसर' अथवा 'विस्थापन' लागत सिनेमा होगी। इस प्रकार किसी वस्तु की 'अवसर' लागत वह वस्तु होती है जिसका उस वस्तु की प्राप्ति के लिए परित्याग किया जाता है।

ये परिभाषा इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें चयन महत्त्वपूर्ण है। चयन इसलिए क्योंकि हमारे उद्देश्य तो असंख्य होते हैं। लेकिन हमारे साधन सीमित मात्रा में होते हैं, अत: हमें चयन करना ही पड़ता है चयन की समस्या, वास्वत में एक सार्वभौमिक समस्या है। प्रो. एरिक रोल के अनुसार चयन की समस्या सभी प्रकार के समाज एवं समुदायों में उत्पन्न होती है। रॉबिन्सन क्रूसों को भी इस समस्या का सामना करना पड़ा था। केन्द्रीय अफ्रीका की जंगली एवं असभ्य जातियों को भी इस समस्या से जूझना पड़ता है। आधुनिक पूंजीवादी अमरीका एवं साम्यवादी रूस में भी यह समस्या उत्पन्न होती है। चयन की समस्या सार्वभौमिक ही नहीं, बल्कि सार्वकालिक भी है। मध्यकालीन एवं सामन्तवादी यूरोप में भी समस्या उठी थी। जब तक 'उद्देश्य' असंख्य और 'साधन' सीमित हैं, चयन की समस्या समाज में उठती ही रहेगी। प्रो. रोल के कथनानुसार रॉबिन्स की परिभाषा के व्युत्पादित नियम सभी प्रकार के समुदायों पर लागू होते हैं। चयन के नियम गुरुत्वाकर्षण के नियमों की भांति सभी प्रकार के समुदायों पर क्रियाशील होते हैं।

"भौतिक कल्याणवाद पर आधारित इस परिभाषा ने अर्थशास्त्र की सारी संरचना को धराशायी कर दिया है। इसके स्थान पर प्रो. रॉबिन्स ने अर्थशास्त्र की एक नवीन संगठन का निर्माण किया है। इसकी दो आधारशिलाएँ हैं (1) उद्देश्यों की अनेकता, और (2) साधनों की दुर्लभता। यह परिभाषा सार्वभौमिक है यह सभी देशों में लागू होती है। पूंजीवाद अमरीका तथा साम्यवादी रूस दोनों पर प्रो. मेकफाई, रॉबिन्स की

परिभाषा से अत्यन्त प्रभावित हुए हैं। उनका कहना है कि रॉबिन्स की परिभाषा अन्तिम परिभाषा है। इस विषय पर और कुछ कहने की गुंजाइश नहीं है।

'दुर्लभता' परिभाषा का मुख्य लाभ यह है कि इसने अर्थशास्त्र के क्षेत्र को स्पष्ट रूप से सीमांकन कर दिया है। इस परिभाषा ने अर्थशास्त्र के क्षेत्र के चारों ओर एक दीवार सी खड़ी कर दी है। इस चारदीवारी के कारण अर्थशास्त्र के क्षेत्र के बारे में अब कोई संदेह नहीं रह गया है। अर्थशास्त्र का क्षेत्र अब पूर्णतः स्पष्ट हो गया है। यदि उद्देश्यों की अनेकता एवं साधनों की दुर्लभता के परिणामस्वरूप कोई समस्या उत्पन्न होती है तो निश्चय ही वह समस्या आर्थिक समस्या होगी और उसका अध्ययन एवं विश्लेषण अर्थशास्त्र का विषय होगा।

इस परिभाषा के परिणामस्वरूप अर्थशास्त्र अब एक प्रतिष्ठित विज्ञान बन गया है इस 'दुर्लभता' परिभाषा के अनुसार अर्थशास्त्र का उद्देश्यों से कोई संबंध नहीं होता। उद्देश्य चाहे अच्छे हों अथवा बुरे, अर्थशास्त्री उनका चयन नहीं करते। अतएव प्रो. रॉबिन्स के कथनानुसार अर्थशास्त्र में उद्देश्यों का अध्ययन नहीं किया जाता। अर्थशास्त्री तो केवल ऐसी परिस्थितियों का अध्ययन करते हैं जिनमें उद्देश्य 'अनेक' एवं साधन 'दुर्लभ' होते हैं। वे किसी भी देश में उद्देश्यों का चयन नहीं करते हैं और न ही वे उद्देश्यों के औचित्य अथवा अनौचित्य पर अपना मत व्यक्त करते हैं।

प्रो. रॉबिन्स की विचारधारा का समर्थन करने वालों में प्रो. फिलिप विकस्टीड, वान मिसेज, डॉ. स्ट्रिग्ल, सेमुएलसन, कोहन, शॉन फेल्ड, मैक्सवैबर आदि थे जिन्होंने उससे मिलते-जुलते विचारों की अभिव्यक्ति की।

दुर्लभता संबंधी परिभाषाओं की आलोचनाएँ

'कल्याणवादी' परिभाषा की भांति 'दुर्लभता' परिभाषा भी आलोचना रहित नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि बहुत से वर्तमान अर्थशास्त्री प्रो. रॉबिन्सन के अनुयायी हैं लेकिन निश्चय ही कुछ विख्यात अर्थशास्त्री ऐसे भी हैं जो प्रो. रॉबिन्स की परिभाषा की कटु आलोचना करते हैं। जिनमें कैनन, क्लार्क, रैक्सफोर्ड, प्रो. ऐमान, ए. एल. मैक्फाई, वूटन, फेगर तथा राबर्टसन थे।

1. **कल्याण की परिभाषा में दुर्लभता का अप्रत्यक्ष विचार निहित**—आलोचकों का कहना है कि प्रो. रॉबिन्स 'कल्याणवादी' परिभाषा का तो इतना तीव्र विरोध करते हैं लेकिन यह नहीं समझते कि 'कल्याणवाद' की धारणा स्वयं उनकी अपनी परिभाषा में भी सन्निहित है। 'दुर्लभता' परिभाषा में अधिकतम संतुष्टि का विचार निश्चय ही सन्निहित है। इस परिभाषा के अनुसार 'अनेक' उद्देश्य एवं 'दुर्लभ' साधनों के बीच समायोजन इस ढंग से किया जाना चाहिए कि व्यक्ति अथवा राष्ट्र को अधिकतम लाभ अथवा कल्याण की प्राप्ति हो सके।
2. **उद्देश्यों के प्रति तटस्थता**—श्रीमती बारबरा वूटन, सर विलियम बैवरिज, प्रो. डरबिन तथा प्रो. फ्रेजर जैसे सुविख्यात मार्शलवादी अर्थशास्त्री के प्रति प्रो. रॉबिन्स के तटस्थ रवैये को तनिक भी पसन्द नहीं करते। उनका कहना है कि अर्थशास्त्र जैसे सामाजिक अध्ययन के लिए प्रो. रॉबिन्स की 'दुर्लभता' परिभाषा अत्यन्त संकुचित सिद्ध हुई है। इसके अनावश्यक रूप से अर्थशास्त्र को संकीर्ण बना दिया है। उपर्युक्त मार्क्सवादी अर्थशास्त्री किसी भी दशा में अर्थशास्त्र को आचारशास्त्र से पृथक नहीं करना चाहते, जबकि प्रो. रॉबिन्स अर्थशास्त्र एवं आचारशास्त्र के बीच एक ऊँची दीवार खड़ी करना चाहते हैं।
3. **अर्थशास्त्र केवल विशुद्ध विज्ञान ही नहीं**—आलोचकों का कहना है कि यदि हम प्रो. रॉबिन्स की 'दुर्लभता' परिभाषा को स्वीकार कर लेते हैं तो अर्थशास्त्र निश्चय ही एक विशुद्ध विज्ञान बन जाएगा। ऐसी परिस्थिति में अर्थशास्त्र केवल आर्थिक नियमों का निर्माण मात्र करेगा, व्यावहारिकता से इसका संबंध पूर्णतः नष्ट हो जाएगा। दूसरे शब्दों में, अर्थशास्त्र का विशुद्ध विज्ञान व्यावहारिक समस्याओं को सुलझाने में हमारी तनिक भी सहायता नहीं करेगा। इससे अर्थशास्त्र का भारी अहित होगा। आलोचकों के कथनानुसार अर्थशास्त्रियों का कर्तव्य केवल उपकरणों (यन्त्रों) का निर्माण करना ही नहीं, बल्कि उनका प्रयोग करना भी

नोट

है। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में श्रीमती बारबरा वूटन ने यह शिकायत की है कि अर्थशास्त्री अपना अधिकांश समय सैद्धान्तिक उपकरणों के निर्माण मात्र में व्यय कर देते हैं, उन उपकरणों का व्यावहारिक प्रयोग करने में वे कुछ भी समय नहीं लगाते। वास्तव में यह बहुत ही खोजजनक बात है व्यावहारिक समस्याओं को सुलझाने में अर्थशास्त्रियों को निश्चय ही अपना सहयोग देना चाहिए। यदि वे ऐसा नहीं करते तो उनकी कोई उपयोगिता ही नहीं रह जाती है। यह उल्लेखनीय है कि प्रो. रॉबिन्स अपनी पुस्तक Economic Planning and International Order में स्वयं आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के सुझाव प्रस्तुत करते हैं। ऐसा करने से अर्थशास्त्र का विशुद्ध रूप निश्चय ही समाप्त हो जाता है। वास्तव में, यदि कोई सामाजिक विज्ञान व्यावहारिक समस्याओं का समाधान नहीं करता तो उसके अस्तित्व का कोई औचित्य ही नहीं रहता। इस दृष्टिकोण से 'दुर्लभता' परिभाषा संकीर्ण प्रतीत होती है।

4. **आर्थिक समस्या केवल दुर्लभता के कारण ही नहीं अपितु प्रचुरता के कारण भी**—प्रो. रॉबिन्स के कथनानुसार आर्थिक समस्या सदैव 'दुर्लभता' के कारण उत्पन्न होती है; किन्तु आलोचकों का कहना है कि आर्थिक समस्या 'प्रचुरता' के परिणामस्वरूप भी उतपन्न हो सकती है। जैसा कि विदित है, सन् 1930 की महान् मन्दी के दौरान विभिन्न देशों में आर्थिक समस्याएँ 'दुर्लभता' के कारण नहीं, बल्कि वस्तुओं की 'प्रचुरता' अथवा उनके अति उत्पादन के परिणामस्वरूप ही उत्पन्न हुई थीं।

5. **परिभाषा का स्थैतिक दृष्टिकोण**—जैसा कि आलोचकों ने बताया है, प्रो. रॉबिन्स की परिभाषा का सबसे बड़ा दोष यह है कि यह स्थैतिक प्रकृति की है। इसी कारण इसे पर्याप्त नहीं माना जाता है। आलोचकों के कथनानुसार रॉबिन्स ने 'दुर्लभता समस्या' के प्रति पूर्णतया स्थैतिक दृष्टिकोण अपनाया है। इस परिभाषा के अनुसार दुर्लभ साधनों तथा साध्यों में किसी प्रकार का कोई भी परिवर्तन होने की सम्भावना नहीं है। वास्तव में एक प्रावैगिक समस्या के प्रति रॉबिन्सन का यह दृष्टिकोण अत्यन्त स्थैतिक प्रतीत होता है। हमारे गतिशील समाज में साधानों एवं साध्यों दोनों में ही परिवर्तन संभव हो सकते हैं। सत्य तो यह है कि कालान्तर में साध्यों के परिवर्तित होने की बड़ी संभावना रहती है। इनके साथ-साथ साधनों की भी वृद्धि तथा उनका विकास होता रहता है। दुर्भाग्य से रॉबिन्स की परिभाषा 'दुर्लभता' समस्या के इस पहलू की उपेक्षा कर देती है।

6. **आर्थिक विकास के सिद्धान्तों की व्याख्या नहीं**—रॉबिन्स ने अपनी परिभाषा में आर्थिक विकास के सिद्धान्तों की घोर उपेक्षा की है। यदि देखा जाए तो आधुनिक जगत में, विशेष रूप में अल्पविकसित तथा विकसित अर्थव्यवस्थाओं की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने की है अर्थात् देश की राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय तथा रोजगार के स्तर में वृद्धि करने की है जिसकी रॉबिन्सन ने घोर उपेक्षा की।

7. **बेरोजगारी की समस्या का कोई समाधान नहीं**—रॉबिन्स की परिभाषा में बेरोजगारी की समस्या की कोई व्याख्या नहीं की गई है जो आज के युग की सबसे महत्त्वपूर्ण एवं गम्भीर समस्या है। आज मानव-शक्ति असीमित मात्रा में उपलब्ध है न कि दुर्लभता में। इसके विपरीत अर्थशास्त्र, रॉबिन्स के अनुसार, दुर्लभता का अध्ययन है।

8. **बहुत संकुचित एवं बहुत व्यापक दृष्टिकोण**—राबर्टसन के अनुसार, "रॉबिन्स की परिभाषा एक साथ बहुत संकुचित तथा बहुत व्यापक है।" यह अत्यंत संकुचित तो इसलिए है क्योंकि यह संगठनात्मक दोषों को सम्मिलित नहीं करती है जिससे साधन निष्क्रिय हो जाते हैं। दूसरी ओर यह बहुत व्यापक इसलिए है कि दुर्लभ साधनों को दिए गए लक्ष्यों में विभाजित करने की समस्या ऐसी है जो उन क्षेत्रों में भी उत्पन्न हो सकती है जो अर्थशास्त्र के अधिकार क्षेत्र के बाहर है।

हो सकता है कि परीक्षा में छात्र के पेन की स्याही समाप्त हो जाने पर, खेल के मैदान में किसी खिलाड़ी के घायल हो जाने पर, युद्ध के मैदान में कमाण्डर की मृत्यु हो जाने पर, दुर्लभ

साधनों की समस्या का सामना करना पड़ जाए। इस प्रकार प्रो. रॉबिन्स की दुर्लभता-स्थापना अनार्थिक समस्याओं पर भी लागू हो सकती है और अर्थशास्त्र के क्षेत्र को बहुत व्यापक बना देती है।

विकास केंद्रित परिभाषाएँ (Development Centred Definitions)

रॉबिन्स की परिभाषा अपने सीमित क्षेत्र में आर्थिक विकास की महत्त्वपूर्ण समस्या को सम्मिलित नहीं करती और एक प्रावैगिक समस्या के प्रति पूर्णतया स्थैतिक रुख अपनाती है। हाल ही के वर्षों में प्रो. सैम्युएलसन द्वारा प्रस्तुत अपनी परिभाषा में रॉबिन्स की परिभाषा के अन्तर्निहित दोष अथवा कमी को दूर करने का प्रयास किया गया है। सैम्युएलसन की परिभाषा का सबसे बड़ा गुण यह है कि कालान्तर में 'साधनों' एवं 'साध्यों' में होने वाली गतिशील परिवर्तनों को यह परिभाषा पूर्ण मान्यता देती है। अत: इसे 'विकासोन्मुखी' परिभाषा कहना सर्वथा उचित ही है। सैम्युएलसन की परिभाषा निम्नवत् है:

"अर्थशास्त्र इस बात का अध्ययन करता है कि व्यक्ति और समाज अनेक प्रयोगों में लगाए जा सकने वाले उत्पादन के सीमित साधनों का चुनाव, एक समयावधि में विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में लगाने एवं उनको समाज में विभिन्न व्यक्तियों और समूहों में उपभोग हेतु वर्तमान तथा भविष्य में बाँटने के लिए किस प्रकार करते हैं; ऐसा वे चाहे मुद्रा का प्रयोग करके करें अथवा इसके बिना करें।"

उपर्युक्त परिभाषा की मुख्य-मुख्य बातें इस प्रकार हैं–

1. रॉबिन्स और सैम्युएलसन के बीच बहुत कुछ समानता पाई जाती है। रॉबिन्स की भाँति सैम्युएलसन ने भी असीमित साध्यों के प्रति सीमित साधनों की समस्या पर बल दिया है। साधन सीमित ही नहीं है, बल्कि उन्हें वैकल्पिक प्रयोगों में भी लगाया जा सकता है।
2. जहाँ रॉबिन्स की परिभाषा स्थैतिक है वहीं सैम्युएलसन की परिभाषा 'समय' के समावेश से प्रावैगिक बन गई है। इस बात की पुष्टि परिभाषा का गहन अध्ययन करने से हो जाती है। सैम्युएलसन की परिभाषा में निम्न वाक्यांशों का प्रयोग किया गया है: "एक समयावधि में विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन" तथा "उनका वर्तमान एवं भविष्य में वितरण"। ये वाक्यांश समय-तत्त्व से ही संबंधित है। इनसे परिभाषा का प्रावैगिक स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। सैम्युएलसन की परिभाषा के अनुसार विकास की समस्या स्वत: ही अर्थशास्त्र के क्षेत्र में सम्मिलित हो जाती है। बस इसी कारण सैम्युएलसन की परिभाषा रॉबिन्स की परिभाषा से श्रेष्ठ है।
3. सैम्युएलसन की परिभाषा केवल प्रावैगिक ही नहीं है, बल्कि इसका क्षेत्र भी रॉबिन्स की परिभाषा की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। यह परिभाषा एक ऐसी अर्थव्यवस्था पर भी लागू होती है जिसमें वस्तु-विनिमय प्रणाली का प्रचलन होता है। (स्मरण रहे इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में मुद्रा का पूर्ण अभाव होता है।) यह कहना सही नहीं है कि चुनाव अथवा किफायत की समस्या केवल मौद्रिक अर्थव्यवस्था में ही उत्पन्न होती है। वस्तु-विनिमय प्रणाली वाली अर्थव्यवस्था में भी दुर्लभता की समस्या उत्पन्न होती है। इसमें भी साध्यों की तुलना में साधन सीमित होते हैं। अत: सैम्युएलसन की परिभाषा वस्तु-विनिमय प्रणाली वाली अर्थव्यवस्था पर भी उसी तरह लागू होती है जिस तरह मौद्रिक अर्थव्यवस्था पर क्रियाशील होती है।
4. सैम्युएलसन की परिभाषा की मुख्य बात यह है कि चुनाव की समस्या का उसके प्रावैगिक रूप में उल्लेख करती है। चुनाव की समस्या वर्तमान से ही नहीं बल्कि भविष्य से भी संबंधित होती है। जैसा कि हम जानते हैं, मानवीय आवयकताएँ कभी भी स्थिर अथवा स्थैतिक नहीं होतीं। कालान्तर में उनका स्वरूप बदलता रहता है। केवल उनका स्वरूप नहीं बदलता, बल्कि उनकी संख्या में भी निरंतर वृद्धि होती रहती है। आस्वादों, अभिरुचियों एवं फैशनों में होने वाले परिवर्तन मानवीय आवश्यकताओं के स्वरूप को ही बदल देते हैं। मानवीय आवश्यकताओं में वृद्धि के परिणामस्वरूप उन्हें संतुष्ट करने हेतु आवश्यक साधनों में भी आनुपातिक वृद्धि करनी पड़ती है। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो आर्थिक साधन पिछड़ जाएंगे। अत: अर्थशास्त्र

का स्वरूप निवार्यत: प्रावैगिक हो जाता है। यही कारण है कि समाज की बदलती एवं बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अर्थशास्त्रियों को साधनों, आय, उत्पादन एवं रोजगार की वृद्धि पर ध्यान केंद्रित करना होगा। अत: अर्थशास्त्र असीमित साध्यों के संदर्भ में सीमित साधनों के आबंटन तथा आय, उत्पादन रोजगार एवं आर्थिक विकास के निर्धारक का अध्ययन है। वास्तव में, यही अर्थशास्त्र की सही परिभाषा है।

नोट

श्री. के.जी. सेठ के अनुसार, "अर्थशास्त्र उस मानव-व्यवहार का अध्ययन करता है जिसका संबंध साध्यों के संदर्भ में परिवर्तनों एवं विकास से होता है।"

निष्कर्षत:–सभी परिभाषाओं में से सैम्युएलसन की परिभाषा सबसे अधिक संतोषजनक है। यह परिभाषा चुनाव की समस्या को उसके प्रावैगिक रूप से व्यक्त करती है। आय, उत्पादन, रोजगार एवं आर्थिक विकास आदि की समस्याओं को अर्थशास्त्र के क्षेत्र में सम्मिलित करके यह परिभाषा उसके क्षेत्र को विस्तृत कर देती है। यही नहीं, सैम्युएलसन की प्रदत्त यह परिभाषा सार्वभौमिक भी है। यह सभी प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं-अतीतकालीन, वर्तमान एवं भावी अर्थव्यवस्थाओं पर समान रूप में लागू होती है। यह परिभाषा वैचारिक मतभेदों से भी परे है क्योंकि यह पूंजीवादी, मिश्रित, समाजवादी एवं साम्यवादी सभी प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं पर क्रियाशील होती है। चूँकि अपने प्रावैगिक स्वरूप में चुनाव की समस्या सभी प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में उत्पन्न होती है, अत: इस परिभाषा का सार्वभौमिक महत्व है। वास्तव, में सैम्युएलसन की यह परिभाषा सभी परिभाषाओं में से सर्वाधिक स्वीकार्य है। अर्थशास्त्र का क्षेत्र कभी भी सम्पूर्ण एवं अन्तिम नहीं होता। कालान्तर में इसमें परिवर्तन होते रहते हैं। यहाँ तक कि अर्थशास्त्र की 'विकास' परिभाषा का स्थान भी भविष्य में कोई अन्य परिभाषा ले सकती है।

1.5. अर्थशास्त्र के क्षेत्र (Scope of Economics)

अर्थशास्त्र का विषय-क्षेत्र भी वाद-विवाद का ही विषय है। 'अर्थशास्त्र के विषय-क्षेत्र की विवेचना करते समय हमें यह बताना होगा कि अर्थशास्त्र विज्ञान है अथवा कला? क्या अर्थशास्त्र विज्ञान है अथवा आदर्श विज्ञान? क्या आर्थिक विषयों के बारे में अर्थशास्त्री अपना नैतिक दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सकते हैं? यह अभी भी वाद-विवाद का विषय बना हुआ है।

अर्थशास्त्र-विज्ञान के रूप में (Economics–As a Science)

अर्थशास्त्र 'विज्ञान' है या नहीं-इसका निर्णय करने से पूर्व हमें यह भली भांति समझ लेना चाहिए कि 'विज्ञान' से अभिप्राय क्या है। विज्ञान मानव-ज्ञान का एक क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित भण्डार है जो कारण तथा परिणाम के पारस्परिक संबंध की खोज करता है। स्मरण रहे कि विज्ञान केवल तथ्यों का समूह नहीं होता। प्रो. पोइनकेयर के शब्दों में, "जिस प्रकार मकान पत्थरों से बनता है, ठीक उसी तरह विज्ञान तथ्यों से निर्मित होता है; लेकिन जिस प्रकार पत्थरों के ढेर मात्र से मकान नहीं बन जाता, ठीक उसी तरह केवल तथ्यों के समूह से विज्ञान का निर्माण नहीं हो जाता।" दूसरे शब्दों में विज्ञान का निर्माण करने के लिए हमें तथ्यों का क्रमबद्ध रूप से संग्रह, वर्गीकरण तथा विश्लेषण करना चाहिए। विज्ञान की उक्त परिभाषा को अर्थशास्त्र पर लागू करते हुए हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि अर्थशास्त्र भी मानव-ज्ञान की वह शाखा है जिसमें तथ्यों का क्रमबद्ध रूप से संग्रह, वर्गीकरण एवं विश्लेषण किया जाता है। इस दृष्टिकोण से अर्थशास्त्र पूर्णरूपेण एक विज्ञान है : विज्ञान की एक अन्य विशेषता यह है कि इसकी विषय-सामग्री मापनीय होनी चाहिए। कुछ वैज्ञानिक तो मापनीयता पर बहुत जोर देते हैं। लॉर्ड केलविन ने एक बार कहा था कि "जब आप अपने विषय को मापकर संख्यात्मक आंकड़ों में व्यक्त करते हैं तो निश्चय ही आप उसे समझते हैं, लेकिन जब आप विषय को मापने और संख्यात्मक आंकड़ों में व्यक्त करने में असमर्थ रहते हैं तो उसके बारे में आपकी जानकारी अपर्याप्त और असंतोषजनक ही होती है। आइए, अब हम देखें कि अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री कहाँ तक मापनीय है। जैसा कि सर्वविदित है, अर्थशास्त्री के पास मौद्रिक मापदण्ड है जिसकी सहायता से वह व्यक्तिगत एवं व्यापारिक उद्देश्यों को माप सकता है। कुछ अर्थशास्त्रियों का विचार है कि अर्थशास्त्र को –'विज्ञान' का प्रतिष्ठित दर्जा (स्तर) इसलिए नहीं दिया जा सकता क्योंकि

अर्थशास्त्रियों में एकमत का अभाव रहता है। वास्तव में, श्रीमती बारबरा वूटन का अर्थशास्त्र के विरुद्ध यही एक मुख्य आरोप है। उनके कथानानुसार, "यदि किसी स्थान पर छः अर्थशास्त्री एकत्रित होते है।" तो वहाँ उनके सात मत होंगे। अर्थात् एक अर्थशास्त्री ऐसा भी होगा जिसके एक ही विषय पर दो मत होंगे। क्या ऐसी परिस्थिति में अर्थशास्त्र को विज्ञान कहना उचित होगा? इसमें सन्देह नहीं कि आधारमूलक समस्याओं पर भी अर्थशास्त्रियों में मतैक्य का अभाव है। लेकिन इसी कारण अर्थशास्त्र को 'विज्ञान' के दर्जे से वंचित रखना भी उचित प्रतीत नहीं होता।

कुछ अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र को विज्ञान के प्रतिष्ठित दर्जे से इस आधार पर वंचित रखना चाहते हैं कि यह शास्त्र रसायनशास्त्र एवं भौतिकशास्त्र की भांति भावी घटनाओं की सही-सही भविष्यवाणी नहीं कर सकता। यह सत्य है कि भौतिक एवं प्राकृतिक विज्ञानों की भांति अर्थशास्त्र भावी घटनाओं की सही भविष्यवाणी नहीं कर सकता। यह भी सत्य है कि अर्थशास्त्र द्वारा प्रस्तुत भविष्यवाणियाँ बहुधा मिथ्या सिद्ध हुई हैं। लेकिन इसके लिए हम अर्थशास्त्र अथवा अर्थशास्त्रियों को दोषी नहीं ठहरा सकते और न ही इस आधार पर हम अर्थशास्त्र को 'विज्ञान' के दर्जे से वंचित रख सकते हैं। अर्थशास्त्र भावी घटनाओं की सही भविष्यवाणी करने में इसलिए असमर्थ है क्योंकि इसमें असंख्य जटिल तत्त्वों का अध्ययन करना पड़ता है। इनमें से कुछ तत्त्व तो ऐसे हैं जिनके बारे में भविष्यवाणी की ही नहीं जा सकती। अर्थशास्त्र मानव से भी जुड़ा है, और उसका व्यवहार स्वतंत्र है इस बारे में भविष्यवाणी नहीं हो सकती उदाहरणार्थ लॉर्ड कीन्स ने सन् 1930 में भविष्यवाणी की थी कि न्यूयार्क स्टॉक एक्सचेंज पर कीमतों की गिरावट शीघ्र ही समाप्त हो जाएगी और उसके उपरान्त अमरीका का तेजी से औद्योगिकीकरण होगा। किन्तु यह भविष्यवाणी गलत सिद्ध हुई। कीमतें गिरती चली गयी। अमरीका सहित समूचा विश्व महान मन्दी के गड्ढे में जा गिरा। लेकिन प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या अर्थशास्त्र को 'विज्ञान' के दर्जे से वंचित रखने के लिए उक्त आधार उचित है? यदि यह आधार उचित है तो मौसम विज्ञान को भी 'विज्ञान' नही माना जा सकता क्योंकि ऋतु संबंधी भविष्यवाणियाँ अक्सर गलत सिद्ध होती है। क्या हम इसी आधार पर मौसम विज्ञान को 'विज्ञान' के दर्जे से वंचित रख सकते है? कदापि नहीं। वास्तविकता तो यह है कि ऋतु-भविष्यवाणियों की अपेक्षा आर्थिक भविष्यवाणियाँ अधिक विश्वसनीय होती है। भावी तूफानों की अपेक्षा भावी आर्थिक मन्दी के बारे में अधिक विश्वसनीय भविष्यवाणी की जा सकती है। अतः मानव-ज्ञान की किसी शाखा को 'विज्ञान' के दर्जे से इस कारण वंचित नहीं रखना चाहिए कि इसमें सही-सही भविष्यवाणी करने की सामर्थ्य का होना 'विज्ञान' की कोई आवश्यक विशेषता नहीं है। इसके बिना भी मानव-ज्ञान की कोई भी शाखा 'विज्ञान' का दर्जा प्राप्त कर सकती है यदि इसमें अन्य विशेषताएँ पाई जाती है।

हमारे विचार में अर्थशास्त्र 'विज्ञान' कहलाने का पूर्ण अधिकारी है। जो लोग अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक स्वरूप को चुनौती देते हैं वे पानी पूर्ण के स्वर्ग में विचरण कर रहे हैं।

अर्थशास्त्र–कला के रूप में (Economics – As an Art)

'कला' भी 'विज्ञान' की भांति ज्ञान का व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध भण्डार है। लेकिन 'कला' में एक विशेषता होती है जो 'विज्ञान' में नहीं पाई जाती। 'कला' सदैव निश्चित नियमों का निर्माण करती है और विशिष्ट हल प्रस्तुत करती है। जैसा कि प्रो. जे.एम. केंज ने कहा है, "कला वह प्रणाली है जो किसी निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नियम सुझाती है। कला का उद्देश्य ऐसे नियमों का निर्माण करना है। जिन्हें तुरन्त व्यावहारिक नीति पर लागू किया जा सके। 'विज्ञान' तो केवल 'सैद्धांतिक' ही होता है जबकि 'कला' सदैव 'व्यावहारिक' होती है। प्रो. कौसा के शब्दों में, "विज्ञान हमें सैद्धान्तिक ज्ञान, की शिक्षा देता है जबकि कला हमें व्यावहारिक क्रियाओं का प्रशिक्षण प्रदान करती है। संक्षेप में, विज्ञान केवल व्याख्या ही करता है जबकि कला लक्ष्यों की प्राप्ति फे लिए नियमों का प्रतिपादन करती है।" इस परिभाषा को यदि अर्थशास्त्र पर लागू किया जाए तो हम देखेंगे कि यह 'कला' भी है। अर्थशास्त्र की अनेक शाखाएं हैं जो आर्थिक समस्याओं का समाधान करने में हमें व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रदान करती है। उपभोग का प्रतिस्थापन नियम हमें यह बताता है कि अपने व्यय से अधिकतम सन्तुष्टि कैसे प्राप्त कर सकते हैं। अतः अर्थशास्त्र 'विज्ञान' एवं 'कला' दोनों ही है। इसे केवल 'विज्ञान' अथवा केवल 'कला' कहना उचित नहीं है। इसमें

नोट

सन्देह नहीं कि कुछ अर्थशास्त्री इसे केवल 'विज्ञान' ही मानते हैं। उनका कहना है कि उसे केवल विज्ञान मानकर ही हम इसके वैज्ञानिक स्वरूप का निर्माण कर सकते है। 'विज्ञान' के साथ-साथ यदि हम इसे 'कला' भी मान लेते है तो विज्ञान स्वरूप में बाधाएँ आ सकती है। अर्थशास्त्र का कलात्मक रूप भी अधूरा हो सकता है लेकिन प्रो. कौसा के शब्दों में, "विज्ञान को कला और कला को विज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि विज्ञान और कला एक दूसरे के पूरक है। किसी बात का क्रमबद्ध ज्ञान तो विज्ञान है और व्यावहारिक समस्याओं को हल करने के लिए उस ज्ञान का क्रमबद्ध उपयोग कला है। अतः बुद्धिमत्ता इसी में है कि अर्थशास्त्र को 'विज्ञान' तथा 'कला' दोनों एक साथ मान लिया जाए। आधुनिक अर्थशास्त्रियों का भी यही मत है।

अर्थशास्त्र – विशुद्ध एवं व्यावहारिक (Economics – Pure And Practical)

कुछ अर्थशास्त्री अर्थ–विज्ञान को 'विज्ञान' तथा 'कला' एक साथ न मानकर इसे दो वर्गों में विभाजित करते हैं–(1) विशुद्ध अर्थशास्त्र और (2) व्यावहारिक अर्थशास्त्र। वास्तव में, डॉमार्शल ने ही सर्वप्रथम यह भेद किया था। आजकल तो विशुद्ध अर्थशास्त्र एवं व्यावहारिक अर्थशास्त्र का यह वर्गीकरण बहुत ही लोकप्रिय हो चुका है। हमारे विचार में यह वर्गीकरण अर्थशास्त्र के विज्ञान एवं कला के पुराने वर्गीकरण से अधिक वैज्ञानिक है। इससे अर्थशास्त्र को समझने में अपेक्षाकृत अधिक सुविधा रहती है। दूसरे, अन्य विज्ञानों में भी तो ऐसा ही वर्गीकरण किया जाता है। प्रो. बई के शब्दों में, "विशुद्ध विज्ञान तो उपकरणों की व्यवस्था है। व्यावहारिक विज्ञान उन उपकरणों की सहायता से समस्याओं का समाधान करता है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। विशुद्ध विज्ञान का स्थान प्रथम और व्यवहारिक विज्ञान का स्थान दूसरा है। विशुद्ध विज्ञान के बिना व्यावहारिक विज्ञान का काम चल नहीं सकता।"

पिछले कुछ वर्षों में अर्थशास्त्रियों ने व्यावहारिक अर्थशास्त्र के विकास की ओर अधिक ध्यान दिया है। ब्रिटेन एवं अमरीका में व्यावहारिक अर्थशास्त्र पर अनेक पुस्तकें छपी है। व्यावहारिक अर्थशास्त्र की यह लोकप्रियता शायद उस रॉबिन्सवाद की प्रतिक्रिया है जो अर्थशास्त्र को केवल विशुद्ध विज्ञान ही मानता है। युवा पीढ़ी के अर्थशास्त्री अब अपना ध्यान अधिकाधिक व्यावहारिक अर्थशास्त्र पर ही केन्द्रित कर रहे है। इसके-साथ ही वे वर्तमान सामाजिक समस्याओं का समाधान करने का प्रयास भी कर रहे हैं। वस्तुतः व्यावहारिक अर्थशास्त्र आज विशुद्ध अर्थशास्त्र से भी अधिक लाकप्रिय बन गया है। प्रो. जॅर्ज स्टिगलर के अनुसार सैद्धान्तिक अर्थशास्त्री वह होता है जो अपने कुल व्यावसायिक समय का आधे से अधिक भाग आर्थिक समस्याओं से सम्बन्धित सिद्धान्तों के निर्माण में लगाता है।

अर्थशास्त्र सकारात्मक एवं आदर्शक विज्ञान के रूप में

यह विवादास्पद विषय है कि अर्थशास्त्र सकारात्मक विज्ञान है या आदर्शक सभी इस बात पर सहमत है कि अर्थशास्त्र सकारात्मक विज्ञान है। लेकिन क्या अर्थशास्त्र एक आदर्श विज्ञान भी है–इस विषय पर अर्थशास्त्रियों में निश्चित मतभेद है। यह मतभेद शायद उतना ही पुराना है जितना कि अर्थशास्त्र स्वयं। अतीत काल में इस विषय पर भारी विवाद चला था और अर्थशास्त्री दो स्पष्ट सम्प्रदायों में विभाजित हो गए थे। ब्रिटेन के प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का विचार था कि अर्थशास्त्र विशुद्धतः एक सकारात्मक विज्ञान है और अर्थशास्त्रियों को आर्थिक विषयों के औचित्य एवं अनौचित्य पर टीका टिप्पणी करने का कोई अधिकार नहीं है। इसके विपरीत, जर्मनी के ऐतिहासिक सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियों का सुनिश्चित मत था कि किसी भी दशा में अर्थशास्त्र अपने आपको आचारशास्त्र से पृथक् नहीं कर सकता अर्थात् अर्थशास्त्रियों को आर्थिक विषयों के औचित्य एवं अनौचित्य पर, अपना मत व्यक्त करने का पूर्ण अधिकार है।

उक्त विवाद को भली भाँति समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम पहले 'सकारात्मक' एवं 'आदर्शक' विज्ञानों के अर्थ जानने का प्रयास करें। प्रो. जे. एन. कीन्स ने इन दोनो के अन्तर को व्यक्त करते हुए कहा है कि "सकारात्मक विज्ञान क्रमबद्ध ज्ञान का भण्डार है जो इस बात की व्याख्या करता है कि वस्तुएँ कैसी हैं, आदर्शक विज्ञान क्रमबद्ध ज्ञान का वह भण्डार है जो इस बात की व्याख्या करता

नोट

है कि वस्तुएँ कैसी होनी चाहिए। सकारात्मक विज्ञान का सम्बन्ध वास्तविक स्थिति से होता है, आदर्शक विज्ञान का सम्बन्ध आदर्श स्थिति से होता है। सकारात्मक विज्ञान का उद्देश्य नियमों की स्थापना करना है; आदर्शक विज्ञान का उद्देश्य आदर्शों का निर्माण करना है।"

दूसरे शब्दों में, 'सकारात्मक' विज्ञान वस्तुओं के वर्तमान स्वरूप की ही व्यवस्था करता है; यह वस्तुओं के कारणों एवं उनके परिणामों की ही विवेचना करता है, किन्तु उद्देश्यों के प्रति यह पूर्णतः तटस्थ रहता है। यह उद्देश्यों के औचित्य अथवा अनौचित्य पर कुछ भी मत व्यक्त नहीं करता। वास्तव में, नैतिकता से इसे कोई सरोकार नहीं है। इसके विपरीत, आदर्शक विज्ञान तो इस बात की व्याख्या करता है कि वस्तुएँ कैसी होनी चाहिए। आदर्शक विज्ञान उद्देश्यों की नैतिकता अथवा अनैतिकता पर अपानामत व्यक्त करने का पूर्ण अधिकार रखता है। 'सकारात्मक' तथा 'आदर्शक' विज्ञानों के बीच के अन्तर को उदाहरणों द्वारा और भी अधिक स्पष्ट कर सकते है। ब्याज की दर कैसे निर्धारित होती है? कौन-सी शक्तियां हैं जो इसे प्रभावित करती है? यदि इस विषय के संबंध में हम कोई जांच करें तो निश्चय ही इस प्रकार की जांच सकारात्मक अर्थशास्त्र में सम्मिलित की जाएगी। इसका कारण यह है कि इस प्रकार की जांच वस्तुओं के वर्तमान स्वरूप से ही संबन्धित होती है। ब्याज की उचित दर क्या होनी चाहिए। यदि इस विषय के संबंध में कोई जांच की जाती है तो निश्चय ही वह जांच आदर्श विज्ञान का अभिन्न अंग होगी। इसका कारण यह है कि इस प्रकार की जांच वस्तुओं के आदर्शक स्वरूप से संबंधित होती है। ब्याज की उचित दर की विवेचना करते समय हम आचारशास्त्र की उपेक्षा नहीं कर सकते। हमें नैतिकता के विचार को निश्चय ही ध्यान में रखना है। स्मरण रहे कि आदर्शक विज्ञान अपने आपको नैतिकता से पृथक् नहीं कर सकता। इसे प्रत्येक विषय पर नैतिक दृष्टिकोण से विचार करना पड़ता है। इसके विपरीत, सकारात्मक विज्ञान के लिए नैतिक दृष्टिकोण आवश्यक नहीं है। यह तो अपने आपको आचारशास्त्र से पूर्णतः पृथक् कर देता है। मिल्टन प्राफइडमैन के अनुसार सकारात्मक अर्थशास्त्र हमें यह बतलाता है कि आर्थिक समस्या का समाधान कैसे किया जाए। इसके विपरीत, आदर्शक अर्थशास्त्र हमें यह बतलाता है कि आर्थिक समस्या का हल कैसा होना चाहिए। सकारात्मक कथन तथ्यों पर आधारित होता है। इसके विपरीत, आदर्शक कथन में आदर्शक मूल्यों का समावेश भी किया जाता है।

ब्रिटेन का क्लासिकल सम्प्रदाय आर्थिक विश्लेषण को आचारशास्त्र से पूर्णतः अलग रखने के पक्ष में था। इसके विपरीत जर्मनी का ऐतिहासिक सम्प्रदाय अर्थशास्त्र को आचारशास्त्र से संबंध करने पर निरन्तर जोर देता था। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में उक्त विवाद की तीव्रता कुछ कम हो गई थी। किन्तु सन् 1932 में प्रो. रॉबिन्स ने "An Essay on the Nature and Significance of Economic Science" नामक पुस्तक को प्रकाशित करके इस विवाद को पुनर्जीवित कर दिया था। स्मरण रहे प्रो. रॉबिन्स विशुद्ध तर्कवाद तथा सकारात्मक अर्थशास्त्र के कट्टर समर्थक हैं। अर्थशास्त्र के विषय-क्षेत्र तथा उसकी अध्ययन विधि से संबंधित उनके विचार बिल्कुल वैसे ही हैं जैसे कि प्राचीन ब्रिटिश क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के थे। उनमें तनिक भी अंतर नहीं है। रॉबिन्सवाद मानो एक पुरानी शराब है जिसे नयी बोतलों में भर दिया गया है। रॉबिन्स के अनुयायी अर्थशास्त्र का सकारात्मक स्वरूप बनाए रखना चाहते हैं। वे निम्नलिखित आधारों पर इसका समर्थन करते हैं–

1. अर्थशास्त्र में दो प्रकार की जांच हो सकती है। प्रथम वस्तुएँ कैसी हैं? दूसरे, वस्तुएँ कैसी होनी चाहिए? प्रो. रॉबिन्स के अनुयायियों का कहना है कि यदि इन दोनों प्रकार की जांचों को जोड़ दिया जाए तो ऐसा करने से जांचकर्ता भ्रम में पड़ जाएगा उनके कथनानुसार यदि इन दोनों प्रकार की जांच को पृथक् नहीं किया जाता तो अर्थशास्त्र का वैज्ञानिक आधार ही समाप्त हो जाएगा। उदाहरणार्थ, ब्याज की दर कैसी निर्धारित होगी? यदि इस विषय पर विचार करते समय हम यह भी सोचने लगें कि ब्याज की उचित दर क्या होनी चाहिए तो इससे हमारे विषय के अध्ययन में अनावश्यक बाधा पड़ेगी। अतः इन दोनों प्रकार की जांच को अलग ही रखा जाए तो अच्छा होगा। दूसरे शब्दों में, अर्थशास्त्र के सकारात्मक स्वरूप को स्वतंत्र बनाए रखा जाना चाहिए।

नोट

2. रॉबिन्सवादी अर्थशास्त्रियों का विचार है कि यदि अर्थशास्त्र को विशुद्ध सकारात्मक विज्ञान नहीं माना जाता तो निश्चय ही इसकी प्रगति खतरे में पड़ जाएगी। वस्तुएँ कैसी हैं? – जहाँ तक इस जांच का संबंध है अर्थशास्त्रियों में कोई मतभेद नहीं हो सकता क्योंकि इस प्रकार की जांच पूर्णत: तथ्यों पर आधारित होती है और तथ्यों के बारे में मतभेद नहीं हुआ करते। वस्तुएँ कैसी होनी चाहिए? इस पर मतभेद हो सकता है क्योंकि वांछनीयता का प्रश्न आ जाता है।

3. रॉबिन्सवादियों का तीसरा तर्क यह है कि यदि अर्थशास्त्री सैद्धान्तिक (वस्तुएँ कैसी हैं) तथा व्यावहारिक (वस्तुएँ कैसी होनी चाहिए) दोनों प्रकार की जांच का विलीनीकरण कर देता है तो इससे जनता के गुमराह हो जाने की सम्भावना बढ़ जाएगी। यदि अर्थशास्त्री विशुद्ध सैद्धान्तिक नियम का प्रतिपादन करता है तो इस बात की आशंका है कि कहीं जनता उसे व्यावहारिक मार्गदर्शन में असफल न समझ बैठे। जनता द्वारा इस प्रकार का निर्वाचन करना अप्राकृतिक नहीं होगा जब तक कि अर्थशास्त्री अपने नियमों तथा सूत्रों के बीच स्पष्ट भेद नहीं करता। अर्थशास्त्री निश्चित रूप में ऐसा भेद करके ही जनता में फैले संभ्रम को दूर कर सकता है।

क्लासिकल एवं नव-क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की सकारात्मक अर्थशास्त्र के प्रति असीमित अनुराग था। ब्रिटिश अर्थशास्त्री सीनियर ने तो यहाँ तक कह दिया था कि "अर्थशास्त्री को परामर्श का एक शब्द भी कहने का अधिकार नहीं।" प्रो. रॉबिन्स ने उद्देश्यों के प्रति प्राचीन क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की तटस्थता का पुन: समर्थन कर दिया है उन्होंने स्पष्ट कह दिया है कि उद्देश्यों की वांछनीयता अथवा अवांछनीयता से अर्थशास्त्र का कोई संबंध नहीं है। उनके शब्दों में, "अर्थशास्त्र का संबंध सुनिश्चित तथ्यों से है जबकि आचारशास्त्र का संबंध मूल्यों एवं अधिबन्धनाओं से है ये दोनों शास्त्र एक-दूसरे से पृथक हैं।"

लेकिन वर्तमान अर्थशास्त्रियों में बहुत से ऐसे हैं जो अर्थशास्त्र एवं आचारशास्त्र के बीच घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहते हैं। उनके अनुसार अर्थशास्त्री को अपने निष्कर्षों के औचित्य अथवा अनौचित्य पर टिप्पणी करने का पूर्ण अधिकार है। प्रो. हॉट्रे ने तो यहाँ तक कह दिया है कि "अर्थशास्त्र एवं आचारशास्त्र को पृथक् नहीं किया जा सकता।" प्रो. फ्रेजर का कहना है कि "अर्थशास्त्र केवल मूल्य सिद्धान्त अथवा संतुलन-विश्लेषण ही नहीं, बल्कि कुछ और भी है।" दूसरे शब्दों मे इसे नैतिकता से पृथक नहीं किया जा सकता। इस प्रकार का अर्थशास्त्र नितान्त काल्पनिक होगा अथवा गैर वैज्ञानिक होगा। गैर-मनोवैज्ञानिक अर्थशास्त्र तो हैमलेट के उस नाटक की भांति होगा जिसमें हैमलेट की कोई भूमिका ही नहीं। अर्थात् मनोविज्ञान के बिना अर्थशास्त्र किसी काम का नहीं। प्रो. पॉल स्ट्रीटन भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचे है कि अर्थशास्त्रियों को नैतिक दृष्टिकोण अपनाने में संकोच नहीं करना चाहिए अन्यथा उनका विज्ञान कोरा आ. पचारिक तर्कवाद ही बनकर रह जाएगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि आदर्शक अर्थशास्त्र का पक्ष काफी सुदृढ़ है। इसके अलावा, यदि हम चाहें तो भी अर्थशास्त्र को पूर्णत: सकारात्मक नही बना सकते। आखिर अर्थशास्त्री भी तो रक्त और मांस का ही बना हुआ है। वह भी आवेश एवं पक्षपात से विमुक्त नहीं है। वह कितना ही दृढ़ प्रयास क्यों न करे, निजी संपत्ति, संस्था अथवा आदर्श आर्थिक प्रणाली जैसे विषयों की विवेचना करते समय वह आवेश एवं पक्षपात से पिण्ड नहीं छुड़ा सकता अर्थात् उसके आवेश तथा पक्षपात का निश्चय ही उसके अध्ययन पर प्रभाव पड़ेगा। अध्ययन करते समय वह अपने व्यक्तित्व को ताक में नहीं रख सकता। उसके निजी विचारों का निश्चय ही इसके निष्कर्षों पर प्रभाव पड़ेगा। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि अर्थशास्त्र में सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक जांच के परिणामों का विलीनीकरण कर दिया जाए। वस्तुएँ कैसी हैं? अथवा वस्तुएँ कैसी होनी चाहिए?'–इन दोनो प्रकार की जांच के परिणामों को यथासम्भव पृथक् ही रखना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि अर्थशास्त्र का विषय-क्षेत्र कितना व्यापक एवं विस्तृत है। सारांशत: अर्थशास्त्र के क्षेत्र में निम्नलिखित शाखाओं को सम्मिलित किया जा सकता है–

1. **सकारात्मक अर्थशास्त्र अथवा आर्थिक सिद्धान्त अथवा आर्थिक विश्लेषण**–वस्तुएँ कैसी हैं? इस विषय का अध्ययन सकारात्मक अर्थशास्त्र में किया जाता है। इस प्रकार, सकारात्मक अर्थशास्त्र में हम आर्थिक नियमों एवं सिद्धान्तो का अध्ययन करते है।

2. **नैतिक अर्थशास्त्र अथवा आर्थिक सिद्धांत अथवा आर्थिक उद्देश्यों का अध्ययन**–वस्तुएँ कैसी होनी चाहिए–इस विषय का अध्ययन आदर्शक अर्थशास्त्र में किया जाता है।
3. **व्यावहारिक अर्थशास्त्र**–इसमें हम उन विधियों एवं साधनों का अध्ययन करते हैं जिनके माध्यम से आर्थिक उद्देश्यों को व्यवहार में परिणत किया जाता है।
4. **आर्थिक इतिहास**–जैसा कि प्रो. जे. एम. कीन्स ने कहा है, "आर्थिक इतिहास अतीतकालीन आर्थिक घटनाओ का अध्ययन है। इसमें अतीतकाल में होने वाली आर्थिक प्रगति का क्रमबद्ध अध्ययन करते है।"

1.6. व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र में अन्तर

व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र की परिभाषा, क्षेत्र, महत्व व उनकी सीमाओं के व्यापक विश्लेषण से अर्थशास्त्र की इन दोनों शाखाओं के मध्य अन्तर से आप अब तक भली भाँति अवगत हो चुके होंगें। संक्षेप में (एक दृष्टि में) व्यष्टि अर्थशास्त्र व समष्टि के मध्य प्रमुख महत्वपूर्ण अन्तरों को निम्न सारिणी में उल्लेखित किया गया हैं–

क्र. सं.	व्यष्टि अर्थशास्त्र	समष्टि अर्थशास्त्र
1.	इसमें व्यक्तिगत आर्थिक इकाई का अध्ययन होता है।	इसमें सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का वृहत् एवं एक समग्र इकाई के रूप में अध्ययन होता है।
2.	यह वैयक्तिक कीमतों, उपभोग व वैयक्तिक उत्पादक का विश्लेषण करता है।	यह समग्र अर्थव्यवस्था के सामान्य मूल्य, कुल योग, कुल उत्पादन व राष्ट्रीय आय की बात करता है।
3.	यह वैयक्तिक समस्याओं का समाधान एवं नीति प्रस्तुत करता हैं।	यह सम्पूर्ण अर्थव्यस्था की समस्या का समाधान व उपयुक्त नीति प्रस्तुत करता हैं।
4.	इसका क्षेत्र सीमान्त विश्लेषण पर आधारित नियमों तक सीमित है।	इसका क्षेत्र राष्ट्रीय आय, पूर्ण रोजगार, राजस्व आदि समग्र अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित समस्याओं के विश्लेषण तक विस्तृत है।
5.	यह वैयक्तिक फर्मो, उद्योगो व उत्पादन इकाईयों में उतार चढ़ाव की व्याख्या करता है।	यह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के उतार चढ़ाव, आर्थिक मन्दी, अवसाद व तेजी की व्याख्या करता है।
6.	यह कीमत विश्लेषण से सम्बन्धित है।	यह आय विश्लेषण से सम्बन्धित है।
7.	यह पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित हैं।	यह पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित नहीं है।
8.	इसका महत्व आजकज अपेक्षाकृत कम हैं।	इसका महत्व दिनों बढता जा रहा है।

1.7. व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र की पारस्परिक निर्भरता

व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र के व्यापक विश्लेषण से हम इस तथ्य से अवगत हो चुके हैं कि इन दोनों आर्थिक प्रणालियों में से कोई भी प्रणाली अपने में पूर्ण नहीं है, प्रत्येक की कुछ सीमाएँ है। वास्तविकता यह है कि एक प्रणाली की सीमाएँ तथा दोष दूसरी प्रणाली द्वारा दूर हो जाते है अतः दोनों रीतियाँ एक दूसरे पर निर्भर करती है। अर्थशास्त्र की ये दोनों विधियाँ परस्पर एक दूसरे की प्रतियोगी नहीं अपतु पूरक है। आर्थिक विश्लेषण की ये दोनो रीतियों की पारस्परिक निर्भरता को हम कुछ उदाहरण से समझ सकते है।

नोट

व्यष्टि अर्थशास्त्र की समष्टि अर्थशास्त्र पर निर्भरता

व्यष्टि अर्थशास्त्र को समष्टि अर्थशास्त्र को सहारा आवश्यक है। यह बात आप निम्न उदाहरणों द्वारा समझ सकते हैं–

(अ) एक व्यक्तिगत फर्म या उद्योग श्रम, कच्चेमाल, मशीनों आदि के लिए जो कीमते देता है वे केवल उस फर्म या उद्योग की उन साधनों की स्वयं की माँग पर ही निर्भर नहीं करती बल्कि इस तथ्य पर निर्भर करती है कि इन साधनों की समस्त अर्थव्यवस्था में कुल माँग कितनी है?.

(ब) किसी एक वस्तु का मूल्य निर्धारण केवल उस वस्तु की माँग एवम पूर्ति पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि अन्य वस्तुओं की कीमतो पर भी निर्भर करता हैं।

(स) एक फर्म का अपनी उत्पाद मात्रा निश्चित करते समय समाज की माँग आय व रोजगार आदि को भी ध्यान में रखना पड़ता है। अर्थात प्रत्येक फर्म में कीमत, मजदूरी, उत्पादन स्वतंत्र रूप से निर्धारित नहीं हो सकती। इसके लिए समष्टि आर्थिक विश्लेषण का सहारा लेना पड़ता है।

समष्टि अर्थशास्त्र की व्यष्टि अर्थशास्त्र पर निर्भरता

समष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन में व्यष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता रहती है। यह बात, निम्न उदाहरणों से समझी जा सकती है–

(अ) जिस प्रकार व्यक्तियों का समूह मिलकर समाज बनता है उसी प्रकार फर्मों का समूह एक उद्योग और बहुत से उद्योगो को मिलाकर एक अर्थव्यवस्था का निर्माण होता है। अत: सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को समझने के लिए व्यक्तियों, परिवारों, फर्मों और उद्योगों का ज्ञान प्राप्त करता आवश्यक होता है।

(ब) माना कि समाज के सभी लोगों की आय बढ़ जाती है। इस बढ़ी हुई आय को लोग विभिन्न प्रकार से व्यय करते है। यदि लोग लकड़ी के फर्नीचर की अपेक्षा स्टील के फर्नीचर अधिक खरीदने लग जाते है तो स्टील फर्नीचर उद्योग का विकास अधिक होगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था की सामान्य प्रवृत्ति को तभी अच्छी प्रकार समझा जा सकता है जब हमें उन सिद्धातों का ज्ञान हो जो कि व्यक्तियों, परिवारों और फर्मों के व्यवहार पर प्रभाव डालते हैं।

व्यष्टि तथा समष्टि विश्लेषण के मध्य अर्न्तसम्बन्धो के अध्ययन से अब आप भलीभाँति अवगत हो चुके होगें कि आर्थिक विश्लेषण की दो पृथक विधियाँ होने के बावजूद भी व्यष्टि अर्थशास्त्र तथा समष्टि अर्थशास्त्र परस्पर स्वतंत्र न होकर एक दूसरे पर आश्रित हैं। दोनों ही पद्धतियाँ एक दूसरे की पूरक हैं। अर्थव्यवस्था के कार्यकरण को सही ढंग से समझने के लिए हमें दोनों पद्धतियों की आवश्यकता होती है। इस संदर्भ में प्रख्यात अर्थशास्त्री प्रो० सेम्युलसन का मत उल्लेखनीय है कि वास्तव में व्यष्टि तथा समष्टि अर्थशास्त्र में कोई विरोध नहीं हैं। दोनों अत्यन्त आवश्यक है। यदि आप एक को समझते हैं और दूसरे से अनभिज्ञ रहते हैं तो आप केवल अर्द्धशिक्षित है।

1.8. सारांश (Summary)

- अंग्रेजी भाषा के इकॉनॉमिक्स (Economics) शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन Economica या ग्रीक Oikonomia दो शब्दो–Oikos अर्थात गृह तथा Nomas अर्थात नियम के मेल से बना है। इस तरह इसका अर्थ 'गृह प्रबन्ध' है।
- परंपरागत रूप से अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु का अध्ययन दो व्यापक शाखाओं के अंतर्गत किया जाता रहा है : व्यष्टि अर्थशास्त्र तथा समष्टि अर्थशास्त्र। व्यष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत हम बाजार में उपलब्ध विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं के परिप्रेक्ष्य में विभिन्न आर्थिक अभिकर्ताओं के व्यवहार

का अध्ययन करके यह जानने का प्रयाय करते हैं कि इन बाजारों में व्यक्तियों की अंत: क्रिया द्वारा वस्तुओं तथा सेवाओं की मात्राएँ और कीमतें किस प्रकार निर्धारित होती है।

- प्रो. रॉबिन्स के अनुसार "अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो लक्ष्यों तथा उनके सीमित एवं वैकल्पिक उपयोगों वाले साधनों के परस्पर सम्बन्धों के रूप में मानव-व्यवहार का अध्ययन करता है।"

नोट

1.9. अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. अर्थशास्त्र की संक्षेप मे व्याख्या कीजिए।
2. व्यष्टि अर्थशास्त्र को परिभाषित कीजिए।
3. अर्थशास्त्र की दुर्लभता अथवा सीमितता प्रधान परिभाषाएँ दीजिए।
4. क्या अर्थशास्त्र एक विज्ञान है? वर्णन करें।
5. व्यष्टि अर्थशास्त्र की विशेषता लिखें।
6. व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र की पारस्परिक निर्भरता को सझाइए।
7. व्यष्टि और समष्टि अर्थशास्त्र में अन्तर स्पष्ट करें।

नोट

इकाई-2
(Unit-2)

माँग एवम् पूर्ति
(Demand and Supply)

संरचना

2.1 उद्देश्य (Objectives)
2.2 प्रस्तावना (Introduction)
2.3 माँग की धारणा (Concept of Demand)
2.4 माँग तालिका तथा माँग वक्र (Demand Schedule and Demand Curve)
2.5 माँग के निर्धारक तत्व या माँग फलन
(Determinants of Demand or Demand Function)
2.6 विभिन्न निर्धारक तत्व कैसे कार्य करते हैं? (How do Different Determinants Work?)
2.7 माँगी गई मात्रा में परिवर्तन और माँग में परिवर्तन
(Change in Quantity Demanded and Change in Demand)
अथवा
माँग वक्र पर संचलन और माँग वक्र का खिसकाव
(Movement Along Demand Curve and Shift of the Demand Curve)
2.8 माँग में विस्तार तथा वृद्धि में अंतर
(Distinction between Extension and Increase in Demand)
2.9 माँग में संकुचन तथा कमी में अंतर
(Distinction between Contraction and Decrease in Demand)
2.10 माँग की लोच (Elasticity of Demand)
2.11 माँग की कीमत लोच (Price Elasticity of Demand)
2.12 माँग की कीमत लोच की दो अंतिम सीमाएँ
(Two Extreme Situations of Price Elasticity of Demand)
2.13 माँग की कीमत लोच की सामान्य स्थितियाँ
(Normal Situations of Price Elasticity of Demand)
2.14 माँग की लोच की विभिन्न स्थितियों, $E = 1$, $E > 1$ तथा $E < 1$ को प्रकट करने वाली माँग वक्रें
(Demand Curves Showing $E = 1$, $E > 1$ and $E < 1$)
2.15 माँग की कीमत लोच की माप (Measurement of Price Elasticity of Demand)
2.16 माँग की लोच से संबंधित कुछ प्रमेय (Some Theorems of Elasticity of Demand)
2.17 माँग की कीमत लोच को प्रभावित करने वाले तत्व
(Factors Determining the Price Elasticity of Demand)
2.18 माँग की आय लोच (Income Elasticity of Demand)
2.19 माँग की आय लोच की माप (Measurement of Income Elasticity of Demand)
2.20 माँग की आय लोच की श्रेणियाँ (Degrees of Income Elasticity of Demand)
2.21 माँग की आड़ी लोच (Cross Elasticity of Demand)
2.22 माँग की आड़ी लोच का माप (Measurement of Cross Elasticity of Demand)

2.23 माँग की आड़ी लोच की प्रकृति तथा श्रेणियाँ
(Nature and Degrees of Cross Elasticity of Demand)
2.24 माँग की कीमत लोच का महत्त्व (Importance of Price Elasticity of Demand)
2.25. पूर्ति एवं संबंधित विचार (Supply and Related Concepts)
2.26. पूर्ति का नियम (Law of Supply)
2.27. पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन तथा पूर्ति में परिवर्तन
(Change in Quantity Supplied and Change in Supply)
2.28. पूर्ति की लोच (Elasticity of Supply)
2.29. उपभोक्ता की बचत की व्याख्या
2.30. सारांश (Summary)
2.31. अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

2.1. उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात्, विद्यार्थी योग्य होंगे–

- माँग की धारणा जानने हेतु।
- माँग की कीमत लोच का अध्ययन करने हेतु।
- माँग की आय लोच को जानने हेतु।
- माँग की आड़ी लोच समझने हेतु।
- पूर्ति का अर्थ पूर्ति का नियम जानने हेतु
- पूर्ति में परिवर्तन जानने हेतु
- पूर्ति की लोच का अध्ययन करने हेतु

2.2. प्रस्तावना (Introduction)

अर्थशास्त्र में 'माँग' शब्द का प्रयोग विशेष अर्थों में किया जाता है। सामान्यतया इच्छा, आवश्यकता तथा माँग शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया जाता है, परंतु अर्थशास्त्र में इन तीनों शब्दों के अर्थ भिन्न होते हैं। इच्छा एक अभिलाषापूर्ण विचार है। यदि आपकी एक रंगीन टी. वी. लेने की इच्छा है परंतु आपके पास पर्याप्त धन नहीं है तो इच्छा या चाहना आर्थिक दृष्टि से केवल **इच्छा** (Desire) या **अभिलाषापूर्ण विचार** (Wishful Thinking) ही है, **माँग** (Demand) नहीं और यदि पर्याप्त धन होते हुए भी आप इसे रंगीन टी. वी. पर खर्च करना नहीं चाहते तो यह इच्छा केवल **आवश्यकता** (Want) ही कहलाएगी, माँग नहीं।

2.3. माँग की धारणा (Concept of Demand)

अर्थशास्त्र में 'माँग' शब्द का प्रयोग विशेष अर्थों में किया जाता है। सामान्यतया इच्छा, आवश्यकता तथा माँग शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया जाता है, परंतु अर्थशास्त्र में इन तीनों शब्दों के अर्थ भिन्न होते हैं। इच्छा एक अभिलाषापूर्ण विचार है। यदि आपकी एक रंगीन टी. वी. लेने की इच्छा है परंतु आपके पास पर्याप्त धन नहीं है तो इच्छा या चाहना आर्थिक दृष्टि से केवल **इच्छा** (Desire) या **अभिलाषापूर्ण विचार** (Wishful Thinking) ही है, **माँग** (Demand) नहीं और यदि पर्याप्त धन होते

नोट

हुए भी आप इसे रंगीन टी. वी. पर खर्च करना नहीं चाहते तो यह इच्छा केवल **आवश्यकता** (Want) ही कहलाएगी, माँग नहीं। यह इच्छा उसी स्थिति में माँग का रूप धारण करेगी जिस स्थिति में, एक निश्चित समय और एक निश्चित कीमत पर, आप रंगीन टी. वी. खरीदने के लिए तैयार हैं। इस प्रकार माँग का उल्लेख एक निश्चित कीमत व निश्चित समय के संदर्भ में किया जाना चाहिए। **अतः माँग किसी पदार्थ की वह मात्रा है जिसे एक उपभोक्ता समय की एक निश्चित अवधि में एक निश्चित कीमत पर खरीदने के लिए केवल इच्छुक या योग्य ही नहीं बल्कि तैयार भी है।**

एक स्वतंत्र बाजार अर्थव्यवस्था में किसी वस्तु की माँग का कीमत के संदर्भ के बिना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। एक वस्तु की माँग का अनुमान सदैव उसकी कीमत के संदर्भ में लगाया जाता है।

(Demand is defined as the quantity of a product which a consumer is not only desiring to purchase and able to purchase but is also ready to purchase at a given price and at a given point of time.) अन्य शब्दों में, यह कीमत और माँग के बीच के संबंध को बतलाता है। **यह इस बात का संकेत देता है कि विभिन्न कीमतों पर एक वस्तु की कितनी मात्रा माँगी जाएगी।** यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि अर्थशास्त्र **माँग** (Demand) और **माँगी गई मात्रा** (Quantity Demanded) की धारणाओं के बीच अंतर व्यक्त करते हैं। **माँग वे मात्राएँ हैं जो क्रेता समय की एक निश्चित अवधि में विभिन्न या वैकल्पिक कीमतों पर खरीदने के इच्छुक तथा योग्य होते हैं।** (Demand is the quantities that buyers are willing and able to buy at alternative prices during a given period of time.) इसके विपरीत **माँगी गई मात्रा वह विशेष मात्रा है जो क्रेता एक निश्चित कीमत पर खरीदने के इच्छुक तथा योग्य होते हैं।** (The quantity demanded is a specific amount that buyers are willing and able to buy at one price.) उदाहरण के लिए, एक रुपया प्रति आइसक्रीम पर उपभोक्ता द्वारा 4 आइसक्रीम को खरीदने की इच्छा तथा योग्यता **माँगी गई मात्रा** का उदाहरण है, जबकि उपभोक्ता द्वारा 1 रुपये पर 4 आइसक्रीम, 2 रुपए पर 3 आइसक्रीम और 3 रुपए पर 2 आइसक्रीम खरीदने की योग्यता तथा इच्छा **माँग** का उदाहरण है।

माँगी गई मात्रा की धारणा के बारे में दो महत्त्वपूर्ण अवलोकन

(i) विशेष कीमत के संबंध में माँगी गई मात्रा क्रेता की वास्तविक खरीद नहीं होती। यह केवल ऐच्छिक (Intended) खरीद होती है या, वह मात्रा होती है जिसे उपभोक्ता खरीदने का इच्छुक है।

(ii) माँगी गई मात्रा प्रवाह धारणा है न कि स्टॉक धारणा। इससे अभिप्राय एक अलग-थलग खरीद से नहीं है, बल्कि खरीद के निरंतर प्रवाह से है जैसे, प्रतिदिन 2 आइसक्रीम, प्रति सप्ताह 100 संतरे आदि। प्रवाह चरों (जैसे माँग) में समय आकार होता है जबकि स्टॉक चरों में समय आकार नहीं होता।

फर्गुसन के शब्दों में, **"माँग एक वस्तु की मात्राओं को बतलाती है जो उपभोक्ता, अन्य बातें समान रहने पर, समय की एक निश्चित अवधि में प्रत्येक संभव कीमत पर खरीदने के योग्य तथा इच्छुक होते हैं।"** (Demand refers to the quantities of a commmodity that the consumers are able and willing to buy at each possible price during a given period of time, other things being equal.)

—Ferguson

माँग तथा माँगी गई मात्रा में अंतर

माँग से अभिप्राय एक उपभोक्ता द्वारा अपने दिमाग में बनाई गई उस माँग तालिका से है, जिससे प्रकट होता है कि वह किसी वस्तु की संभव कीमतों पर कितनी मात्रा खरीदना चाहता है। इसके विपरीत माँगी गई मात्रा से अभिप्राय किसी वस्तु की उस निश्चित मात्रा से है जिसे उपभोक्ता एक निश्चित कीमत पर खरीदने का इच्छुक है।

बी. आर. शिल्लर के विचार में, **"अन्य बातें समान रहने पर, किसी दी हुई समय अवधि में वैकल्पिक कीमतों पर एक वस्तु की विशिष्ट मात्रा को खरीदने की योग्यता और इच्छा माँग है।"**

(Demand is the ability and willingness to buy specific quantity of a good at alternative prices in a given time period, ceteris paribus. —**B. R. Schiller**)

नोट

2.4. माँग तालिका तथा माँग वक्र (Demand Schedule and Demand Curve)

मैकौनल के शब्दों में, **"माँग तालिका वह तालिका है जो एक वस्तु की विभिन्न कीमतों को दर्शाती है और प्रत्येक कीमत पर उस वस्तु की माँगी गई मात्रा को बतलाती है।"** (Demand schedule is a table that shows different price of a good and the quantity of that good demanded at each of these prices. —**McConnell**).

अन्य शब्दों में, माँग तालिका किसी वस्तु की उन विभिन्न मात्राओं को प्रकट करती है जिन्हें एक उपभोक्ता किसी निश्चित समय में विभिन्न संभव कीमतों पर खरीदने के लिए इच्छुक होता है। इसके दो प्रकार हैं– (1) व्यक्तिगत माँग तालिका और (2) बाजार माँग तालिका।

व्यक्तिगत माँग तालिका (Individual Demand Schedule)

व्यक्तिगत माँग तालिका वह तालिका है जिससे यह प्रकट होता है कि किसी निश्चित समय में एक उपभोक्ता किसी वस्तु की विभिन्न संभव कीमतों पर उसकी कितनी मात्राओं की माँग करेगा। (Individual demand schedule is defined as the table which shows quantities of a given commodity which an individual will buy at all possible prices at a given time.) तालिका 1 व्यक्तिगत माँग तालिका है। इस तालिका द्वारा एक समय में विभिन्न कीमतों पर एक उपभोक्ता द्वारा आइसक्रीम की खरीदी जाने वाली विभिन्न मात्राओं को प्रकट किया गया है।

तालिका 1. व्यक्तिगत माँग तालिका (Individual Demand Schedule)

प्रति इकाई कीमत (रुपए)	*माँगी गई मात्रा (इकाइयाँ)*
1	4
2	3
3	2
4	1

उपरोक्त तालिका से पता चलता है कि जैसे-जैसे आइसक्रीम की कीमत बढ़ती जाती है, उसकी माँग कम होती जाती है। जब आइसक्रीम की कीमत 1 रुपया प्रति इकाई है तब 4 इकाइयों की माँग की जाती है तथा जब कीमत 4 रुपए प्रति इकाई हो जाती है तब केवल 1 इकाई की माँग की जाती है।

बाजार माँग तालिका (Market Demand Schedule)

लीभाफस्की के शब्दों में, **"बाजार माँग तालिका की परिभाषा किसी वस्तु की उन मात्राओं के रूप में दी जाती है जो उस वस्तु के सभी उपभोक्ता किसी निश्चित समय पर सभी संभव कीमतों पर खरीदेंगे।" (Market demand schedule is defined as the quantities of a given commodity which all consumers will buy at all possible price at a given moment of time. —Leibhafsky)**। प्रत्येक बाजार में किसी वस्तु जैसे चीनी के बहुत से क्रेता होते हैं। जिस तालिका द्वारा विभिन्न कीमतों पर किसी वस्तु की बाजार में सब क्रेताओं की कुल माँग को प्रकट किया जाएगा, उसे बाजार माँग तालिका कहा जाएगा। अन्य शब्दों में, यह किसी निश्चित समय में किसी एक विशेष वस्तु की विभिन्न कीमतों पर सभी उपभोक्ताओं की कुल माँग को दर्शाती है। तालिका 2 बाजार माँग तालिका है। यह तालिका सरलता की दृष्टि से इस मान्यता पर आधारित है कि X-वस्तु के A और B दो क्रेता हैं। उनकी व्यक्तिगत माँग को जोड़ कर बाजार माँग तालिका का निर्माण किया गया है।

नोट

तालिका 2. बाजार माँग तालिका (Market Demand Schedule)			
X-वस्तु की कीमत (रु.)	A की माँग	B की माँग	बाजार माँग (इकाइयाँ)
1	4	5	4 + 5 = 9
2	3	4	3 + 4 = 7
3	2	3	2 + 3 = 5
4	1	2	1 + 2 = 3

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि जब X-वस्तु की कीमत 1 रुपया प्रति इकाई है तो A उपभोक्ता की माँग 4 इकाइयाँ और B उपभोक्ता की माँग 5 इकाइयाँ हैं। अत: बाजार माँग 9 इकाइयाँ हैं। जब कीमत बढ़ कर 2 रुपए प्रति इकाई हो जाती है तो बाजार माँग घट कर 7 इकाइयाँ रह जाती हैं, इत्यादि।

बाजार माँग बाजार में किसी वस्तु के सभी क्रेताओं द्वारा की गई माँग का जोड़ है।

माँग तालिका को चित्र द्वारा प्रकट करना माँग वक्र कहलाता है। (The demand curve is a graphic presentation of a demand schedule.)

लेफ्टविच के शब्दों में, **"माँग वक्र वस्तु की उन अधिकतम मात्राओं को प्रकट करती है जिन्हें उपभोक्ता समय की एक अवधि में विभिन्न कीमतों पर खरीदेंगे।"** (The demand curve represents the maximum quantities per unit of time that consumers will take at various prices.)

—Leftwitch

लिप्सी के अनुसार, **"वह वक्र जो कि वस्तु की कीमत और वस्तु की मात्रा, जिसे उपभोक्ता खरीदना चाहता है, में संबंध दिखाता है, माँग वक्र कहलाता है।"** (The curve, which shows the relation between the price of a commodity and the amount of that commodity the consumer wishes to purchase, is called demand curve. —Lipsey) माँग तालिका की भाँति माँग वक्र भी दो प्रकार का हो सकता है—(1) व्यक्तिगत माँग वक्र और (2) बाजार माँग वक्र।

1. **व्यक्तिगत माँग वक्र** (Individual Demand Curve)—व्यक्तिगत माँग वक्र वह वक्र है जो किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर एक उपभोक्ता द्वारा उस वस्तु की माँगी गई मात्रा को प्रकट करता है। चित्र 2.1 में व्यक्तिगत माँग वक्र को स्पष्ट किया गया है। इसमें OX-अक्ष पर वस्तु की माँग तथा OY-अक्ष पर कीमत प्रकट की गई है। DD माँग वक्र है। इस माँग वक्र DD का प्रत्येक बिंदु कीमत तथा माँग में संबंध प्रकट करता है। जब कीमत 2 रुपए है तो माँग 1 इकाई है। जब कीमत 1 रुपया है तो माँग 4 इकाइयाँ हैं। इस माँग वक्र का ढलान ऊपर बाईं ओर से नीचे दाईं ओर को है, जो यह दर्शाता है कि कीमत अधिक होने पर माँग कम होती है तथा कीमत कम होने पर माँग अधिक होती है।

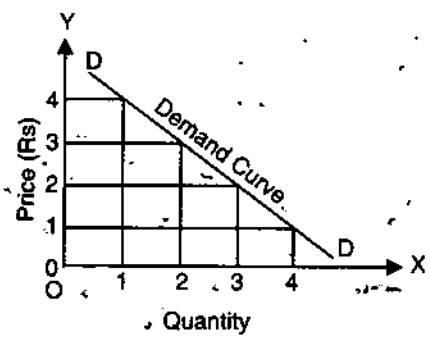

चित्र 2.1

नोट

2. **बाजार माँग वक्र** (Market Demand Curve)–बाजार माँग वक्र किसी वस्तु विशेष की विभिन्न कीमतों पर विभिन्न उपभोक्ताओं द्वारा माँगी गई मात्राओं के जोड़ को प्रकट करता है। इस माँग वक्र को व्यक्तिगत माँग वक्रों के समस्त जोड़ द्वारा खींचा जाता है।

निम्नलिखित चित्र 2.2 में माँग तालिका 2 के आधार पर बाजार माँग वक्र को प्रकट किया गया है।

बाजार माँग वक्र व्यक्तिगत माँग वक्रों का समस्तरीय जोड़ है।

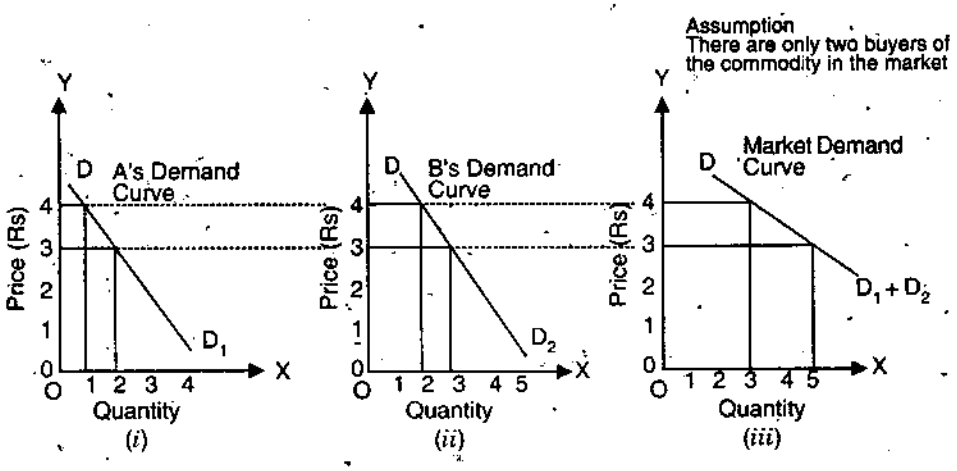

चित्र 2.2

चित्र 2.2 में OX-अक्ष पर मात्रा तथा OY-अक्ष पर कीमत प्रकट की गई है। इसके चित्र 2.2 (*i*) में 'A' उपभोक्ता की माँग वक्र तथा चित्र 2.2 (*ii*) में 'B' उपभोक्ता की माँग वक्र तथा चित्र 2.2 (*iii*) में बाजार की माँग वक्र प्रकट की गई है। जब कीमत 4 रुपए प्रति इकाई है तब 'A' की माँग 1 इकाई और 'B' की माँग 2 इकाइयाँ हैं। यदि बाजार में केवल दो उपभोक्ता हैं तब बाजार माँग 1 + 2 = 3 इकाइयाँ होंगी। व्यक्तिगत माँग वक्रों के **समस्तर जोड़** (Horizontal Summation) द्वारा बाजार माँग वक्र प्राप्त हो जाता है, इसलिए इसका ढलान भी **ऋणात्मक** (Negative) है।

***स्व-मूल्यांकन** (Self Assessment)*

रिक्त स्थान भरिए (Fill in the blanks)—

1. माँग वह तालिका है जो एक वस्तु की विभिन्न ..... को दर्शाती है और प्रत्येक कीमत पर उस वस्तु की माँगी गई मात्रा को बतलाती है।
2. सामान्यतया किसी भी वस्तु की माँग उसकी ..... द्वारा निर्धारित होती है।
3. उपभोक्ता की आय तथा वस्तु की माँग में सामान्यतया ..... संबंध पाया जाता है।

2.5. माँग के निर्धारक तत्व या माँग फलन (Determinants of Demand or Demand Function)

यहाँ हम व्यक्तिगत माँग फलन तथा बाजार माँग फलन में अंतर करते हैं। व्यक्तिगत माँग फलन किसी वस्तु के लिए माँग (किसी व्यक्तिगत क्रेता द्वारा) तथा उसके निर्धारक तत्त्वों के बीच **कार्यात्मक संबंध** (Functional Relationship) का अध्ययन करता है। बाजार माँग फलन किसी वस्तु के लिए बाजार माँग तथा इसके विभिन्न निर्धारकों के बीच कार्यात्मक संबंध का अध्ययन करता है। **व्यक्तिगत माँग फलन (Individual Demand Function)** को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है–

नोट

ध्यान रखिये

माँग के कुछ निर्धारक तत्व जैसे (1) जनसंख्या का आकार तथा रचना और (2) आय का वितरण केवल बाजार माँग को निर्धारित करते हैं। यदि एक उपभोक्ता की मांग के निर्धारक तत्वों के संबंध में प्रश्न पूछा जाता है, तो विद्यार्थियों को इनके तत्वों का वर्णन नहीं करना चाहिए। इसका कारण यह है कि जब एक उपभोक्ता एक निर्णय लेता है कि वस्तु की कितनी मात्रा खरीदी जाये तो वह जनसंख्या के आकार तथा आय के वितरण को ध्यान में नहीं रखता।

$$Q_x = f(P_x, P_r, Y, W, T, E)$$

(यहाँ Q_x वस्तु-X की माँगी गई मात्रा; = P_x वस्तु-X की कीमत; P_r संबंधित वस्तु की कीमत; Y = उपभोक्ता की आय; W = उपभोक्ता की संपत्ति; T = उपभोक्ता की रुचियाँ व पसंद; E = उपभोक्ता की अपेक्षा एवं संभावनाएँ)

इसके विपरीत **बाजार माँग फलन** (Market Demand Function) को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है।

$$Q_x = f(P_x, P_r, Y^*, T, Z, W, E)$$

(यहाँ Q_x वस्तु-X की माँगी गई मात्रा; = P_x वस्तु-X की कीमत; P_r संबंधित वस्तु की कीमत; Y^* = आय का आकार तथा इसका वितरण; T = उपभोक्ता की रुचियाँ व पसंद; Z = जनसंख्या का आकार व रचना; W = उपभोक्ता की संपत्ति; E = उपभोक्ता की अपेक्षाएँ या संभावनाएँ)

नोट–निर्धारक Y^* तथा Z बाजार माँग फलन में बिल्कुल अलग हैं। किसी एक व्यक्ति की माँग (व्यक्तिगत माँग फलन के संदर्भ में) का अर्थव्यवस्था में आय के वितरण तथा जनसंख्या के आकार एवं रचना से कोई संबंध या सरोकार नहीं है। परंतु बाजार माँग के संदर्भ में ये निर्धारक तत्त्व हैं।

नोट–माँग किसी पदार्थ की वह मात्रा है जिसे एक उपभोक्ता समय की एक निश्चत अवधि में एक निश्चित कीमत पर खरीदने के लिए केवल इच्छुक या योग्य ही नहीं बल्कि तैयार भी है।

2.6. विभिन्न निर्धारक तत्व कैसे कार्य करते हैं? (How do Different Determinants Work?)

1. वस्तु की कीमत (Price of Commodity)

सामान्यतया किसी भी वस्तु की माँग उसकी कीमत द्वारा निर्धारित होती है। यदि अन्य निर्धारक तत्व स्थिर रहें या **अन्य बातें समान रहें** *(Ceteris Paribus)* तब किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन आने से उसकी माँग में भी विपरीत परिवर्तन आता है। साधारणतया वस्तु की कीमत बढ़ने पर वस्तु की माँग घटती है तथा इसके विपरीत वस्तु की कीमत घटने पर वस्तु की माँग बढ़ती है। कीमत और माँग के इस संबंध को माँग का नियम कहा जाता है। निम्नलिखित चित्र में इसको दिखाया गया है।

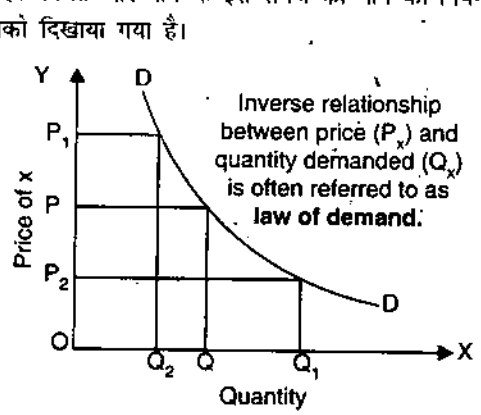

चित्र 2.3

चित्र 2.3 में वस्तु की कीमत के OP से घटकर OP_2 होने पर माँग OQ से बढ़कर OQ_1 हो गई है और कीमत के बढ़कर OP से OP_1 होने पर माँग OQ से कम होकर OQ_2 हो गई है, यह तथ्य इस सत्यता को बतलाता है कि वस्तु की कीमत तथा इसकी माँगी गई मात्रा में विपरीत संबंध (Inverse Relationship) है।

नोट

2. संबंधित वस्तुओं की कीमतें (Prices of Related Goods)

किसी वस्तु की माँग न केवल उस वस्तु की अपनी कीमत बल्कि संबंधित वस्तुओं की कीमतों पर भी निर्भर करती है। वस्तुओं को व्यापक रूप से प्रतिस्थापन तथा पूरक वस्तुओं में वर्गीकृत किया जाता है।

(*i*) **प्रतिस्थापन वस्तुएँ (Substitute Goods)–प्रतिस्थापन वस्तुएँ वे वस्तुएँ हैं जिनका एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग किया जाता है जैसे चाय और कॉफी अथवा पेप्सी कोला और कोका कोला।** कोका कोला की माँग का संबंध पेप्सी कोला की कीमत से है। यदि पेप्सी कोला की कीमत बढ़ जाती है तो लोग कोका कोला की माँग अधिक करेंगे और यदि पेप्सी कोला की कीमत कम हो जाती है तो कोका कोला की माँग कम हो जाएगी। अन्य शब्दों में, **प्रतिस्थापन वस्तुओं के मामले में एक वस्तु की माँगी गई मात्रा का दूसरी अर्थात् प्रतिस्थापन वस्तु की कीमत से प्रत्यक्ष संबंध है।** यदि एक वस्तु जैसे कोका कोला की कीमत बढ़ती है तो उसकी प्रतिस्थापन वस्तु, पेप्सी कोला की माँग बढ़ जाएगी। इसके विपरीत यदि कोका कोला की कीमत घट जाती है तब इसके प्रतिस्थापन पेप्सी कोला की माँग भी कम हो जाएगी। चित्र 2.4 द्वारा संबंध को स्पष्ट किया जा सकता है–

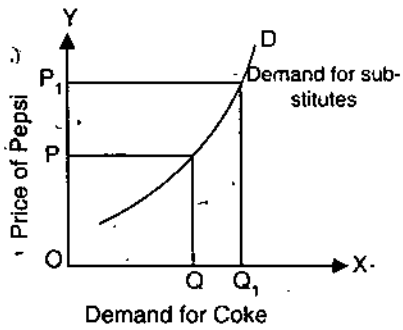

चित्र 2.4

चित्र 2.4 से प्रकट होता है कि पेप्सी की कीमत OP से बढ़कर OP_1 होने पर कोका कोला की माँग OQ से बढ़ कर OQ_1 हो गई है।

(*ii*) **पूरक वस्तुएँ** (Complementary Goods)–**पूरक वस्तुएँ वे वस्तुएँ हैं जिनका प्रयोग एक साथ किया जाता है तथा जिनकी उपयोगिता एक दूसरे पर निर्भर करती है जैसे कार और पेट्रोल तथा पेन और स्याही। पूरक वस्तुओं की कीमत तथा माँग में विपरीत या ऋणात्मक संबंध** (Inverse or Negative Relationship) **होता है। एक पूरक वस्तु जैसे पेन की कीमत बढ़ने से स्याही की माँग (पेन की माँग के साथ) में कमी हो जाती है। इसके विपरीत पेन की कीमत कम होने पर स्याही की माँग में वृद्धि हो जाती है।** अन्य शब्दों में, यदि दो वस्तुएँ एक दूसरे की पूरक हैं और यदि एक की कीमत बढ़ती है, अन्य पूरक वस्तु की माँग कम हो जाएगी। इसके विपरीत यदि एक की कीमत में कमी आती है तो दूसरी पूरक वस्तु की माँग बढ़ जाएगी। चित्र 2.5 द्वारा इसको स्पष्ट किया जा सकता है।

नोट

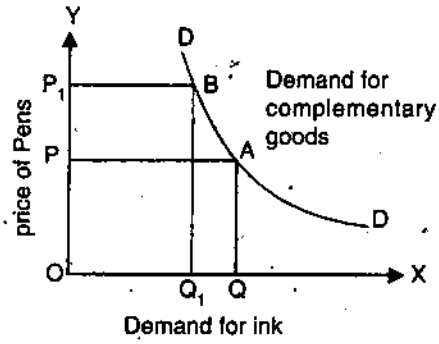

चित्र 2.5

चित्र 2.5 से प्रकट होता है कि पेनों की कीमत OP से बढ़कर OP_1 होने पर स्याही की माँग OQ से कम होकर OQ_1 हो गई है।

अतः प्रतिस्थापन वस्तुओं के मामले में माँग वक्र का ढलान धनात्मक (Positively Sloped) **होता है जबकि पूरक वस्तुओं के मामले में माँग वक्र का ढलान ऋणात्मक** (Negatively Sloped) **होता है।**

3. उपभोक्ता की आय (Income of the Consumer)

उपभोक्ता की आय तथा वस्तु की माँग में सामान्यतया प्रत्यक्ष संबंध पाया जाता है। अर्थात् आय में वृद्धि होने पर वस्तुओं की माँग में वृद्धि हो जाती है तथा आय के कम होने पर वस्तुओं की माँग कम हो जाती है। अर्थशास्त्र में ऐसी वस्तुओं को **सामान्य वस्तुएँ** (Normal Goods) कहा जाता है। **सामान्य वस्तु वह वस्तु है जिसकी माँग उपभोक्ता की आय के बढ़ने के साथ बढ़ती है।** कुछ वस्तुएँ ऐसी भी हैं जिन्हें निम्नकोटि की वस्तुएँ कहा जाता है। **निम्नकोटि की वस्तु** (Inferior Goods) **वह वस्तु है जिसकी माँग उपभोक्ता की आय बढ़ने पर घट जाती है।** अतः एक वस्तु की माँग तथा उपभोक्ता की आय के बीच के संबंध की व्याख्या निम्नलिखित तीन वर्गों के संदर्भ में की जाती है–

(*i*) सामान्य वस्तुएँ, (*ii*) निम्नकोटि की वस्तुएँ, (*iii*) आवश्यक वस्तुएँ तथा सस्ती वस्तुएँ।

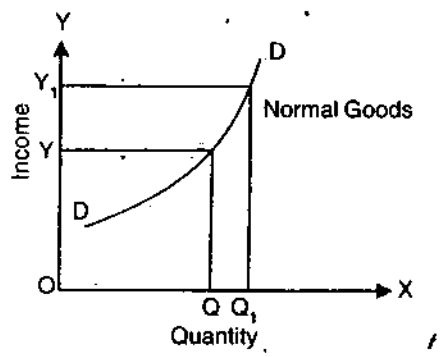

चित्र 2.6

(*i*) **सामान्य वस्तुएँ** (Normal Goods)–**सामान्य वस्तुएँ वे वस्तुएँ हैं जिनकी माँग उपभोक्ता की आय बढ़ने पर बढ़ती है और आय के घटने पर घटती है।** इस प्रकार उपभोक्ता की आय तथा माँगी गई मात्रा में प्रत्यक्ष या धनात्मक संबंध है, इसे चित्र 2.6 द्वारा दर्शाया गया है। चित्र 2.6 से स्पष्ट हो जाता है कि उपभोक्ता की आय के OY से बढ़कर OY_1 होने पर वस्तु की माँग OQ से बढ़कर OQ_1 होने की प्रवृत्ति दर्शाती है। माँग वक्र DD का ढलान बाएँ से दाएँ ऊपर की ओर है जो आय तथा माँगी गई मात्रा के प्रत्यक्ष या धनात्मक संबंध को बताता है।

नोट

(ii) निम्नकोटि की वस्तुएँ (Inferior Goods)– **निम्नकोटि या घटिया वस्तुएँ वे वस्तुएँ हैं जिनकी माँग उपभोक्ता की आय बढ़ने पर घट जाती है और आय कम होने पर बढ़ जाती हैं।** इस प्रकार उपभोक्ता की आय तथा निम्नकोटि की वस्तु की माँग में विपरीत संबंध होता है। चित्र 2.7 इस स्थिति को प्रकट करता है।

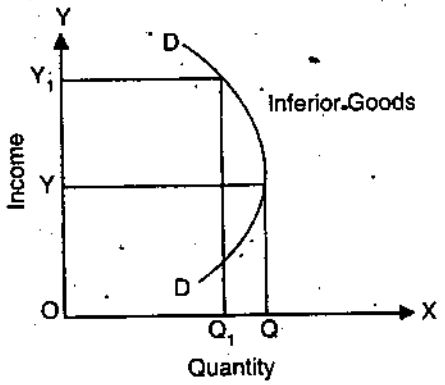

चित्र 2.7

चित्र 2.7 से ज्ञात होता है कि उपभोक्ता की आय के OY से OY_1 बढ़ने पर X वस्तु (जो घटिया वस्तु है) की माँगी गई मात्रा OQ से घट कर OQ_1 हो गई है। इसका कारण यह है कि उपभोक्ता आय में वृद्धि होने से घटिया वस्तुओं के स्थान पर बढ़िया वस्तुओं का अधिक प्रयोग करने लगता है। अतः घटिया वस्तुओं के लिए आय माँग वक्र DD ऋणात्मक ढाल वाला होता है।

(iii) आवश्यक वस्तुएँ तथा सस्ती वस्तुएँ (Necessaries of Life and Inexpensive Goods)–उपभोक्ता की आय तथा आवश्यक व सस्ती वस्तुओं के बीच के संबंध का अध्ययन भी आवश्यक है। आवश्यक तथा सस्ती वस्तुओं जैसे नमक, माचिस, दालें, आलू आदि की माँग पर उपभोक्ता की आय में एक सीमा के बाद होने वाली वृद्धि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता अर्थात् माँग स्थिर रहती है। आरंभ में जब आय बहुत कम होती है तो आय के बढ़ने पर माँग बढ़ जाती है परंतु एक सीमा के पश्चात् आय के बढ़ने का माँग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस स्थिति को चित्र 2.8 द्वारा व्यक्त किया गया है।

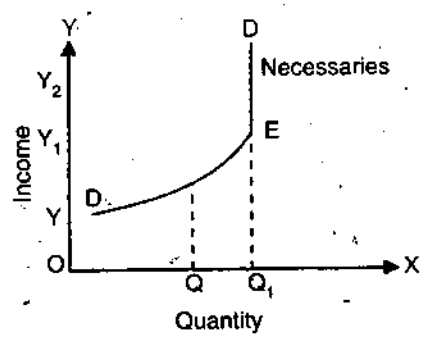

चित्र 2.8

चित्र 2.8 यह दर्शाता है कि उपभोक्ता की आय जब OY से बढ़कर OY_1 होती है, तब माँग OQ से बढ़कर OQ_1 हो जाती है। अर्थात् माँग में केवल थोड़ी-सी मात्रा में ही वृद्धि (Moderate Stretch) होती है। इसके पश्चात् माँग स्थिर हो जाती है। आय के OY_2 या उससे अधिक हो जाने पर भी माँग में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। Y-अक्षांश के समानांतर माँग वक्र का भाग ED (Vertical Stretch) माँग के स्थिर रहने को व्यक्त कर रहा है।

नोट

4. **रुचि तथा प्राथमिकताएँ** (Taste and Preferences)–किसी भी वस्तु या सेवा की माँग व्यक्ति की रुचियों तथा प्राथमिकताओं पर निर्भर करती है। इन शब्दों का प्रयोग काफी विस्तृत अर्थों में किया जाता है। इनके अंतर्गत फैशन, आदत, रीति-रिवाज आदि को शामिल किया जाता है। उपभोक्ताओं की रुचियों एवं प्राथमिकताओं पर विज्ञापन, फैशन में परिवर्तन, मौसम, नए आविष्कारों आदि का प्रभाव पड़ता है। अन्य बातें समान रहने पर, उपभोक्ताओं की जिन वस्तुओं के लिए रुचि व प्राथमिकता बढ़ जाती है उनकी माँग बढ़ जाती है। इसके विपरीत उपभोक्ता की प्राथमिकताओं एवं रुचियों में प्रतिकूल परिवर्तन होने पर वस्तु की माँग कम हो जाती है।

रुचि तथा प्राथमिकता शब्द (1) व्यक्तिगत पसंदगी तथा नापसंदगी (2) फैशन (3) मौसम या जलवायु को व्यक्त करते हैं।

5. **संभावनाएँ** (Expectations)–वस्तु की कीमतों, वस्तु की उपलब्धता और भावी आय आदि में भविष्य में होने वाले परिवर्तनों से संबंधित उपभोक्ता की संभावनायें माँग के अन्य निर्धारक तत्त्व हैं। यदि उपभोक्ता को यह संभावना है कि भविष्य में कीमत बढ़ जाएगी तो वह वर्तमान में वस्तु अधिक मात्रा में खरीदेगा, चाहे उसकी कीमत अधिक ही क्यों न हो। इसी प्रकार यदि उपभोक्ता को यह आशा है कि भविष्य में वस्तु की कीमत घट जाएगी तो वह वर्तमान में वस्तु की माँग कम या स्थगित कर देगा। भविष्य में आय के बढ़ने अथवा घटने की संभावना का भी वर्तमान माँग पर प्रभाव पड़ता है। आय में वृद्धि की संभावना और वस्तु की माँग में साधारणतया सीधा संबंध होता है। भविष्य में आय के बढ़ने की संभावना से माँग में वृद्धि होती है और भविष्य में आय के कम हो जाने का डर माँग को कम कर देता है।

6. **जनसंख्या का आकार तथा रचना** (Size and Composition of Population)–बाजार माँग जनसंख्या के आकार तथा रचना में परिवर्तन होने से भी प्रभावित होती है। जनसंख्या में वृद्धि होने से सभी प्रकार की वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है और जनसंख्या में कमी इनकी माँग को भी कम कर देती है। जनसंख्या की रचना भी माँग को प्रभावित करती है। जनसंख्या की रचना से अभिप्राय है कि जनसंख्या में बच्चे, नवयुवक, पुरुष, स्त्रियाँ आदि कितने हैं। यदि जनसंख्या की रचना में परिवर्तन आता है जैसे स्त्रियों की संख्या पुरुषों की तुलना में बढ़ जाए तब उन वस्तुओं की माँग बढ़ जाएगी जिन्हें स्त्रियाँ खरीदती हैं।

7. **आय का वितरण** (Distribution of Income)–समाज में होने वाले आय के वितरण का भी बाजार माँग पर प्रभाव पड़ता है। यदि आय का वितरण असमान है तो धनी व्यक्तियों के प्रयोग में आने वाली विलासिता की वस्तुओं जैसे रंगीन टी. वी. स्वचालित वाशिंग मशीन, वीडियो कैमरा आदि की माँग अधिक हो जाएगी। दूसरी ओर यदि आय का वितरण समान है तो विलासिता की वस्तुओं की माँग कम होगी और आवश्यकता तथा आरामदायक वस्तुओं की माँग अधिक होगी।

क्या आप जानते हैं? सामान्य वस्तु वह वस्तु है जिसकी माँग उपभोक्ता की आय के बढ़ने के साथ बढ़ती है।

2.7. माँगी गई मात्रा में परिवर्तन और माँग में परिवर्तन (Change in Quantity Demanded and Change in Demand)

अथवा

माँग वक्र पर संचलन और माँग वक्र का खिसकाव (Movement Along Demand Curve and Shift of the Demand Curve)

अर्थशास्त्रियों के अनुसार, **"माँगी गई मात्रा में परिवर्तन"** तथा **"माँग में परिवर्तन"** संबंधी

नोट

धारणाओं में अंतर होता है। **"माँगी गई मात्रा में परिवर्तन"** वस्तु की कीमत में होने वाले परिवर्तन का माँग पर पड़ने वाले प्रभाव को बतलाता है जबकि माँग के अन्य निर्धारक तत्त्व जैसे आय, रुचियाँ और संबंधित वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहती हैं। चूँकि एक निश्चित कीमत पर माँगी गई मात्रा को माँग वक्र के एक बिंदु द्वारा दर्शाया जाता है, अत: माँगी गई मात्रा में परिवर्तन **एक ही माँग वक्र के विभिन्न बिंदुओं** (Movement along a Demand Curve) या **माँग वक्र पर संचलन** द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। इसके विपरीत **"माँग में परिवर्तन"** वस्तु की कीमत में परिवर्तन के कारण नहीं होता; यह आय, रुचियों, संबंधित वस्तुओं की कीमत आदि में परिवर्तन के कारण वस्तु के लिए उपभोक्ता की माँग पर पड़ने वाले प्रभाव को व्यक्त करता है। जबकि वस्तु की कीमत स्थिर रहती है। **माँग में परिवर्तन** संपूर्ण माँग वक्र के बाईं ओर अथवा दाईं ओर **खिसकाव** अथवा **स्थानांतरण** (Shift) को प्रदर्शित करता है। माँग में परिवर्तन के दोनों प्रकारों में अंतर का बहुत अधिक महत्त्व है। एक ही माँग वक्र पर संचलन या माँगी गई मात्रा में परिवर्तन बाजार कीमत में परिवर्तन के कारण उपभोक्ता द्वारा माँगी गई मात्रा में किये गये समन्वय को प्रकट करता है। इसके विपरीत माँग वक्र का खिसकाव बाहरी तत्त्वों (जैसे आय, रुचियाँ, संबंधित वस्तुओं की कीमतें आदि) में होने वाले परिवर्तनों से संबंधित उपभोक्ता के समन्वय तथा संतुलन कीमत और मात्रा में होने वाले परिवर्तन को प्रकट करता है।

1. माँगी गई मात्रा में परिवर्तन या माँग वक्र पर संचलन

(Change in Quantity Demanded or Movement Along the Demand Curve)

अन्य बातें समान रहने पर, **जब माँगी गई मात्रा में, केवल कीमत में परिवर्तन के कारण, परिवर्तन होता है** तब माँग में होने वाले परिवर्तन को एक ही माँग वक्र के विभिन्न बिंदुओं द्वारा प्रकट किया जाता है। कीमत के कम होने से माँग में होने वाली वृद्धि को **माँग का विस्तार** (Extension of Demand) और कीमत के बढ़ने से माँग में होने वाली कमी को **माँग का संकुचन** (Contraction of Demand) कहा जाता है। संक्षेप में, एक ही माँग वक्र पर संचलन वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप संभव होता है। (Movements along a demand curve are in response to price changes for that good.) इन संचलनों में यह मान लिया जाता है कि माँग के कीमत के अतिरिक्त अन्य निर्धारक तत्त्व अपरिवर्तनीय हैं। एक दी गई माँग वक्र पर संचलन वस्तु की कीमत में परिवर्तन के कारण माँगी गई मात्रा में परिवर्तन को दर्शाता है। संक्षेप में

केवल कीमत में परिवर्तन
→ **माँगी गई मात्रा में परिवर्तन**
→ **माँग वक्र पर संचलन**

माँगी गई मात्रा में परिवर्तन दो प्रकार के हो सकते हैं।

1. **माँग का विस्तार** (Extension of Demand)—**अन्य बातें समान रहने पर, जब किसी वस्तु की कीमत में कमी होने के फलस्वरूप उसकी माँग अधिक हो जाती है तो इसे माँग का विस्तार कहा जाता है।** (Extension of demand refers to a rise in quantity demanded as a result of fall in price). जैसा कि तालिका 3 में दिखाया गया है कि जब सेबों की कीमत 5 रुपये प्रति किलो है तो सेबों की माँग 1 किलो है, जब कीमत कम होकर 1 रुपया प्रति किलो हो जाती है तो माँग का विस्तार होकर नई माँग 5 किलो सेब हो जाती है।

नोट

तालिका 3. माँग का विस्तार (Extension of Demand)		
कीमत (रु.)	माँग की मात्रा (किलो)	वर्णन
5	1	कीमत में कमी
↓	↓	↓
1	5	माँग में विस्तार

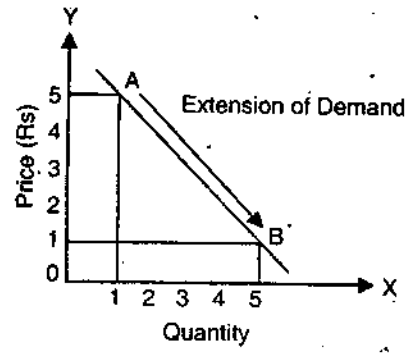

चित्र 2.9

माँग के विस्तार को चित्र 2.9 द्वारा प्रकट किया जा सकता है।

इस चित्र में AB सेबों की माँग वक्र है। सेबों की कीमत 5 रुपये प्रति किलो है तो माँग 1 किलो है। उपभोक्ता माँग वक्र के 'A' बिंदु पर है। जब सेबों की कीमत कम होकर 1 रुपये प्रति किलो हो जाती है तो उसकी माँग का विस्तार होकर नई माँग 5 किलो हो जाती है और उपभोक्ता माँग वक्र के 'B' बिंदु पर पहुँच जाता है। अत: माँग वक्र के ऊँचे बिंदु (A) से निचले बिंदु (B) की ओर सरकना माँग के विस्तार को प्रकट करता है।

2. **माँग का संकुचन** (Contraction of Demand)–**अन्य बातें समान रहने पर, जब किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि होने के फलस्वरूप उसकी माँग कम हो जाती है तो इसे माँग का संकुचन कहा जाता है।** (Contraction of demand refers to fall in quantity demanded as a result of rise in price) जैसा कि तालिका 4 में दिखाया है कि जब सेबों की कीमत 1 रुपया प्रति किलो है तो सेबों की माँग 5 किलो है। यदि सेबों की कीमत बढ़कर 5 रुपये प्रति किलो हो जाती है तो माँग का संकुचन होकर नई माँग 1 किलो हो जाती है।

तालिका 4. माँग का संकुचन (Contraction of Demand)		
कीमत (रु.)	माँग की मात्रा (किलो)	वर्णन
1	5	कीमत में वृद्धि
↓	↓	↓
5	1	माँग में संकुचन

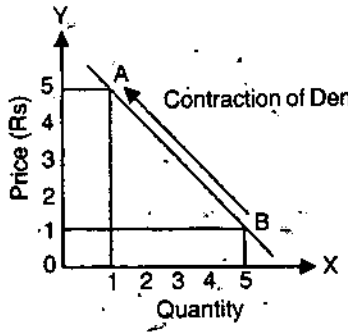

चित्र 2.10

माँग के संकुचन को चित्र 2.10 द्वारा प्रकट किया जा सकता है। इस चित्र में AB सेबों का माँग वक्र है। जब सेबों की कीमत 1 रुपया प्रति किलो है तो माँग 5 किलो सेब है। उपभोक्ता माँग वक्र के 'B' बिंदु पर है। इसके विपरीत जब सेबों की कीमत बढ़कर 5 रुपये प्रति किलो हो जाती है तो सेबों की माँग का संकुचन होकर नई माँग 1 किलो हो जाती है और उपभोक्ता 'A' बिंदु पर पहुँच जाता है। अत: माँग वक्र को निचले बिंदु (B) से ऊँचे बिंदु (A) की ओर सरकना माँग के संकुचन को प्रकट करता है।

2. माँग में परिवर्तन या माँग वक्र का खिसकाव

(Change in Demand or Shift in Demand Curve)

कीमत के अतिरिक्त माँग के किसी भी निर्धारक तत्त्व में परिवर्तन संपूर्ण माँग वक्र को दाईं या बाईं ओर खिसका देता है। माँग में वृद्धि को दाईं ओर खिसकाव द्वारा और माँग में कमी को बाईं ओर खिसकाव द्वारा दिखाया जाता है। अर्थशास्त्री इसे **माँग में परिवर्तन** कहते हैं। माँग में परिवर्तन, आय, रुचियों या संबंधित वस्तुओं की कीमत में परिवर्तन आदि के कारण होते हैं। संक्षेप में माँग वक्र का दाईं ओर खिसकाव माँग में वृद्धि और बाईं ओर खिसकाव माँग में कमी प्रकट करता है।

आय, रुचियों या केवल कीमतों में परिवर्तन

→ **माँग में परिवर्तन**

→ **माँग वक्र का खिसकाव**

किसी वस्तु की माँग के विस्तार तथा संकुचन की व्याख्या उसकी कीमत में होने वाले परिवर्तन के संदर्भ में की जाती है। माँग में वृद्धि तथा कमी की व्याख्या माँग की कीमत के अतिरिक्त निर्धारित करने वाले अन्य तत्त्वों के संदर्भ में की जाती है।

माँग में कमी (Decrease in Demand) **अथवा माँग वक्र के बाईं ओर खिसकाव** (Leftward Shift in Demand Curve) के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं–

1. आय में कमी
2. प्रतिस्थापन वस्तु की कीमत में कमी
3. पूरक वस्तुओं की कीमत में वृद्धि
4. रुचियों, पसंदों और प्राथमिकताओं में प्रतिकूल परिवर्तन
5. भविष्य में कीमत घटने की संभावना
6. जनसंख्या (क्रेताओं) में कमी

नोट

इसी भाँति **माँग में वृद्धि** (Increase in Demand) अथवा **माँग वक्र के दाईं ओर खिसकाव** (Rightward Shift in Demand Curve) के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं–

1. आय में वृद्धि
2. प्रतिस्थापन वस्तु की कीमत में वृद्धि
3. पूरक वस्तुओं की कीमत में कमी
4. रुचियों, पसंदों और प्राथमिकताओं में अनुकूल परिवर्तन
5. भविष्य में कीमत घटने की संभावना
6. जनसंख्या (क्रेताओं) में वृद्धि

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)–

4. सामान्य वस्तु वह वस्तु है जिसकी माँग ..... की आय के बढ़ने के साथ बढ़ती है।
   (अ) उपभोक्ता (ब) व्यक्ति
   (स) प्रतिस्थापन (द) आम व्यक्ति
5. निम्नकोटि की वस्तु वह वस्तु है जिसकी माँग उपभोक्ता की आय बढ़ने पर ..... जाती है।
   (अ) कम हो (ब) घट
   (स) अधिक हो (द) बढ़
6. कीमत के बढ़ने से माँग में होने वाली कमी को माँग का कहा जाता है–
   (अ) संकुचन (ब) वक्र
   (स) संचलन (द) वितरण
7. वस्तु माँग में वृद्धि तब होती है जब वस्तु की कीमत स्थिर रहने पर वह खरीदी जाती है–
   (अ) अधिक मात्रा में (ब) कम मात्रा में
   (स) संतुलित मात्रा में (द) बिलकुल नहीं।

2.8. माँग में विस्तार तथा वृद्धि में अंतर (Distinction between Extension and Increase in Demand)

माँग में विस्तार से अभिप्राय है, अन्य बातें समान रहने पर, एक वस्तु की कीमत में गिरावट के कारण माँग का बढ़ना। इसको एक ही माँग वक्र के ऊँचे बिंदु से निचले बिंदु पर संचलन या **हरकत** (Movement) द्वारा व्यक्त किया जाता है। दूसरी ओर **माँग में वृद्धि** से अभिप्राय है कीमत के स्थिर रहने पर माँग के अन्य निर्धारक तत्त्वों (जैसे रुचियों, उपभोक्ता की आय, प्रतिस्थापन वस्तु की कीमत) में परिवर्तन के कारण माँग का बढ़ना। इसे संपूर्ण माँग वक्र के ऊपर की ओर खिसकाव या सरकने द्वारा व्यक्त किया जाता है।

माँग में विस्तार तथा वृद्धि में अंतर

*किसी वस्तु की माँग में **विस्तार** तब होता है जब वस्तु की **कीमत कम** होने पर उसकी अधिक मात्रा खरीदी जाती है। वस्तु की माँग में **वृद्धि** तब होती है जब वस्तु की **कीमत स्थिर** रहने पर उसकी अधिक मात्रा खरीदी जाती है।*

चित्र 2.11 माँग में विस्तार तथा माँग में वृद्धि के अंतर को स्पष्ट कर रहा है। DD प्रारंभिक माँग वक्र है। चित्र 2.11 से ज्ञात होता है कि DD माँग वक्र के 'A' बिंदु से माँग में दो विभिन्न वृद्धि संभव

नोट

है। **एक** यह है कि एक ही माँग वक्र DD के 'A' बिंदु से संचलन करके 'B' बिंदु पर माँग की मात्रा का OQ से बढ़कर OQ_1 होना। माँगी गई मात्रा में यह वृद्धि कीमत के OP से घटकर OP_1 होने के कारण हुई है। इसे **माँग में विस्तार** कहा जाता है। **दूसरा** यह है कि संपूर्ण माँग वक्र DD का सरक कर $D_1 D_1$ हो जाना। प्रारंभिक कीमत OP पर उपभोक्ता OQ मात्रा खरीदता था जिसे DD माँग वक्र के 'A' बिंदु द्वारा दिखाया गया है, परंतु कीमत के अतिरिक्त माँग के अन्य निर्धारक तत्त्वों में परिवर्तन हो जाने के फलस्वरूप उपभोक्ता OQ_1 मात्रा खरीदता है जिसे $D_1 D_1$ माँग वक्र के 'C' बिंदु द्वारा दिखाया गया है। इस परिवर्तन को **माँग में वृद्धि** कहा जाता है।

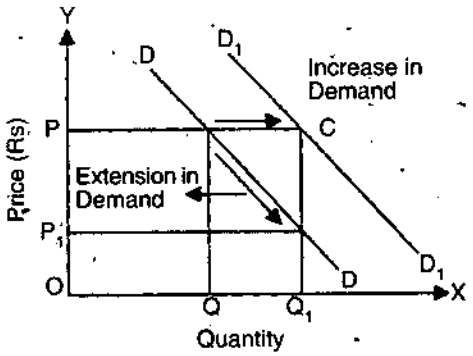

चित्र 2.11

2.9. माँग में संकुचन तथा कमी में अंतर (Distinction between Contraction and Decrease in Demand)

माँग में संकुचन से अभिप्राय है, अन्य बातें समान रहने पर, एक वस्तु की कीमत बढ़ने के कारण माँग का कम हो जाना। इसको एक ही माँग वक्र के निचले बिंदु से ऊँचे बिंदु पर संचलन द्वारा व्यक्त किया जाता है। दूसरी ओर, माँग में कमी से अभिप्राय है, कीमत के अतिरिक्त माँग के अन्य निर्धारक तत्त्वों में परिवर्तन के कारण माँग का कम हो जाना। इसे संपूर्ण माँग वक्र के नीचे या पीछे की ओर खिसकाव द्वारा व्यक्त किया जाता है।

माँग में संकुचन तथा माँग में कमी में अंतर

किसी वस्तु की माँग में संकुचन तब होता है जब वस्तु की कीमत अधिक होने पर उसकी कम मात्रा खरीदी जाती है। वस्तु की माँग में कमी तब होती है जब कीमत स्थिर रहने पर उसकी कम मात्रा खरीदी जाती है।

चित्र 2.12 माँग में संकुचन तथा माँग में कमी के अंतर को स्पष्ट कर रहा है। DD प्रारंभिक माँग वक्र है। DD माँग वक्र के 'A' बिंदु से माँग में दो विभिन्न कमी संभव है। **एक** यह है कि एक ही माँग वक्र DD के 'A' बिंदु से संचलन करके 'B' बिंदु पर माँग की मात्रा का OQ से कम होकर OQ_1 हो जाना। माँगी गई मात्रा का कम होना कीमत के OP से बढ़ कर OP_1 होने के कारण संभव हुआ है। **इसे माँग में संकुचन** कहा जाता है। **दूसरा** यह है संपूर्ण माँग वक्र DD का सरक कर $D_1 D_1$ हो जाना। प्रारंभिक कीमत OP पर उपभोक्ता वस्तु की OQ मात्रा खरीदता था, जिसे DD माँग वक्र के 'A' बिंदु द्वारा दिखाया गया है। परंतु अब वह इस कीमत पर OQ_1 मात्रा खरीदता है। जिसे $D_1 D_1$ वक्र के 'C' बिंदु द्वारा दिखाया गया है। माँग वक्र में यह खिसकाव (DD से $D_1 D_1$) कीमत में परिवर्तन के कारण नहीं बल्कि माँग के अन्य निर्धारक तत्वों के कारण संभव हुआ है। माँग में यह परिवर्तन **माँग में कमी** कहलाता है।

नोट

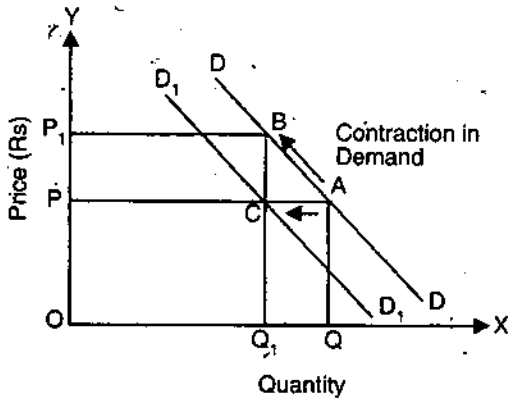

चित्र 2.12

2.10. माँग की लोच (Elasticity of Demand)

किसी वस्तु की माँग, विशेष रूप से, उसकी कीमत, उपभोक्ता की आय तथा संबंधित वस्तु की कीमत पर निर्भर करती है। अत: 'माँग की लोच' से यह ज्ञात होता है कि किसी वस्तु की कीमत अथवा उपभोक्ता की आय अथवा संबंधित वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने से उस वस्तु की माँग की मात्रा में कितना परिवर्तन हुआ है। **डूली** के शब्दों में, **"एक वस्तु की कीमत, उपभोक्ता की आय तथा संबंधित वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने से उस वस्तु की माँगी गई मात्रा में होने वाले परिवर्तन के माप को माँग की लोच कहा जाएगा।"** (The elasticity of demand measures the responsiveness of the quantity demanded of a good to change in its price, price of other goods and changes in consumer's income, —**Dooley**) अत: माँग की लोच मुख्य रूप से तीन प्रकार की हो जाती है—1. **माँग की कीमत लोच** (Price Elasticity of Demand), 2. **माँग की आय लोच** (Income Elasticity of Demand), और 3. **माँग की आड़ी लोच** (Cross Elasticity of Demand)।

माँग की लोच का अर्थ

माँग की लोच, माँग के किसी संख्यात्मक निर्धारक में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन तथा इसके फलस्वरूप माँग की मात्रा में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन का अनुपात है।

2.11. माँग की कीमत लोच (Price Elasticity of Demand)

यदि अन्य बातें समान रहें एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने से उस वस्तु की माँगी गई मात्रा में होने वाले परिवर्तन के माप को **माँग की कीमत** लोच कहा जाता है। **यह कीमत में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन तथा माँग में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन के अनुपात के बराबर होती है।** (It is equal to the ratio of the percentage change in quantity demanded to a percentage change in the price.) यह इस बात को मापती है कि वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने से उसकी माँगी गई मात्रा में कितना परिवर्तन होता है। माँग की लोच उस अनुपात को प्रकट करती है जिस पर कीमत बढ़ने पर माँग में संकुचन तथा कीमत घटने पर माँग में विस्तार होता है। माँगी गई मात्रा और कीमत में विपरीत संबंध पाया जाता है। इसीलिए माँग की लोच को ऋणात्मक (–) चिह्न द्वारा व्यक्त किया जाता है। **लिप्सी** के शब्दों में, **"चूँकि माँग वक्र का ढलान ऋणात्मक होता है, इसलिए कीमत और मात्रा में सदा विपरीत दिशाओं में परिवर्तन होगा। एक परिवर्तन धनात्मक तथा दूसरा ऋणात्मक होगा जो माँग की लोच के माप को ऋणात्मक बना देगा।"** (Because of the negative slope of the demand curve, the price and the quantity will always change in opposite directions. One change will be positive and the other

नोट

negative, making the measured elasticity of demand negative. – **Lipsey**)। परंतु प्रथा के अनुसार ऋणात्मक चिह्न को छोड़ दिया जाता है और माँग की कीमत लोच को संख्या में व्यक्त कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि आइसक्रीम की कीमत में 10 प्रतिशत कमी इसकी माँगी गई मात्रा में 15 प्रतिशत वृद्धि लाती है, तब माँग की लोच निम्नलिखित होगी–

$$E_d = (-)\ \frac{15\%}{(-)10\%} = 1.5$$

ऋणात्मक चिह्न को इसलिए छोड़ दिया जाता है ताकि कोई **संदिग्धता** (Ambiguity) पैदा न हो। यह कहना भ्रांतिपूर्ण हो सकता है कि (–) 4 का लोच गुणांक (Elasticity Co-efficient)-2 से अधिक होगा, इस संभावित भ्रांति से बचा जा सकता है। यदि हम केवल यह कहें, कि 4 का गुणांक 2 के गुणांक की तुलना में अधिक लोच को व्यक्त करता है। अत: माँग की कीमत लोच के मूल्य से पहले घटाने (–) के चिह्न का सामान्यतया प्रयोग नहीं किया जाता।

$$E_d = (-)\ \frac{\text{माँग की मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन (Percentage Change in Quantity Demanded)}}{\text{कीमत में प्रतिशत परिवर्तन (Percentage Change in Price)}}$$

मान लो कीमत में 10 प्रतिशत कमी होने के फलस्वरूप माँग में 20 प्रतिशत का विस्तार होता है। तब माँग की लोच होगी–

$$E_d = (-)\ \frac{20\%}{(-)10\%} = 2$$

इसका अर्थ यह है कि वस्तु की कीमत में होने वाले 1 प्रतिशत परिवर्तन के कारण माँग की मात्रा में 2 प्रतिशत परिवर्तन होता है।

***मार्शल** के शब्दों में, "माँग की लोच की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि यह माँग की मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन को कीमत के प्रतिशत परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त होती है।" (Elasticity of demand may be defined as the percentage change in the quantity demanded divided by the percentage change in the price. —**Marshall**)*

***बोल्डिंग** के अनुसार, "माँग की कीमत लोच कीमत में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप माँग में होने वाले परिवर्तन की प्रतिक्रिया को मापती है।" (Price elasticity of demand measures the responsiveness of the quantity demanded of a good to the change in its price. —**Boulding**)*

टास्क माँग की लोच के बारे में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

2.12. माँग की कीमत लोच की दो अंतिम सीमाएँ (Two Extreme Situations of Price Elasticity of Demand)

माँग की कीमत लोच की दो अंतिम सीमाएँ शून्य तथा अनन्त (Two Extreme Situations of Price Elasticity of Demand Zero and Infinity)–माँग की मूल्य सापेक्षता की दो अंतिम सीमाएँ (1) शून्य (Zero) तथा (2) अनंत (Infinity)।

1. **माँग की शून्य कीमत लोच** (Zero Price Elasticity of Demand) माँग की लोच शून्य तब होती है जब कीमत में कोई भी परिवर्तन होने पर वस्तु की माँगी गई मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता। इसका अभिप्राय यह है कि वस्तु की कीमत में चाहे कितना भी परिवर्तन क्यों न

नोट

हो उसकी माँगी गई मात्रा में कोई विस्तार या संकुचन नहीं होता। इस स्थिति को पूर्णतया बेलोचदार माँग (Perfectly Inelastic Demand) कहा जाता है।

Zero Price Elasticity of Demand (E = 0)

चित्र 2.13 में एक खड़ी हुई सरल रेखा (Vertical Straight Line) प्रकट की गई है। उससे स्पष्ट होता है कि कीमत में कितना भी परिवर्तन क्यों न हो वस्तु की माँग OD के बराबर स्थिर रहेगी। इस प्रकार के माँग वक्र को पूर्णतया बेलोचदार माँग वक्र (Perfectly Inelastic Demand Curve) कहा जाता है। इस माँग वक्र द्वारा माँग का कोई विस्तार या संकुचन प्रकट नहीं होता।

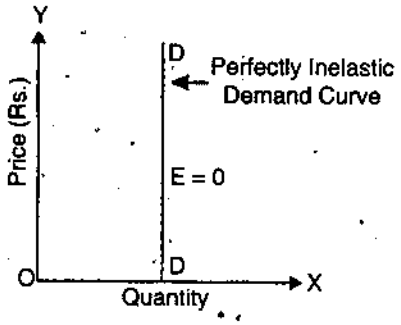

चित्र 2.13

2. **माँग की अनन्त कीमत लोच** (Infinity Price Elasticity of Demand) माँग की लोच अनन्त तब होती है जब कीमत में बहुत थोड़ा सा परिवर्तन होने पर भी किसी वस्तु की माँगी गई मात्रा में अनन्त परिवर्तन होता है। माँग की लोच अनन्त तब होती है जब किसी वस्तु की प्रचलित कीमत पर एक फर्म के उत्पादन की कितनी भी मात्रा की माँग की जाती है परंतु यदि फर्म कीमत में थोड़ी-सी वृद्धि कर देती है तो फर्म के उत्पादन की बिल्कुल भी माँग नहीं की जाती।

Infinite Price Elasticity of Demand (E = ∞)

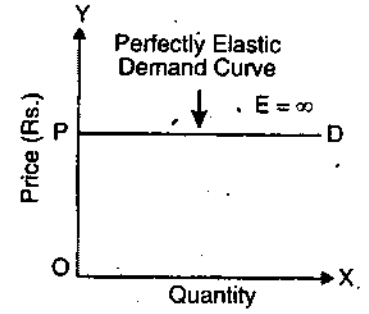

चित्र 2.14

चित्र 2.14 में **एक पड़ी हुई सरल रेखा** (Horizontal Straight Line) प्रकट की गई है। इससे स्पष्ट होता है कि OP कीमत पर वस्तु की कितनी भी मात्रा खरीदी जा सकती है परंतु OP से थोड़ी भी कीमत बढ़ाने पर वस्तु की कोई भी मात्रा नहीं खरीदी जाएगी। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि **वस्तु की अनन्त माँग से शून्य माँग होने पर अनन्त परिवर्तन हुआ है।** (There is infinite change from infinite demand to zero demand.)। इस प्रकार के माँग वक्र को **पूर्णतया लोचदार माँग वक्र** (Perfectly elastic demand curve) कहा जाता है।

2.13. माँग की कीमत लोच की सामान्य स्थितियाँ (Normal Situations of Price Elasticity of Demand)

नोट

सामान्यत: माँग की कीमत लोच की निम्नलिखित तीन स्थितियाँ हो सकती हैं–

1. **माँग की लोच** = 1 (इसे इकाई माँग की लोच कहा जाता है।)
2. **माँग की लोच** > 1 (इसे इकाई से अधिक माँग की लोच कहा जाता है।) माँग की इस कीमत लोच को इकाई से अधिक लोचदार भी कहा जाता है।
3. **माँग की लोच** < 1 (इसे इकाई से कम माँग की लोच कहा जाता है।) इसे कम लोचदार माँग भी कहा जाता है। माँग की लोच की उपरोक्त सभी स्थितियों को निम्नलिखित चित्रों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

2.14. माँग की लोच की विभिन्न स्थितियों E = 1, E>1 तथा E<1 को प्रकट करने वाली माँग वक्रें (Demand Curves Showing E = 1, E>1 and E<1)

आगे चित्र 2.15, 2.16 तथा 2.17 द्वारा माँग की लोच की विभिन्न स्थितियाँ प्रकट हो रही हैं–

1. **इकाई लोचदार माँग E = 1** (Unitary Elastic Demand)–इकाई लोचदार माँग तब होती है जब कीमत के बढ़ने या कम होने पर वस्तु पर किया जाने वाला कुल व्यय स्थिर रहता है। कुल व्यय PQ। यहाँ P कीमत; Q = माँग। चित्र 2.15 में DD माँग वक्र इकाई लोचदार माँग को प्रकट कर रही है। इससे स्पष्ट होता है कि जब कीमत OP_1 है तो कुल व्यय $OQ_1 MP_1$ होगा। इसके विपरीत जब कीमत कम होकर OP_2 हो गई हो तो कुल व्यय $OQ_2 NP_2$ होगा।

$$\text{क्षेत्रफल } OQ_1 MP_1 = \text{क्षेत्रफल } OQ_2 NP_2$$

इसका अभिप्राय यह हुआ कि वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर भी कुल व्यय स्थिर रहता है। इसलिए माँग की लोच इकाई के बराबर है अर्थात् E = 1 (Unitary)।

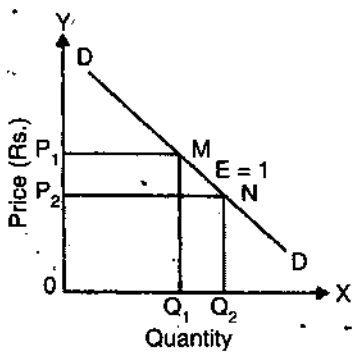

चित्र 2.15

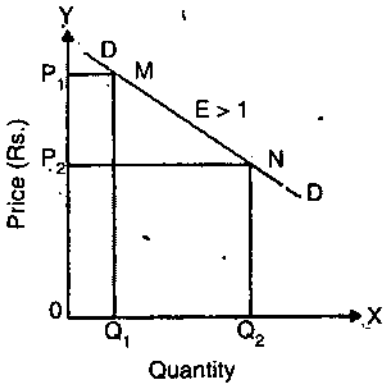

चित्र 2.16

2. **इकाई से अधिक लोचदार माँग E > 1** (Greater than Unitary Elastic Demand)–इकाई से अधिक लोचदार माँग तब होती है जब वस्तु की कीमत कम होने पर उस पर किया जाने वाला कुल व्यय बढ़ जाता है तथा कीमत के बढ़ने पर कुल व्यय कम हो जाता है। चित्र 2.16 में DD माँग वक्र इकाई से अधिक लोचदार माँग को प्रकट कर रही है। इससे प्रकट होता है कि जब कीमत OP_1 है तो कुल व्यय $OQ_1 MP_1$ होगा। इसके विपरीत जब कीमत कम होकर OP_2 हो जाती है तो कुल व्यय $OQ_2 NP_2$ हो जाएगा। अत:

नोट

क्षेत्रफल OQ_2NP_2 > क्षेत्रफल OQ_1MP_1

इसका अभिप्राय यह है कि वस्तु की कीमत कम होने पर उस पर किया जाने वाला कुल व्यय बढ़ गया है। अतएव माँग की लोच इकाई से अधिक (E > 1) या अधिक लोचदार है।

3. **इकाई से कम लोचदार माँग** E < 1 (Lesser than Unitary Elastic Demand E < 1) : इकाई से कम लोचदार माँग तब होती है जब वस्तु की कीमत कम होने पर उस पर किया जाने वाला कुल व्यय भी कम हो जाता है तथा कीमत के बढ़ने पर कुल व्यय भी बढ़ जाता है। चित्र 2.17 में DD माँग वक्र इकाई से कम लोचदार माँग को प्रकट कर रही है। इससे प्रकट होता है कि जब कीमत OP_1 है तो कुल व्यय OQ_1MP_1 होगा। इसके विपरीत जब कीमत OP_2 है तो कुल व्यय OQ_2NP_2 हो जाएगा। अतः

क्षेत्रफल OQ_2NP_2 < क्षेत्रफल OQ_1MP_1

इसका अभिप्राय यह है कि वस्तु की कीमत कम होने पर उस पर किया जाने वाला कुल व्यय भी कम हो गया है। अतएव माँग की लोच इकाई से कम (E < 1) या कम लोचदार होगी।

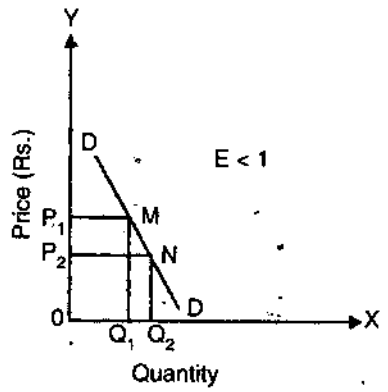

चित्र 2.17

2.15. माँग की कीमत लोच की माप (Measurement of Price Elasticity of Demand)

माँग की लोच के माप से यह ज्ञात होता है किसी वस्तु की माँग (*i*) इकाई या (*ii*) इकाई से अधिक या (*iii*) इकाई से कम लोचदार है। माँग की लोच के मापने की कई विधियाँ हैं–

1. **कुल व्यय विधि** (Total Outlay or Total Expenditure Method)
2. **आनुपातिक या प्रतिशत विधि** (Proportionate or Percentage Method)
3. **बिंदु लोच विधि** (Point Elasticity Method) } **ग्राफिक विधि** Graphic Method
4. **चाप लोच विधि** (Arc Elasticity Method) }
5. **आय विधि** (Revenue Method) }

1. कुल व्यय विधि (Total Outlay or Total Expenditure Method)

माँग की लोच मापने की **कुल व्यय विधि** का प्रतिपादन **डा. मार्शल** ने किया था। इस विधि के अनुसार, माँग की लोच को मापने के लिए यह मालूम करना चाहिए कि **किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने से उस पर किए जाने वाले कुल व्यय में कितना परिवर्तन किस दिशा में होता है–**

(i) जब किसी वस्तु की कीमत के कम या अधिक होने से उस पर किए जाने वाले कुल व्यय में कोई परिवर्तन नहीं होता तो **माँग की लोच इकाई के बराबर** ($E_d = 1$) होगी।

(ii) जब किसी वस्तु की कीमत कम होने से कुल व्यय बढ़ जाता है और कीमत के बढ़ने से कुल व्यय कम हो जाता है अर्थात् कुल व्यय, कीमत में होने वाले परिवर्तन से विपरीत दिशा में, चलता है तब **माँग की लोच इकाई से अधिक** ($E_d > 1$) होगी।

(iii) जब किसी वस्तु की कीमत कम होने से कुल व्यय कम हो जाता है तथा कीमत बढ़ने से कुल व्यय बढ़ जाता है अर्थात् कुल व्यय उस दिशा में चलता है जिसमें कीमत में परिवर्तन होता है, तब उस वस्तु की **माँग की लोच इकाई से कम** ($E_d < 1$) होगी।

नोट

माँग की लोच को मापने की कुल व्यय विधि को तालिका 5 द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है–

तालिका 5. कुल व्यय विधि

वस्तु की कीमत (रु.)	*खरीदी गई मात्रा (कि. ग्रा.)*	*कुल व्यय (रु.)*	*कुल व्यय में परिवर्तन*	*माँग की लोच*
2	4	8	कुल व्यय में परिवर्तन नहीं होता।	इकाई लोच
4	2	8		
1	8	8		
2	4	8	जब कीमत बढ़ती है तो कुल व्यय कम होता है।	इकाई से अधिक लोच या लोचदार
4	1	4	जब कीमत कम होती है तो कुल व्यय बढ़ता है।	
1	10	10		
2	3	6	जब कीमत बढ़ती है तो कुल व्यय भी बढ़ता है।	इकाई से कम लोच या बेलोचदार
4	2	8	जब कीमत कम होती है तो कुल व्यय भी कम होता है।	
1	4	4		

तालिका 5. से निम्नलिखित की जानकारी प्राप्त होती है–

(i) **इकाई लोचवार माँग** (Unitary Elastic Demand) तालिका 5 के भाग एक से ज्ञात होता है कि जब वस्तु की कीमत 2 रुपए है तो वस्तु पर कुल व्यय 8 रुपए है। इसके विपरीत यदि कीमत बढ़कर 4 रुपये हो जाती है या कम होकर 1 रुपया हो जाती है, तो भी कुल व्यय 8 रुपए ही रहता है। **अन्य शब्दों में, कीमत में होने वाले परिवर्तन का कुल व्यय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।**

(ii) **इकाई से अधिक लोचवार** (Greater-than Unitary Elasticity) तालिका 5 के दूसरे भाग से ज्ञात होता है कि जब वस्तु की कीमत 2 रुपए है तो कुल व्यय 8 रुपए किया जाता है। यदि वस्तु की कीमत बढ़ कर 4 रुपए हो जाती है तो कुल व्यय 8 रुपए से कम हो कर 4 रुपए हो जाता है और जब कीमत कम हो कर 1 रुपया हो जाती है तो कुल व्यय बढ़ कर 10 रुपए हो जाता है। **अन्य शब्दों में, कीमत में परिवर्तन होने के फलस्वरूप कुल व्यय में परिवर्तन विपरीत दिशा (Opposite Direction) में होता है।**

नोट

(iii) **इकाई से कम लोचदार** (Less than Unitary Elasticity) तालिका 1 के तीसरे भाग से ज्ञात होता है कि जब वस्तु की कीमत 2 रुपए है तो कुल व्यय 6 रुपए है। जब कीमत बढ़कर 4 रुपए हो जाती है तो कुल व्यय बढ़कर 8 रुपए हो जाता है। जब कीमत कम हो कर 1 रुपया हो जाती है तो कुल व्यय कम हो कर 4 रुपए हो जाता है। **अन्य शब्दों में, कीमत में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप कुल व्यय में परिवर्तन समान दिशा** (Same Direction) में होता है।

चित्र 2.18 द्वारा माँग की लोच को मापने की कुल व्यय विधि को स्पष्ट किया जा सकता है। इस चित्र में OX-अक्ष पर कुल व्यय और OY-अक्ष पर कीमत को प्रकट किया गया है। ST **रेखा कुल व्यय रेखा** (Total Expenditure Curve) है। ST रेखा के बीच का BC भाग इकाई लोच को प्रकट कर रहा है। इससे ज्ञात होता है कि जब कीमत OM है, तो कुल व्यय MC है। जब कीमत बढ़ कर ON हो जाती है तो कुल व्यय NB (= MC) अर्थात् पहले जितना ही रहता है। ST रेखा का TB भाग इकाई से अधिक लोचदार माँग को प्रकट कर रहा है। इससे ज्ञात होता है कि जब कीमत ON से बढ़ कर OR हो जाती है तो कुल व्यय BN से कम हो कर RA हो जाता है अर्थात् इसमें विपरीत दिशा में परिवर्तन होता है। ST रेखा का SC भाग इकाई से कम लोचदार माँग को प्रकट कर रहा है। इससे ज्ञात होता है कि जब कीमत OM से कम हो कर OP हो जाती है तो कुल व्यय MC से कम हो कर PD हो जाता है अर्थात् समान दिशा में बदलता है।

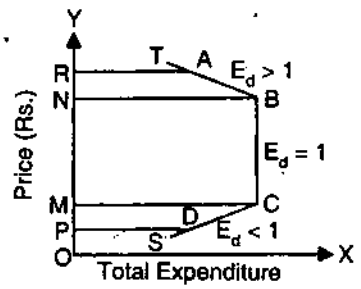

चित्र 2.18

2. **प्रतिशत या आनुपातिक विधि (Percentage or Proportionate Method)**

माँग की कीमत लोच को मापने की दूसरी विधि प्रतिशत अथवा आनुपातिक विधि कहलाती है। **इस विधि के अनुसार, माँग की कीमत लोच का अनुमान लगाने के लिए माँग में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन को कीमत में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन से भाग कर दिया जाता है।** इसका सूत्र (Formula) निम्नलिखित है–

$$E_d = \frac{\text{X – वस्तु की माँगी गई मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{वस्तु की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

$$E_d = \frac{\dfrac{\text{माँगी गई मात्रा में परिवर्तन}}{\text{प्रारंभिक माँग}}}{\dfrac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{\text{प्रारंभिक माँग}}} \times 100$$

$$\frac{(Q_1 - Q)}{Q} \times 100 \frac{\Delta Q}{Q} \times 100$$

$$(-)\frac{Q}{\frac{(P_1 P)}{P} \times 100} = (-)\frac{Q}{\frac{\Delta P}{P} \times 100}$$

$$E_d = (-)\frac{\Delta Q}{Q} \div \frac{\Delta P}{P} = (-)\frac{\Delta Q}{Q} \times \frac{P}{\Delta P}$$

$$E_d = (-)\frac{P}{Q} \times \frac{\Delta Q}{\Delta P}$$

नोट

(यहाँ Q = वस्तु की माँगी गई प्रारंभिक मात्रा; Q_1 = परिवर्तित माँगी गई मात्रा; P = वस्तु की प्रारंभिक कीमत; P_1 = परिवर्तित कीमत; $\Delta Q = Q_1 - Q$ (माँगी गई मात्रा में परिवर्तन), $\Delta P = P_1 - P$ = कीमत में परिवर्तन; Δ = डेल्टा (यह चिह्न परिवर्तन को प्रकट करता है।)

X-वस्तु की मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन को X–वस्तु में 100 गुणा परिवर्तन के रूप में परिभाषित किया जाता है अर्थात् 100 ΔX को X द्वारा भाग कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि मात्रा 10 से बढ़ कर 15 हो जाती है तब हम कहेंगे कि $\Delta X = 15 - 10 = 5$ तथा X में प्रतिशत वृद्धि $= \frac{\Delta X}{X} \times 100 = \frac{5}{10} \times 100 = \frac{500}{10} = 50\%$, इसी भाँति कीमत में प्रतिशत परिवर्तन को $\frac{\Delta P}{P} \times 100$ के रूप में प्रकट किया जाता है।

ध्यान रखिए

प्रतिशत विधि का प्रयोग उस स्थिति में किया जाता है जिसमें कीमत में होने वाले परिवर्तन तथा उसके फलस्वरूप माँग में होने वाला परिवर्तन बहुत ही कम होता है।

उदाहरण (Illustration) 1.

एक वस्तु की कीमत में 10% कमी के कारण माँग की मात्रा में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन का अनुमान लगाइए। यह मान लीजिए वस्तु की माँग की कीमत लोच (–) 2.5 है।

हल (Solution) :

मान लीजिए माँग में प्रतिशत परिवर्तन X होता है।

$$\text{माँग की लोच} = (-)\frac{\text{माँगी गई मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

$$2.5 = (-)\frac{X}{10\%}$$

$$X = 2.5 \times 10\% = 25\%$$

उत्तर–माँगी गई मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन 25% होगा।

3. बिंदु लोच विधि (Point Elasticity Method)

माँग वक्र के किसी बिंदु पर माँग की लोच बिंदु लोच कहलाती है।

लेफ्टविच के अनुसार, **"माँग वक्र के किसी बिंदु पर कीमत के सूक्ष्म परिवर्तन के फलस्वरूप जो लोच मापी जाती है उसे बिंदु लोच कहते हैं।"** (Elasticity computed at a single point on the curve for infinitely small change in price is point elasticity.– **Leftwitch**)।

सरल माँग वक्र पर कीमत लोच, वक्र के ढलान तथा उस बिंदु, जिस पर माप किया जाता है, पर निर्भर करती है। अतः एक माँग वक्र के विभिन्न बिंदुओं पर कीमत लोच भिन्न होगी। इसलिए माँग वक्र के प्रत्येक बिंदु पर माँग की लोच अलग से मापी जाती है।

सरल माँग वक्र (Linear Demand Curve)–चित्र 2.19 में MN माँग वक्र एक सरल रेखा है।

इस माँग वक्र के 'A' बिंदु पर माँग की लोच $\frac{AN}{AM}$ के बराबर होगी जो कि निम्नलिखित विधि द्वारा ज्ञात की जा सकती है जैसा कि हम जानते हैं कि

$$Ed = (-)\frac{P}{Q} \times \frac{\Delta Q}{\Delta P}$$

नोट

चित्र 2.19 से ज्ञात होता है कि

$P = OP (= AQ)$; $Q = OQ (= AP)$;

$\Delta P = PP_1 (= AB)$; $\Delta Q = QQ_1 (= BC)$;

$$\therefore \quad E_d = \frac{AQ}{AP} \times \frac{BC}{AB} \qquad ...(i)$$

चूँकि ΔABC तथा ΔAQN समरूप त्रिभुज (Similar triangles) हैं इसलिए इनकी भुजाओं (Sides) का अनुपात बराबर होगा–अर्थात् $\frac{BC}{AB} = \frac{QN}{AQ}$

$\frac{BC}{AB}$ के स्थान पर समीकरण (i) में $\frac{QN}{AQ}$ लिखने से हमें प्राप्त होता है

$$E_d = \frac{AQ}{AP} \times \frac{QN}{AQ} = \frac{QN}{AP} = \frac{QN}{OQ} \quad (AP = OQ)$$

चूँकि ΔAQN तथा ΔMPA समरूप त्रिभुज हैं, इसलिए इनकी भुजाओं का अनुपात बराबर होगा–

$$Ed = \frac{QN}{OQ} = \frac{QN}{AP} = \frac{AN}{AM} = \frac{\text{निचला भाग (Lower Segment)}}{\text{ऊपर का भाग (Upper Segment)}}$$

सरल रेखा के विभिन्न बिंदुओं पर कीमत लोच चित्र 2.19 से ज्ञात हो जाती है।

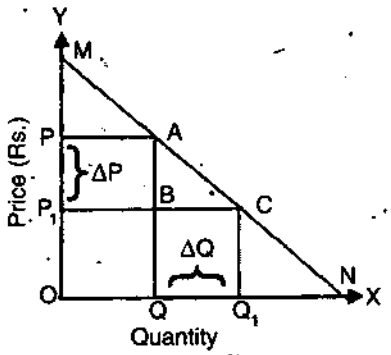

चित्र 2.19

(i) **बिंदु P माँग रेखा MN के मध्य में स्थित है** इसलिए PN (नीचे का भाग) तथा PM (ऊपर का भाग) बराबर होंगे। अत:

$Ed = \frac{PN}{PM} = 1$ (Unity) अर्थात् P बिंदु पर माँग की लोच इकाई होगी।

4. चाप लोच विधि (Arc Elasticity Method)

चाप लोच कीमत परिवर्तन की औसत **अनुक्रिया** (Responsiveness) का एक माप है जो एक माँग वक्र पर दो बिंदुओं के बीच के भाग को प्रदर्शित करता है। **एक माँग वक्र पर दो बिंदुओं के बीच के भाग को चाप कहा जाता है।** (An Arc is the portion between two points on a demand curve)। चित्र 2.20 में DD माँग वक्र पर A और C बिंदुओं के बीच का भाग चाप है। जब मध्य बिंदु या औसत कीमत तथा मात्रा के प्रयोग करने से जो लोच प्राप्त होती है उसे **चाप कीमत लोच** कहा जाता है।

नोट

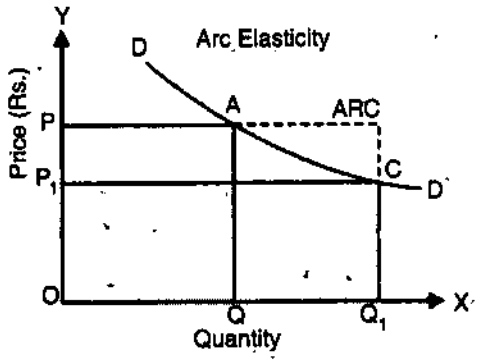

चित्र 2.20

वाटसन के अनुसार, "चाप कीमत लोच माँग वक्र चाप के मध्य बिंदु की कीमत लोच है।" *(Arc elasticity is the elasticity at the mid point of an arc of a demand curve. —Wastson.)* ***फर्गूसन के शब्दों में, "चाप कीमत लोच एक माँग वक्र पर दो बिंदुओं के बीच औसत लोच की एक माप है।"*** *(Arc elasticity is a measure of the average elasticity between two points on the demand. —Ferguson)*।

सूत्र (Formula)

कीमत लोच के सूत्र के अनुसार–

$$E_d = \frac{P}{Q} \times \frac{\Delta Q}{\Delta P}$$

यह स्पष्ट है कि $\Delta Q = Q_1 - Q$ खरीदी गई मात्रा में परिवर्तन और $\Delta P = P_1 - P$ कीमत में परिवर्तन परंतु P और Q के मूल्य क्या हैं? चूँकि चाप AC के विभिन्न बिंदुओं पर P तथा Q के विभिन्न मूल्य होते हैं इसलिये इनके किसी एक निश्चित मूल्य का प्रयोग करना आवश्यक नहीं है। परंपरा के अनुसार P और Q के दो मूल्यों के औसत का प्रयोग किया जाता है ताकि

$$Q = \frac{(Q_1 + Q)}{2} \text{ तथा } P = \frac{(P_1 + P)}{1}।$$

अतः माँग की चाप कीमत लोच निम्नलिखित सूत्र की सहायता से आँकी जाती है–

$$E_d = \frac{\text{मात्रा में परिवर्तन (Change in Quantity)}}{\frac{1}{2} \text{ मात्राओं का जोड़ (Sum of Quantities)}} + \frac{\text{कीमत में परिवर्तन (Change in Price)}}{\frac{1}{2} \text{ कीमतों का जोड़ (Sum of Prices)}}$$

$$E_d = (-)\frac{\Delta Q}{\frac{1}{2}(Q_1 + Q)} + \frac{\Delta P}{\frac{1}{2}(P_1 + P)} = (-)\frac{\Delta Q}{\frac{1}{2}(Q_1 + Q)} \times \frac{\frac{1}{2}(P_1 + P)}{\Delta P}$$

या

$$E_d = (-)\frac{Q_1 - Q}{\frac{1}{2}(Q_1 + Q)} \times \frac{\frac{1}{2}(P_1 + P)}{P_1 - P} = (-)\frac{Q_1 - Q}{Q_1 + Q} \times \frac{P_1 + P}{P_1 - P}$$

(यहाँ Q = प्रारंभिक माँग; Q_1 = नई माँग; P = प्रारंभिक कीमत; P_1 = नई कीमत।)

नोट

चाप लोच विधि के अनुसार यदि एक वस्तु की कीमत में समान अनुपात में वृद्धि या कमी होती है और परिणामस्वरूप वस्तु की माँग में भी उसी अनुपात में संकुचन या विस्तार होता है तब माँग की लोच एक समान रहेगी। परंतु यदि प्रतिशत विधि का प्रयोग किया जाता है तब उपरोक्त अवस्थाओं में माँग की लोच विभिन्न होगी।

पहले में यह इकाई से अधिक (6) या लोचदार होगी और दूसरे में यह इकाई से कम $\left(\frac{3}{4}\right)$ या बेलोचदार होगी। **अतः चाप लोच विधि, प्रतिशत लोच विधि की तुलना में, अधिक वास्तविक तथा निर्भर विधि है।**

माँग की चाप लोच तथा बिंदु लोच के बीच अंतर भी है। **चाप लोच, माँग वक्र के एक विशेष भाग पर लोच का औसत मूल्य है, जबकि बिंदु लोच, माँग वक्र के एक विशेष बिंदु पर लोच का मूल्य है। बामोल** के शब्दों में, **"माँग की बिंदु लोच माँग वक्र के प्रत्येक बिंदु से संबंधित धारणा है, परंतु ऐसे किसी भी बिंदु पर कीमत ($\Delta P = 0$) में अथवा मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं ($\Delta Q = 0$) होता। अतः हम बिंदु लोच को चाप की सीमा मान लेते हैं क्योंकि जैसे-जैसे चाप को छोटे से छोटा किया जाता है वह बिंदु बन जाता है।"** (Point elastictiy of demand is the corresponding concept, for each point on the demand curve. But at any such point there is no change in price ($\Delta P = 0$) or in quantity ($\Delta Q = 0$). We, therefore, take point elasticity to be the limit of the arc elasticity figure as the arc is made smaller and smaller. **—Baumol**

5. आय विधि (Revenue Method)

माँग की लोच ज्ञात करने की पाँचवीं विधि आय विधि है। एक फर्म को उसके उत्पादन की बिक्री से जो बिक्री मूल्य प्राप्त होता है, उसे फर्म की **आय** (Revenue) कहा जाता है। मान लीजिए 10 मीटर कपड़ा बेचकर एक फर्म को 50 रुपए प्राप्त होते हैं। इन 50 रुपयों को फर्म की **कुल आय** (Total Revenue) कहा जाएगा। यदि कुल आय को उत्पादन की बेची गई इकाइयों की मात्रा से भाग दे दिया जाए तो जो भजनफल आएगा उसे **औसत आय** (Average Revenue) अथवा प्रति इकाई कीमत कहा जाएगा। उपरोक्त फर्म की औसत आय $\frac{50}{10}$ = 5 रुपए प्रति मीटर होगी। अतः औसत आय और कीमत समानार्थक शब्द हैं। किसी वस्तु की एक अधिक इकाई बेचने से कुल आय में जो अंतर आता है उसे **सीमांत आय** (Marginal Revenues) कहते हैं। यदि 11 मीटर कपड़ा बेचकर फर्म को 54 रुपए प्राप्त होते हैं तो इसका अर्थ है कि 11वें मीटर कपड़े की सीमांत आय 54 रुपए –50 रुपए = 4 रुपए होगी। एक फर्म की औसत आय वक्र को माँग वक्र भी कहा जाता है। औसत आय तथा सीमांत आय के द्वारा माँग की लोच को निम्नलिखित सूत्र द्वारा मापा जा सकता है–(यहाँ $E_d = \frac{A}{A-M}$ माँग की कीमत लोच; A = औसत आय; M = सीमांत आय)

माँग की लोच के इस सूत्र को चित्र 2.21 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। इस चित्र में OY-अक्ष पर आय तथा OX-अक्ष पर वस्तु की मात्रा प्रकट की गई है। AB औसत आय (AR) या माँग वक्र है और AN सीमांत आय वक्र (MR) है। माँग वक्र (औसत आय) के 'P' बिंदु पर माँग की लोच निम्नलिखित सूत्र की सहायता से ज्ञात की जा सकती है–

$$E_d = \frac{\text{नीचे का भाग}}{\text{ऊपर का भाग}} = \frac{PB}{PA}$$

ΔPMB तथा ΔAEP समरूप हैं, इसलिए इनकी भुजाओं का अनुपात बराबर होगा।

$$E_d = \frac{PB}{PA} = \frac{PM}{AE} \quad \ldots(1)$$

नोट

ΔAET तथा ΔTPL समरूप त्रिभुज (Congruent Triangles) हैं, इसलिए PL = AE।

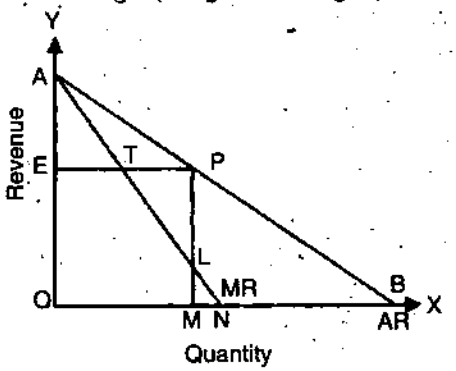

चित्र 2.21

समीकरण (1) में AE के स्थान पर PL लिखने से

$$E_d = \frac{PM}{PL}$$

क्योंकि $PL = PM - LM$

इसलिए $$E_d = \frac{PM}{PM - LM}$$

यहाँ $PM = AR$ और $LM = MR$

अत: $$E_d = \frac{PM}{PM - LM} = \frac{AR}{AR - MR} \text{ या } \frac{A}{A - M}$$

$$= \frac{\text{औसत आय}}{\text{औसत आय - सीमांत आय}}$$

यदि ऊपर का सूत्र प्रयोग करने से E_d का मूल्य एक होता है, तो माँग की लोच इकाई होगी। यदि यह एक से अधिक है तो माँग की कीमत लोच इकाई से अधिक या लोचदार होगी और यदि यह एक से कम है तो माँग की कीमत लोच इकाई से कम या बेलोचदार होगी।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सही/गलत छाँटिए

(State whether the following statements are True/False)—

8. व्यक्तिगत माँग वक्र वह वक्र है जो किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर एक उपभोक्ता द्वारा उस वस्तु की माँगी गई मात्रा को प्रकट करता है।
9. बाजार माँग वक्र व्यक्तिगत माँग वक्रों का समस्तरीय जोड़ है।
10. अन्य बातें समान रहने पर जब किसी वस्तु की कीमत में कमी होने के फलस्वरूप उसकी माँग कम हो जाती है, तो इसे माँग का विस्तार कहा जाता है।
11. अन्य बातें समान रहने पर, जब किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि होने के फलस्वरूप उसकी माँग अधिक हो जाती है, तो इसे माँग का संकुचन कहा जाता है।
12. एक वस्तु की कीमत, उपभोक्ता की आय तथा संबंधित वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने से उस वस्तु की माँगी गई मात्रा में होने वाले परिवर्तन की माप को माँग की लोच कहा जाएगा।

2.16. माँग की लोच से संबंधित कुछ प्रमेय (Some Theorems on Elasticity of Demand)

नोट

प्रमेय (Theorem) 1.

एक सरल माँग वक्र पर ऊपर से नीचे की ओर माँग की लोच का मूल्य शून्य से लेकर अनन्त तक होता है। (The Elasticity of Demand on a straight line demand curve varies downward from zero to infinity.)

माँग की लोच का मूल्य उस बिंदु पर शून्य होता है जिस पर माँग वक्र OX-अक्ष को छूती है और उस बिंदु पर अनन्त होता है जिस पर वक्र OY-अक्ष को छूती है। अत: कीमत अधिक होने पर, एक सरल माँग वक्र पर, माँग की लोच भी अधिक होती है। इस तथ्य को चित्र 2.22 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

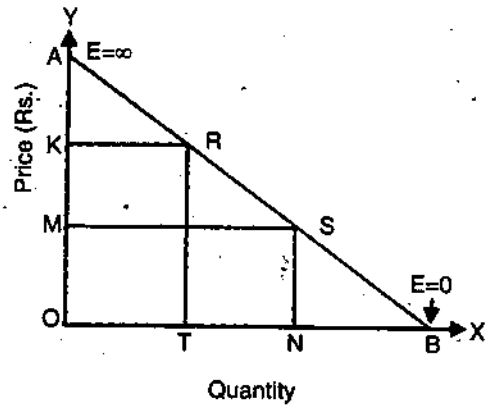

चित्र 2.22

माँग की कीमत लोच को निम्न प्रकार से मापा जाता है–

$$E_d = \frac{\text{X - वस्तु की माँगी गई मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{X -वस्तु की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

$$= (-)\frac{P}{Q} \times \frac{\Delta Q}{\Delta P}$$

उपरोक्त समीकरण निम्नलिखित ढंग से भी लिखा जा सकता है

$$E_d = \frac{P}{Q} \times \left(\frac{1}{\text{माँग वक्र का ढलान}} \right)$$

क्योंकि एक सरल माँग वक्र का ढलान $\frac{\Delta P}{\Delta Q}$ के बराबर होता है। हम जानते हैं कि एक सरल माँग वक्र का ढलान उसके सभी बिंदुओं पर एक समान रहता है इसलिए ढलान का विलोम (Reciprocal) $\left(\frac{1}{\text{माँग वक्र का ढलान}} \right)$ भी एक समान रहेगा। माँग वक्र AB के विभिन्न बिंदुओं की माँग की लोच की तुलना $\frac{P}{Q}$ की तुलना द्वारा की जा सकती है।

(*i*) बिंदु A पर यह अनुपात = $\frac{OP}{\text{Zero}} = \infty$ (अनन्त)।

(*ii*) बिंदु B पर यह अनुपात = $\frac{\text{Zero}}{\text{OB}}$ = शून्य (Zero)।

(*iii*) जैसे-जैसे हम A बिंदु से नीचे की ओर B बिंदु तक गतिशील होते हैं हमें ज्ञात होता है कि $\frac{P}{Q}$ का अनुपात अनन्त (Infinity) से शून्य (Zero) तक गिरता जाता है। चित्र से स्पष्ट होता है कि बिंदु R पर यह अनुपात $\frac{OK}{OT}$ के बराबर है और बिंदु S पर यह अनुपात $\frac{OM}{ON}$ के बराबर है। $\frac{OM}{ON}$ की तुलना में $\frac{OK}{OT}$ का मूल्य निश्चित रूप से अधिक $\left(\frac{OK}{OT} > \frac{OM}{ON}\right)$ है। अतः यह सिद्ध हो जाता है कि जैसे-जैसे हम एक सरल माँग वक्र पर नीचे की ओर गतिशील होते हैं वस्तु की कीमतें घटती जाती है और उससे संबंधित माँग की लोच का मूल्य कम होता जाता है।

नोट

2.17. माँग की कीमत लोच को प्रभावित करने वाले तत्व (Factors Determining the Price Elasticity of Demand)

वास्तविक जीवन में हम देखते हैं कि कुछ वस्तुओं की माँग की लोच इकाई होती है, कुछ वस्तुओं की माँग की लोच इकाई से अधिक या **लोचदार** (Elastic) होती है तथा कुछ वस्तुओं की माँग की लोच इकाई से कम अथवा **बेलोचदार** (Inelastic) होती है। इसका कारण यह है कि माँग की लोच कई तत्त्वों द्वारा प्रभावित होती है। माँग की लोच को निर्धारित करने वाले मुख्य तत्त्व निम्नलिखित हैं–

1. **वस्तु की प्रकृति** (Nature of the Commodity)–अर्थशास्त्र में वस्तुओं का वर्गीकरण मुख्य रूप से तीन श्रेणियों में किया जाता है, वे हैं (*i*) **आवश्यकता की वस्तुएँ** (Necessaries), (*ii*) **आरामदायक वस्तुएँ** (Comforts) और (*iii*) **विलासिता की वस्तुएँ** (Luxuries)। सामान्यतया यह देखा गया है कि अनिवार्य वस्तुएँ जैसे नमक, मिट्टी का तेल, माचिस आदि की माँग इकाई से कम या **बेलोचदार** (Inelastic) होती है। इसका कारण यह है कि एक उपभोक्ता इन वस्तुओं की एक निश्चित मात्रा खरीदता है, चाहे इनकी कीमत में वृद्धि हो अथवा कमी। इसलिए इनकी कीमतों में होने वाले परिवर्तन का इनकी माँग पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। इसके विपरीत विलासिता की वस्तुओं जैसे एयरकंडीशनर, कीमती फर्नीचर आदि की माँग इकाई से अधिक अथवा **लोचदार** (Elastic) होती है। इसका कारण यह है कि इनकी कीमत में होने वाला परिवर्तन इनकी माँग को काफी प्रभावित करता है। आरामदायक वस्तुओं जैसे ट्रांजिस्टर, कूलर, पंखा आदि की कीमत लोच इकाई के बराबर या इकाई के समीप होती है।
2. **स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धता** (Availability of Substitutes)–जिन वस्तुओं के जितने अधिक स्थानापन्न उपलब्ध होंगे, उनकी माँग की लोच भी उतनी ही अधिक होगी। जिन वस्तुओं के स्थानापन्न जैसे चाय का स्थानापन्न कॉफी, पेन का स्थानापन्न बॉल पेन, मिल्कशेक का स्थानापन्न लस्सी, सैंडिलों का स्थानापन्न चप्पल आदि, ये उचित कीमत पर उपलब्ध होते हैं, इसलिए इनकी माँग **लोचदार** होती है। इसका कारण यह है कि यदि किसी वस्तु की कीमत उसके स्थानापन्न की तुलना में कम हो जाती है तो लोग उस वस्तु की अधिक मात्रा खरीदेंगे। उदाहरण के लिए, यदि कॉफी, चाय की तुलना में, सस्ती हो जाती है तो कॉफी की माँग में काफी वृद्धि होगी, तथा चाय की माँग में काफी कमी हो जाएगी। जिन वस्तुओं के स्थानापन्न नहीं हैं जैसे सिगरेट, शराब आदि इनकी माँग बेलोचदार होती है।
3. **विभिन्न उपयोगों वाली वस्तुएँ** (Goods with Different Uses)–**एक वस्तु के जितने अधिक उपयोग होते हैं उतनी ही उसकी माँग अधिक लोचदार होती है।** वे वस्तुएँ जिनको

नोट

विभिन्न उपयोगों में इस्तेमाल किया जाता है, इनकी माँग **लोचदार** होती है। उदाहरण के लिए, बिजली के विभिन्न उपयोग हैं। इसका प्रयोग बल्ब, हीटर, प्रेस गर्म करने आदि कई कार्यों में किया जाता है।

यदि बिजली की कीमत बढ़ जाएगी तो इसका प्रयोग महत्त्वपूर्ण कार्यों जैसे रोशनी के लिए बल्ब जलाने में ही किया जाएगा। इस प्रकार कीमत में होने वाली वृद्धि की तुलना में बिजली की माँग में अधिक कमी होगी।

4. **माँग का स्थगन** (Postponement of Demand)–**जिन वस्तुओं की माँग को भविष्य के लिए स्थगित किया जा सकता है उनकी माँग लोचदार** (Elastic) **होती है।** उदाहरण के लिए, यदि मकान बनाने की माँग को भविष्य के लिए स्थगित किया जा सकता है तो मकान की सामग्री जैसे ईंट, रेत, सीमेंट, चूना आदि की माँग **लोचदार** होगी। इसके विपरीत जिन वस्तुओं की माँग को भविष्य के लिए स्थगित नहीं किया जा सकता, जैसे भूख लगने पर भोजन और प्यास लगने पर पेय पदार्थ, तो इनकी माँग **बेलोचदार** (Inelastic) होती है।

5. **उपभोक्ता की आय** (Income of the Consumer)–**जिन लोगों की आय बहुत अधिक या बहुत कम होती है, उनकी माँग सामान्यतया बेलोचदार होती है।** इसका कारण यह है कि कीमत के घटने या बढ़ने का, इन लोगों द्वारा की जाने वाली माँग पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। इसके विपरीत मध्य वर्ग के लोगों की माँग **लोचदार** होती है। इन लोगों द्वारा माँगी जाने वाली वस्तुओं की कीमत में वृद्धि होने पर उनकी माँग में अपेक्षाकृत कमी हो जाती है।

6. **उपभोक्ता की आदत** (Habit of the Consumer)–**उन वस्तुओं की माँग बेलोचदार होती है जिनके लिए लोगों की आदत बन जाती है जैसे सिगरेट, कॉफी आदि।** इसका कारण यह हैं कि इन वस्तुओं की कीमत में वृद्धि होने पर भी उपभोक्ताओं की माँग में कमी नहीं आती।

7. **किसी वस्तु पर खर्च की जाने वाली आय का अनुपात** (Proportion of Income Spent on a Commodity)–**आय का जितना अधिक अनुपात किसी वस्तु पर खर्च किया जाता है उतनी ही उस वस्तु के लिए माँग अधिक लोचदार होगी।** जिन वस्तुओं पर उपभोक्ता अपनी आय का बहुत कम अनुपात खर्च करता है जैसे अखबार, टूथपेस्ट, बूट पालिश आदि, इनकी माँग **बेलोचदार** (Inelastics) होती है। इन वस्तुओं की कीमतें बढ़ने पर इनकी माँग में कमी नहीं होती। इसके विपरीत जिन वस्तुओं पर उपभोक्ता अपनी आय का काफी अधिक भाग खर्च करता है जैसे कपड़े, बढ़िया भोजन, डैजर्ट कूलर, फल आदि, इनकी माँग **लोचदार** होती है। इनकी कीमत बढ़ने पर इनकी माँग कम हो जाती है क्योंकि उपभोक्ता इनकी स्थानापन्न वस्तुएँ खोजने लगता है।

8. **कीमत स्तर** (Price Level)–**बहुत अधिक कीमत और बहुत कम कीमत वाली वस्तुओं की माँग बेलोचदार होती है।** अधिक कीमत वाली वस्तुएँ जैसे हीरे, जवाहरात, कीमती, गलीचे आदि की माँग **बेलोचदार** होती है। इन वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन इनकी माँग में बहुत थोड़ा परिवर्तन लाता है। इसी प्रकार जिन वस्तुओं की कीमत बहुत कम होती है जैसे माचिस, पोस्टकार्ड, सस्ती सब्जियाँ आदि, इनकी माँग भी **बेलोचदार** होती है। इनकी कीमतों में परिवर्तन होने का इनकी माँग पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। इसके विपरीत जिन वस्तुओं की **कीमत मध्यम श्रेणी** (Medium Priced goods) की होती है, अर्थात् जो न तो बहुत सस्ती और न ही बहुत महँगी होती है, उनकी माँग **लोचदार** (Elastic) होती है। इन वस्तुओं की कीमत कम होने पर इनकी माँग में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि होती है।

प्रतिस्थापन्न वस्तुओं की उपलब्धता तथा वस्तु की कीमत स्तर माँग की लोच के दो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण निर्धारक हैं।

नोट

9. **समय** (Time)–**अल्पकाल की तुलना में दीर्घकाल में माँग अधिक लोचदार होती है।** समय की अवधि जितनी लंबी होती है उतना ही उपभोक्ता को नई कीमत के साथ **समन्वय** (Adjust) करने का समय मिल जाता है, इसलिए माँग **अधिक लोचदार** हो जाएगी। यदि समन्वय के लिए बहुत कम समय मिलता है तब माँग **बेलोचदार** होगी। अत: अल्पकाल में किसी वस्तु की माँग बेलोचदार और दीर्घकाल में लोचदार होती है।

10. **पूरक वस्तुएँ** (Complementary Goods)–**वे वस्तुएँ जिनकी संयुक्त या पूरक माँग होती है, उनकी माँग सापेक्षतया बेलोचदार होती है** जैसे कार और पेट्रोल, पेन और स्याही, कैमरा और फिल्म। पेट्रोल की कीमत बढ़ने पर भी पेट्रोल की माँग में कमी नहीं होगी, यदि कारों की माँग में कमी नहीं होती है।

2.18. माँग की आय लोच (Income Elasticity of Demand)

अन्य बातें अर्थात् वस्तु विशेष की कीमत, संबंधित वस्तुओं की कीमतें तथा उपभोक्ता की रुचि आदि के स्थिर रहने पर **एक उपभोक्ता की आय में निश्चित प्रतिशत परिवर्तन होने के फलस्वरूप किसी वस्तु विशेष की माँग में जो प्रतिशत परिवर्तन आता है उसके अनुपात को माँग की आय लोच कहा जाता है।**

*वाटसन के शब्दों में, **"माँग की आय लोच से अभिप्राय आय में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन के फलस्वरूप माँगी गई मात्रा में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन के अनुपात से है।"** (Income elasticity of demand means the ratio of the percentage change in quantity demanded to percentage change in income.* ***—Watson)***

*रिचर्ड जी. लिप्सी के अनुसार, **"आय के परिवर्तन के कारण माँग की अनुक्रियाशीलता को माँग की आय लोच कहते हैं।"** (The responsiveness of demand to change in income is termed as income elasticity of demand.* ***—Richard G. Lipsey)***

2.19. माँग की आय लोच की माप (Measurement of Income Elasticity of Demand)

माँग की आय लोच को निम्नलिखित सूत्र की सहायता से मापा जा सकता है–

$$E_y = \frac{\text{माँगी गई मात्रा में आनुपातिक या प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{आय में आनुपातिक या प्रतिशत परिवर्तन}}$$

$$= \left(\frac{\text{Proportionate or Percentage change in Quantity Demanded}}{\text{Proportionate or Percentage change in Income}}\right)$$

$$E_y = \frac{\frac{\Delta Q}{Q}}{\frac{\Delta Y}{Y}} = \frac{\Delta Q}{\Delta Y} \times \frac{Y}{Q} = \frac{Y}{Q} \times \frac{\Delta Q}{\Delta Y}$$

$$E_y = \frac{Y}{Q} \times \frac{\Delta Q}{\Delta Y}$$

(यहाँ Ey = माँग की आय लोच Q = प्रारंभिक माँग; Y = प्रारंभिक आय; ΔQ = माँग की मात्रा में परिवर्तन; ΔY = आय में परिवर्तन।)

उदाहरण (Illustration)

जब आप की मासिक आय (Y) 300 रुपये हैं तो आप 10 आइसक्रीम (Q) खरीदते हैं, यदि आपकी मासिक आय बढ़ कर (Y_1) 600 रुपये हो जाए तो आप की माँग बढ़कर 30 आइसक्रीम हो जाती है। आइसक्रीम की माँग की आय लोच ज्ञात करें।

हल (Solution)

माँग की आय लोच को निम्नलिखित सूत्र की सहायता से मापा जा सकता है–

$$E_y = \frac{Y}{Q} \times \frac{\Delta Q}{\Delta Y}$$

नोट

(यहाँ Y = 300 रु.; Y_1 = 600 रु.; $\Delta Y = Y_1 - Y$ = 600 रु. – 300 रु = 300 रु.; Q = आइसक्रीम की 10 इकाइयाँ; Q_1 = आइसक्रीम की 30 इकाइयाँ: $\Delta Q = Q_1 - Q$ = 30 इकाइयाँ – 10 इकाइयाँ = आइसक्रीम की 20 इकाइयाँ।)

$$E_y = \frac{300}{10} \times \frac{20}{300} = 2 \text{ (इकाई से अधिक)}$$

2.20. माँग की आय लोच की श्रेणियाँ (Degrees of Income Elasticity of Demand)

माँग की आय लोच तीन प्रकार की होती है–

1. **माँग की धनात्मक आय लोच** (Positive Income elasticity of Demand)–**किसी वस्तु की माँग की आय लोच उस अवस्था में धनात्मक होती है जब उपभोक्ता की आय के बढ़ने से वस्तु की माँग बढ़ जाती है और आय के घटने से माँग कम हो जाती है।** माँग की आय लोच **सामान्य पदार्थों** (Normal Goods) के लिए धनात्मक होती है। इसकी व्याख्या चित्र 2.23 की सहायता से की जा सकती है। चित्र 2.23 में OX-अक्ष पर वस्तु की माँगी गई मात्रा और OY-अक्ष पर उपभोक्ता की आय को प्रकट किया गया है। वक्र DYDY माँग की धनात्मक आय लोच को प्रकट करता है। इस वक्र का ढलान बाएँ से दाएँ ऊपर की ओर उठ रहा है, जो यह संकेत देता है कि आय के बढ़ने पर माँग बढ़ती है और आय के कम होने पर माँग कम होती है।

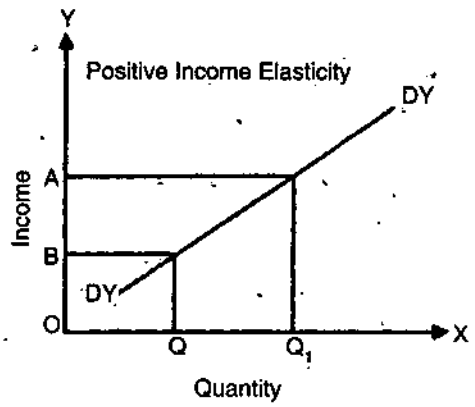

चित्र 2.23

माँग की धनात्मक आय लोच तीन प्रकार की हो सकती है–

सामान्य वस्तुओं की माँग की आय लोच धनात्मक होती है जबकि घटिया वस्तुओं की माँग की आय लोच ऋणात्मक होती है।

(*i*) **माँग की इकाई आय लोच** (Unitary Income Elasticity of Demand): **माँग की धनात्मक आय लोच उस अवस्था में इकाई होती है जब आय में जितने प्रतिशत परिवर्तन हो माँग की मात्रा में भी उतने ही प्रतिशत परिवर्तन हो।** मान लो यदि आय 100 प्रतिशत बढ़ जाती है तथा माँग भी 100 प्रतिशत बढ़ जाए तो

$$E_y = \frac{100\%}{100\%} = 1 \text{ इकाई (Unitary)}$$

नोट

(*ii*) **माँग की इकाई से कम आय लोच अथवा आय बेलोचदार माँग** (Less than Unitary Income Elasticity of Demand or Income Inelastic Demand): **माँग की धनात्मक आय लोच इकाई से कम उस अवस्था में होती है जब माँग में होने वाला प्रतिशत परिवर्तन आय में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन से कम है।** यदि आय 100 प्रतिशत बढ़ जाए परंतु माँग में केवल 50 प्रतिशत ही वृद्धि होती है तो

$$E_y = \frac{50\%}{100\%} = \frac{1}{2} \text{ इकाई से कम (Less than Unitary)}$$

(*iii*) **माँग की इकाई से अधिक आय लोच या आय लोचदार माँग** (More than Unitary Income Elasticity of Demand or Income Elastic Demand): **माँग की धनात्मक आय लोच उस अवस्था में इकाई से अधिक होती है जब माँग में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन आय में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन से अधिक होते हैं।** उदाहरण के लिए, यदि आय 100 प्रतिशत बढ़ जाए तथा माँग 200 प्रतिशत बढ़ जाए तो

$$E_y = \frac{200\%}{100\%} = 2 \text{ इकाई से अधिक (Greater than Unitary)}$$

2. **माँग की ऋणात्मक आय लोच** (Negative Income Elasticity of Demand)—**माँग की आय लोच उस अवस्था में ऋणात्मक होती है जब उपभोक्ता की आय में वृद्धि होने से किसी वस्तु की माँग में कमी होती है तथा उपभोक्ता की आय में कमी होने से वस्तु की माँग में वृद्धि होती है।** माँग की ऋणात्मक आय लोच **निम्नकोटि की वस्तुओं** (Inferior Goods) की होती है। उदाहरण के लिए, घटिया अनाज, मोटा कपड़ा आदि की माँग की आय लोच ऋणात्मक होती है। चित्र 2.24 में DYDY माँग वक्र ऋणात्मक आय लोच को प्रकट कर रहा है। इसका ढलान बाएँ से दाएँ नीचे की ओर है। इससे ज्ञात होता है कि जब आय 10 रुपए है तो वस्तु की माँग 4 इकाइयों की है और जब आय बढ़कर 20 रुपए हो जाती है तो वस्तु की माँग कम होकर 2 इकाइयाँ हो जाती है।

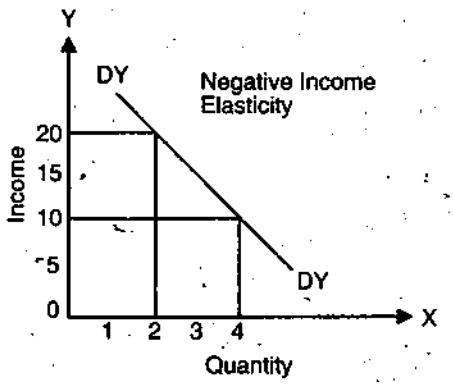

चित्र 2.24

3. **माँग की शून्य आय लोच** (Zero Income Elasticity of Demand)—**किसी वस्तु की माँग की आय लोच उस समय शून्य होती है जब उस वस्तु के क्रेता की आय में परिवर्तन आने पर उस वस्तु की माँग में कोई परिवर्तन नहीं होता।** इसे चित्र 2.25 द्वारा स्पष्ट किया गया है। चित्र में DYDY वक्र शून्य आय लोच को प्रकट कर रहा है। यह वक्र OY-अक्ष के समानान्तर है; इससे प्रकट होता है कि यदि आय 10 रुपए से बढ़ कर 20 रुपये हो जाती है तो भी वस्तु की माँग 4 इकाइयाँ ही रहती है। अनिवार्य आवश्यकताओं जैसे, मिट्टी का तेल, नमक आदि की माँग की आय लोच शून्य होती हैं।

नोट

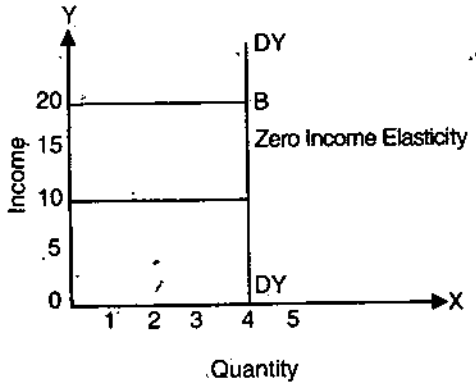

चित्र 2.25

2.21. माँग की आड़ी लोच (Cross Elasticity of Demand)

किन्हीं दो संबंधित वस्तुओं (Related Goods) की माँग की मात्रा और कीमत में होने वाले परिवर्तन में परस्पर संबंध होता है। एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन दूसरी वस्तु की माँग की मात्रा में परिवर्तन का कारण बन सकता है, जैसे–चाय की कीमत में परिवर्तन होने पर कॉफी की माँग में परिवर्तन आ जाता है। एक वस्तु की माँग की मात्रा और दूसरी वस्तु की कीमत के परिवर्तन का पारस्परिक संबंध माँग की आड़ी लोच द्वारा मापा जा सकता है। **माँग की आड़ी लोच X-वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन होने के फलस्वरूप उससे संबंधित Y-वस्तु की माँग में होने वाले आनुपातिक परिवर्तन के अनुपात का माप है।**

फर्गूसन के शब्दों में, ***"माँग की आड़ी लोच संबंधित वस्तु-Y की कीमत में होने वाले आनुपातिक परिवर्तन के कारण X-वस्तु की माँगी गई मात्रा में होने वाला आनुपातिक परिवर्तन है।"*** *(The cross elasticity of demand is the proportional change in the quantity demanded of goods-X divided by the proportional change in the price of the related goods-Y. —**Ferguson**)।*

***लीभाफस्की** के अनुसार, "माँग की आड़ी लोच Y-वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने के फलस्वरूप X-वस्तु की खरीदी जाने वाली मात्रा की अनुक्रियाशीलता का माप है।" (The Cross elasticity of demand is a measure of the responsiveness of purchases of goods-X to change in the price of goods-Y. —**Leibhafasky**)*

2.22. माँग की आड़ी लोच की माप (Measurement of Cross Elasticity of Demand)

माँग की आड़ी लोच को निम्नलिखित सूत्र द्वारा मापा जाता है–

$$E_c = \frac{\text{X – वस्तु की माँगी गई मात्रा में आनुपातिक या प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{Y – वस्तु की कीमत में आनुपातिक या प्रतिशत परिवर्तन}}$$

$$E_c = \frac{\text{(Proportionate or Percentage Change in the Quantity Demanded of Goods – X)}}{\text{(Proportionate or Percentage Change in the Price of Goods – X)}}$$

नोट

$$= \frac{\dfrac{\text{X – वस्तु की माँगी गई मात्रा में परिवर्तन (Change in Quantity Demanded of X)}}{\text{Y – वस्तु की प्रारंभिक मात्रा (Original Quantity Demanded of X)}} \times 100}{\dfrac{\text{Y – वस्तु की कीमत में परिवर्तन (Change in Price of Y)}}{\text{Y – वस्तु की प्रारंभिक कीमत (Orignal Price of Y)}}}$$

$$= \frac{\dfrac{\Delta Q_x}{Q_x}}{\dfrac{\Delta P_y}{P_y}} = \frac{\Delta Q_x}{Q_x} = \frac{P_y}{\Delta P_y}$$

$$\boxed{E_c = \frac{P_y}{Q_x} \times \frac{\Delta Q_x}{\Delta P_y}}$$

(यहाँ E_c = माँग की आड़ी लोच; P_y = Y-वस्तु की प्रारंभिक कीमत; ΔP_y = Y-वस्तु की कीमत में परिवर्तन; Q_x = X वस्तु की प्रारंभिक मात्रा; ΔQ_x = X-वस्तु की माँगी गई मात्रा में परिवर्तन)

2.23. माँग की आड़ी लोच की प्रकृति तथा श्रेणियाँ (Nature and Degrees of Cross Elasticity of Demand)

(*i*) **धनात्मक** (Positive): **स्थानापन्न वस्तुओं** (Substitutes) के लिए माँग की आड़ी लोच धनात्मक होती है। अन्य शब्दों में, जब वस्तुएँ एक-दूसरे की स्थापन्न होती हैं तो ऐसी स्थिति में एक वस्तु की कीमत में प्रतिशत वृद्धि होने पर दूसरी वस्तु की माँग में भी वृद्धि होगी। उदाहरण के लिए, कॉफी की कीमत बढ़ने पर चाय की माँग बढ़ जाएगी क्योंकि ये एक दूसरे की निकट स्थानापन्न हैं।

उदाहरण (Illustration)

मान लीजिए कॉफी की कीमत जब 50 पैसे प्रति प्याला है तो चाय की माँग 50 प्याले है। यदि कॉफी की कीमत बढ़कर 70 पैसे प्रति प्याला हो जाती है तो चाय की माँग बढ़कर 100 प्याले हो जाती है। अत: चाय की माँग की आड़ी लोच का अनुमान निम्नलिखित सूत्र के आधार पर लगाया जा सकता है–

$$E_c = \frac{P_y}{Q_x} \times \frac{\Delta Q_x}{\Delta P_y}$$

Q_x = 50 प्याले; Q_{x_1} = 100 प्याले; ΔQ_x = 100 प्याले – 50 प्याले = 50 प्याले

P_y = 50 पैसे; P_{y_1} = 70 पैसे; ΔP_y = 70 पैसे – 50 पैसे = 20 पैसे

$$E_c = \frac{50}{50} \times \frac{50}{20} = \frac{5}{2} = 2.5 (E_c > 1)$$

अत: चाय के लिए माँग की आड़ी लोच इकाई से अधिक या लोचदार है। स्थानापन्न वस्तुओं, जैसे चाय और कॉफी के लिए माँग की आड़ी लोच को चित्र 2.26 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। इस चित्र में OX-अक्ष पर चाय की मात्रा और OY-अक्ष पर कॉफी की कीमत प्रकट की गई है। जब कॉफी की कीमत OB है तो चाय की माँग OQ कप है। जब कॉफी

नोट

की कीमत बढ़कर OA हो जाती है तो चाय की माँग भी बढ़कर OQ_1 हो जाएगी। DCDC वक्र कॉफी की विभिन्न कीमतों पर चाय की माँगी गई विभिन्न मात्राओं को प्रकट कर रहा है। यह वक्र नीचे बाएँ से ऊपर दाईं ओर उठ रहा है। इससे सिद्ध होता है कि कॉफी की कीमत बढ़ने पर चाय की माँग बढ़ेगी और कॉफी की कीमत कम होने पर चाय की माँग कम होगी।

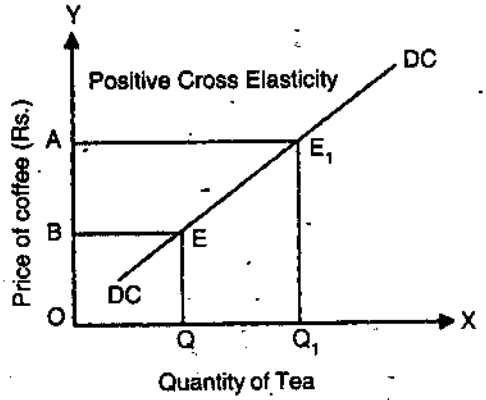

चित्र 2.26

(*ii*) **ऋणात्मक** (Negative): **पूरक वस्तुओं** (Complementary Goods) के लिए माँग की आड़ी लोच ऋणात्मक होती हैं। जो वस्तुएँ एक दूसरे की **पूरक** (Complementary) या जिनकी **माँग संयुक्त माँग** (Joint demand) होती है, इनमें से किसी एक वस्तु की कीमत में आनुपातिक वृद्धि होने पर दूसरी वस्तु की माँग में आनुपातिक कमी हो जाती है। ऐसी स्थिति में माँग की आड़ी लोच ऋणात्मक होती है। अतएव इस स्थिति में माँग की आड़ी लोच की संख्या से पहले **घटाने का चिन्ह** (Sign of Minus "–") लगाते हैं।

उदाहरण (Illustration)

डबलरोटी और मक्खन एक दूसरे की पूरक वस्तुएँ हैं। जब डबलरोटी की कीमत 80 पैसे है तो मक्खन की माँग 10 कि.ग्रा. है। यदि डबलरोटी की कीमत बढ़कर 1 रु. 20 पैसे हो जाती है तो मक्खन की माँग कम होकर 5 कि.ग्रा. हो जाती है। मक्खन की आड़ी माँग की लोच ज्ञात कीजिए।

मक्खन की माँग की आड़ी लोच का अनुमान निम्नलिखित प्रकार से लगाया जा सकता है–

$$E_c = \frac{P_y}{Q_x} \times \frac{\Delta Q_x}{\Delta P_y}$$

P_y = 80 पैसे; P_{y_1} = 120 पैसे;

ΔP_y = 120 पैसे – 80 पैसे = 40 पैसे

Q_x = 10 कि. ग्रांम; Q_{x_1} = 5 कि. ग्राम;

ΔQ_x = 5 कि. ग्राम – 10 कि. ग्राम = – 5 कि. ग्राम

$$E_c = \frac{80}{10} \times \frac{-5}{40} = -1$$

(यहाँ x का प्रयोग मक्खन के लिए और y का प्रयोग डबलरोटी के लिए किया गया है।)

ऋणात्मक माँग की आड़ी लोच को निम्नलिखित चित्र 2.27 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में OX-अक्ष पर मक्खन की मात्रा और OY-अक्ष पर डबलरोटी की कीमत प्रकट की गई है। DCDC रेखा माँग की आड़ी लोच को प्रकट कर रही है। इस रेखा का ढलान बाएँ से दाएँ

नीचे की ओर है जो यह सिद्ध करता है कि डबलरोटी की कीमत बढ़ने पर मक्खन की माँग कम हो जाएगी। बिंदु E तथा E_1 से ज्ञात होता है कि जब डबलरोटी की कीमत OP है तो मक्खन की माँग OQ है तथा जब डबलरोटी की कीमत बढ़कर OP_1 हो जाती है तो मक्खन की माँग कम होकर OQ_1 हो जाती है।

नोट

(iii) **माँग की शून्य आड़ी लोच** (Zero Cross Elasticity of Demand): माँग की आड़ी लोच उस स्थिति में शून्य होती है जब दो वस्तुओं में परस्पर कोई संबंध न हो। उदाहरण के लिए, गेहूँ की कीमत बढ़ने का किताबों की माँग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। अतः इनकी माँग की आड़ी लोच शून्य होगी।

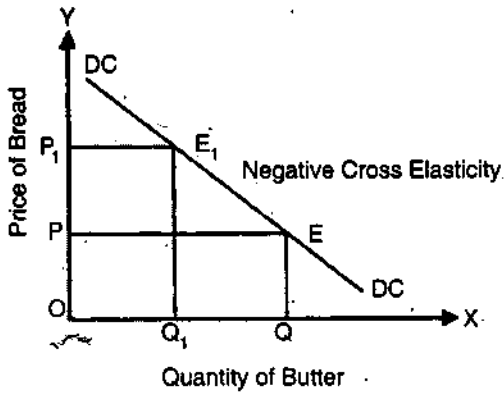

चित्र 2.27

तालिका 6

माँग की विभिन्न लोच - एक दृष्टि (Elasticities at a Glance)		
प्रकार (Kind)	***संख्यात्मक माप (Numerical Measure)***	***विवरण (Description)***
(A) माँग की कीमत लोच (Price Elasticity of Demand)		
(1) पूर्णतया बेलोचदार	शून्य ($E_d = 0$)	कीमत परिवर्तन से माँग की मात्रा में कोई भी परिवर्तन नहीं होता
(2) बेलोचदार या इकाई से कम	शून्य से अधिक परंतु इकाई से कम ($0 < E_d < 1$)	माँग की मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन कीमत में आनुपातिक परिवर्तन से कम
(3) इकाई लोच	एक $E_d = 1$	माँग की मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन कीमत में आनुपातिक परिवर्तन के समान
(4) लोचदार या इकाई से अधिक	एक से अधिक परंतु अनन्त (Infinity) से कम ($1 < E_d < \infty$)	माँग की मात्रा में होने वाला आनुपातिक परिवर्तन कीमत में आनुपातिक परिवर्तन से अधिक
(5) पूर्णतया लोचदार	अनन्त (Infinity) ($E_d = \infty$)	एक निश्चित कीमत पर कोई भी मात्रा खरीदी जाएगी परंतु ऊँची कीमत पर कुछ भी नहीं।

नोट

(B)	**माँग की आय लोच (Income Elasticity of Demand)**		
(1)	सामान्य पदार्थ (Normal Goods)	धनात्मक (Positive)	आय में वृद्धि होने पर माँग की मात्रा में वृद्धि होती है।
(*a*)	इकाई	एक ($E_y = 1$)	माँग की मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन आय के प्रतिशत परिवर्तन के समान।
(*b*)	इकाई से कम या बेलोचदार	एक से कम ($E_y < 1$)	आय में प्रतिशत परिवर्तन की तुलना में माँग की मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन कम।
(*c*)	इकाई से अधिक या लोचदार	एक से अधिक ($E_y > 1$)	आय में प्रतिशत परिवर्तन की तुलना में माँग की मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन अधिक।
(2)	निम्नकोटि वस्तु (Inferior Goods)	ऋणात्मक (Negataive)	आय में वृद्धि होने से माँगी गई मात्रा कम होती है।
(C)	**माँग की आड़ी लोच (Cross Elasticity of Demand)**		
(1)	स्थानापन्न (Substitutes)	धनात्मक (Positive)	स्थानापन्न वस्तु की कीमत में वृद्धि होने से संबंधित वस्तु की माँगी गई मात्रा में वृद्धि होती है।
(2)	पूरक वस्तु (Complementary)	ऋणात्मक (Negative)	पूरक वस्तु की कीमत में वृद्धि होने से संबंधित वस्तु की माँगी गई मात्रा में कमी आती है।

2.24. माँग की कीमत लोच का महत्त्व (Importance of Price Elasticity of Demand)

माँग की कीमत लोच का सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक महत्त्व निम्नलिखित है–

1. **एकाधिकार के अंतर्गत कीमत निर्धारण** (Determination of Price Under Monopoly) –एक एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत निर्धारित करते समय माँग की लोच को ध्यान में रखता है। यदि
   (*i*) माँग **लोचदार** है तो एकाधिकारी उस वस्तु की कीमत कम रखेगा। कीमत कम होने से वस्तु की बिक्री अधिक होगी और उससे प्राप्त होने वाली **कुल आय** अधिक होगी।
   (*ii*) यदि माँग **बेलोचदार** है तो एकाधिकारी उस वस्तु की कीमत अधिक रखेगा। कीमत के अधिक होने से उस वस्तु की बिक्री तो कम होगी परंतु उससे प्राप्त होने वाली **कुल आय** (Total Revenue) में वृद्धि होगी।
2. **कीमत विभेद** (Price Discrimination)–एकाधिकारी जब किसी वस्तु को विभिन्न क्रेताओं को विभिन्न कीमतों पर बेचता है, तो इस स्थिति को कीमत विभेद कहा जाता है। एक एकाधिकारी कीमत विभेद की नीति को उस समय अपना सकता है जब किसी वस्तु की माँग की लोच विभिन्न उपयोगों के लिए अथवा विभिन्न उपभोक्ताओं के लिए भिन्न-भिन्न होती है। वह उन उपभोक्ताओं से वस्तु की कीमत अधिक लेगा जिनकी उस वस्तु के लिये माँग **बेलोचदार** है और उन लोगों से उस वस्तु की कीमत कम लेगा जिनकी उस वस्तु के लिए माँग **लोचदार** है। उदाहरण के लिए, एक गृहस्थी के लिए बिजली की माँग बेलोचदार है, इसलिए बिजली कंपनियाँ घरेलू उपयोग के लिए बिजली की कीमत अधिक लेती हैं। इसके विपरीत एक उद्योग के लिए बिजली की माँग लोचदार है, यदि बिजली की कीमत अधिक होती है तो एक उद्योग अपनी मशीनों को चलाने के लिए बिजली के स्थान पर तेल, डीजल

या कोयले का प्रयोग कर सकता है। इसलिए बिजली कंपनी/बोर्ड द्वारा उद्योगों को दी जाने वाली बिजली की कीमत कम ली जाती है।

3. **संयुक्त पूर्ति वाली वस्तु का कीमत निर्धारण** (Price Determination of Joint Supply) –संयुक्त पूर्ति वाली वस्तुएँ वे वस्तुएँ हैं जिनका उत्पादन एक साथ होता है जैसे–रुई तथा बिनौला, तेल तथा खल आदि। इन वस्तुओं की कीमत निश्चित करने में माँग की लोच को ध्यान में रखा जाता है। उदाहरण के लिए, यदि रुई की माँग बेलोचदार है और उसकी तुलना में बिनौले की माँग लोचदार है तो रुई की कीमत अधिक रखी जाएगी और बिनौले की कीमत कम रखी जाएगी।

4. **कर नीति** (Taxation Policy)–नए कर लगाते समय वित्त मंत्री को माँग की लोच को ध्यान में रखना पड़ता है। (*i*) जिन वस्तुओं की माँग **लोचदार** है उन पर अधिक कर लगाने से करों से होने वाली आय बढ़ने के स्थान पर कम होगी। इसका कारण यह है कि अधिक कर लगाने से उनकी कीमत में वृद्धि होगी, कीमत में वृद्धि होने से उनकी माँग कम हो जाएगी। (*ii*) जिन वस्तुओं की माँग **बेलोचदार** है, उन पर वित्त मंत्री अधिक कर लगा सकता है, अधिक कर लगाने से उनकी कीमत तो बढ़ेगी परंतु माँग में विशेष कमी नहीं होगी। अतः कर आय अधिक मात्रा में प्राप्त हो सकेगी।

5. **करों के भार का वितरण** (Distribution of Burden of Taxation)–माँग की कीमत लोच द्वारा यह भी निर्धारित किया जा सकता है कि अप्रत्यक्ष करों जैसे बिक्री कर, उत्पादन कर आदि का उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं पर कितना-कितना भार पड़ेगा। यदि किसी वस्तु की माँग **बेलोचदार** है तो अप्रत्यक्ष करों का अधिक भार अपेक्षाकृत उपभोक्ताओं पर पड़ेगा। इन करों के फलस्वरूप वस्तु की कीमत में वृद्धि होगी परंतु माँग में बहुत थोड़ी कमी होगी। इसके विपरीत यदि वस्तु की माँग **लोचदार** है तो उपभोक्ताओं को अप्रत्यक्ष करों का भार अपेक्षाकृत कम उठाना पड़ेगा।

6. **अंतर्राष्ट्रीय व्यापार** (International Trade)–अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में भी माँग की लोच की धारणा का बहुत अधिक महत्त्व है। एक देश अपने निर्यातों की कीमत में वृद्धि करके तब ही लाभ प्राप्त करेगा जब आयात करने वाले देशों में इन निर्यातित वस्तुओं की माँग **बेलोचदार** है। यदि आयात करने वाले देश में इनकी माँग **लोचदार** है तब निर्यातकर्ता देश इन निर्यातित वस्तुओं की कीमत कम देगा और अपने कुल निर्यातों को बढ़ाएगा और इस तरह से लाभ प्राप्त करेगा। इसी प्रकार एक देश उन वस्तुओं को कम कीमत पर आयात करेगा जिनकी माँग उसके लिए **लोचदार** है।

7. **निर्धनता का विरोधाभास** (Paradox of Poverty)–जिनका संबंध कृषि से है वे भली भाँति जानते हैं कि कई कृषि पदार्थों की अच्छी फसल होने के बावजूद भी मुद्रा के रूप में उनसे प्राप्त होने वाली आय बहुत कम होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी वस्तु उत्पादन में वृद्धि होने से उससे प्राप्त आय बढ़ने के स्थान पर पहले से कम हुई है। इस अस्वाभाविक अवस्था को **निर्धनता का विरोधाभास** कहा जाता है। इसका कारण यह है कि अधिकांश कृषि पदार्थों की माँग बेलोचदार होती है। जब इन वस्तुओं की पूर्ति बढ़ने पर इनकी कीमत में कमी हो जाती है तब इनकी माँग में विशेष वृद्धि नहीं होने पाती। इसके फलस्वरूप इनकी बिक्री से प्राप्त आय कम हो जाती है।

2.25. पूर्ति एवं संबंधित विचार (Supply and Related Concepts)

पूर्ति से तात्पर्य किसी कीमत एवं समय विशेष में विक्रय के लिए उपलब्ध वस्तुओं की मात्रा है। वस्तु की कीमत वस्तु की पूर्ति को प्रभावित करती है। सामान्यतया, अधिक कीमत पर वस्तुओं का अधिक विक्रय किया जाता है, अर्थात् कीमत में वृद्धि के साथ-साथ पूर्ति में वृद्धि हो जाती है। इसी प्रकार कीमत में कमी होने पर पूर्ति में भी कमी हो जाती है। समय-समय पर कीमत में परिवर्तन होने से वस्तुओं की पूर्ति भी घटती-बढ़ती रहती है।

नोट

पूर्ति की परिभाषा *(Definition of Supply)*

मुराव अनातोल के अनुसार, "*पूर्ति से तात्पर्य दी गई कीमत पर दिए गए समय एवं बाजार विशेष में विक्रय के लिए पेश की गई वस्तु की मात्रा है।*" ("Supply refers to the quantity of a commodity offered for sale at a given price in a given market at a given time.")

थोमय के शब्दों में, "*वस्तु की पूर्ति विभिन्न कीमतों पर दिए गए समय एवं दिए गए बाजार में विक्रय के लिए पेश की गई मात्रा है।*" ("The supply of goods is the quantity offered for sale in a given market at a given time at various prices")

स्टॉक एवं पूर्ति में अंतर *(Difference between Stock and Supply)*

पूर्ति का विचार स्टॉक से भिन्न है। पूर्ति से तात्पर्य विक्रय के लिए पेश की गई वस्तु की मात्रा से है, जबकि स्टॉक बाज़ार में उपलब्ध वस्तुओं की विक्रय के लिए पेश की गई वस्तुओं पर अधिकता है।

पूर्ति को स्टॉक का एक भाग माना जा सकता है; जोकि बाज़ार में किसी समय में विक्रय के लिए होता है। वस्तुओं का एक बड़ा भाग भविष्य में बढ़ी हुई कीमतों पर विक्रय करने के लिए रोक लिया जाता है, अथवा बाज़ार से वापस मंगा लिया जाता है, इन वस्तुओं को स्टॉक कहा जाता है। स्टॉक सदैव पूर्ति से अधिक होता है। दूसरे शब्दों में, पूर्ति स्टॉक का एक भाग है।

पूर्ति एवं पूर्ति की गई मात्रा में अंतर *(Difference between Supply and Quantity Supplied)*

एक व्यक्तिगत फर्म द्वारा किसी विशेष समय में किसी विशेष वस्तु की बाज़ार में पूर्ति को व्यक्तिगत पूर्ति कहा जाता है।

बाज़ार पूर्ति *(Market Supply)*

समस्त फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तु विशेष की किसी विशेष समय पर बाज़ार में प्रस्तुत की गई मात्रा को बाज़ार पूर्ति कहा जाता है।

व्यक्तिगत पूर्ति तालिका *(Individual Supply Schedule)*

किसी वस्तु विशेष की विक्रय के लिए प्रस्तुत की गई मात्रा एवं उसकी विभिन्न कीमतों के बीच संबंध का तालिका द्वारा प्रदर्शन को व्यक्तिगत पूर्ति तालिका कहा जाता है।

तालिका 2.7. व्यक्तिगत पूर्ति

कीमत (रुपये)	मात्रा (इकाइयाँ)
5	100
10	200
15	300
20	400

बाज़ार पूर्ति तालिका *(Market Supply Schedule)*

बाज़ार में समस्त फर्मों द्वारा किसी वस्तु विशेष की किसी विशेष कीमत पर विक्रय के लिए प्रस्तुत की गई मात्रा के बीच संबंध का तालिका द्वारा प्रदर्शन को बाज़ार पूर्ति तालिका कहा जाता है।

तालिका 2.8. बाज़ार पूर्ति			
कीमत (रुपये)	फर्म A	फर्म B	बाज़ार (A + B)
5	100	200	300
10	200	400	600
15	300	600	900
20	400	800	1200

पूर्ति वक्र (Supply Curve)

पूर्ति तालिका का चित्र द्वारा प्रदर्शन पूर्ति वक्र कहलाता है। इसको व्यक्तिगत पूर्ति वक्र एवं बाज़ार पूर्ति वक्र में वर्गीकृत किया जाता है।

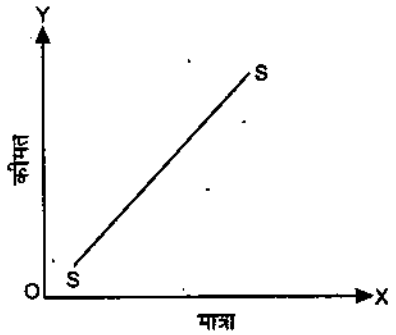

चित्र 2.28 व्यक्तिगत पूर्ति

(*a*) **व्यक्तिगत पूर्ति वक्र (Individual Supply Curve)**—व्यक्तिगत पूर्ति तालिका के चित्र द्वारा प्रदर्शन को व्यक्तिगत पूर्ति वक्र कहा जाता है।

(*b*) **बाज़ार पूर्ति वक्र (Market Supply Curve)**—बाज़ार पूर्ति तालिका के चित्र द्वारा प्रदर्शन को बाज़ार पूर्ति वक्र कहा जाता है।

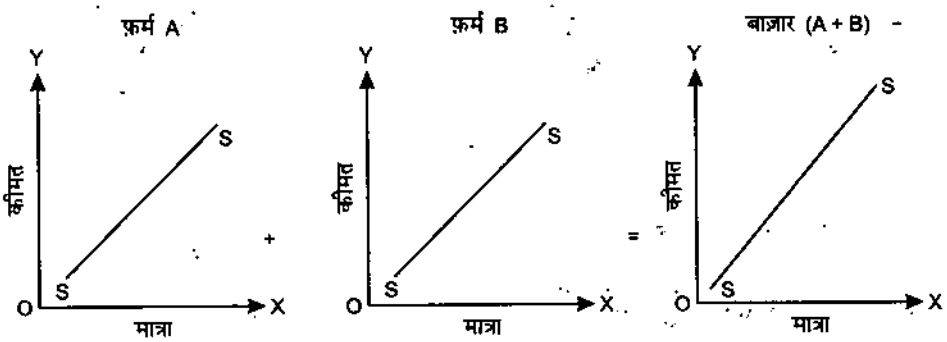

चित्र 2.29 बाज़ार पूर्ति

पूर्ति फलन (Supply Function)

किसी वस्तु विशेष की पूर्ति एवं इसके विभिन्न तत्त्वों के क्रियात्मक संबंध को पूर्ति फलन कहा जाता है।

$$S_x = f(P_x, P_r, P_f, T, G, E, N, C, T_p, A)$$

नोट

यहाँ : S_x = x वस्तु की पूर्ति

f = संबंध

P_x = वस्तु की कीमत

P_r = संबंधित वस्तुओं की कीमत

P_f = उत्पादन के साधनों की कीमत

T = तकनीकी में परिवर्तन

G = फर्म का उद्देश्य

E = कीमत में परिवर्तन का अनुमान

N = प्राकृतिक कारक

C = परिवहन तथा संचार के साधन

T_p = कर नीति

A = उत्पादकों के बीच संधि

एक वस्तु की पूर्ति को प्रभावित करने वाले तत्त्व/पूर्ति में परिवर्तन के कारण/पूर्ति के निर्धारक तत्त्व

पूर्ति के निर्धारक तत्त्व (Determinants of Supply)

(i) **वस्तु की कीमत (The price of the commodity) (P_x)**–वस्तु पूर्ति उसकी कीमत पर बहुत अधिक निर्भर होती है। वस्तु की कीमत एवं उसकी पूर्ति में प्रत्यक्ष एवं धनात्मक संबंध होता है।

(ii) **स्थानापन्न वस्तुओं की कीमत (The price of the substitutes) (P_r)**–किसी वस्तु विशेष की पूर्ति अन्य वस्तुओं की कीमत से अप्रत्यक्ष रूप से संबंधित होती है, जैसे चावल की कीमत में वृद्धि होने से गेहूँ की पूर्ति गिर जाती है। यह एक तथ्य के कारण है कि चावल की कीमत में वृद्धि निर्माताओं को चावल के अधिक उत्पादन के लिए प्रोत्साहित करती है। इसलिए गेहूँ का उत्पादन कम होगा एवं उसकी पूर्ति घट जाएगी।

(iii) **उत्पादन के साधनों की कीमत (The price of factors of production) (P_f)**–उत्पादन के साधनों की कीमत में वृद्धि के साथ-साथ उत्पादन की लागत में भी वृद्धि होगी, जिसके परिणामस्वरूप पूर्ति बढ़ जाएगी।

(iv) **तकनीक में परिवर्तन (Change in techonology) (T_f)**–यदि तकनीकी में परिवर्तन अथवा नई खोजों की लागत में कमी हुई एवं उत्पादन में वृद्धि तो इससे पूर्ति के स्तर में भी वृद्धि होगी।

(v) **फर्म का उद्देश्य (Goal of the firm) (G)**–सामान्यतया, फर्म का उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना है। इसके अतिरिक्त अधिकतम विक्रय, अधिकतम उत्पाद अथवा अधिकतम रोज़गार भी फर्म के उद्देश्य माने जाते हैं। ये उद्देश्य एवं इनमें परिवर्तन वस्तु की पूर्ति को प्रभावित करता है। कभी-कभी निर्माता लाभ न होने पर भी केवल समाज में अपनी इज़्ज़त के लिए वस्तु की पूर्ति जारी रखता है।

(vi) **कीमत में परिवर्तन का अनुमान (Expected change in price) (E)**–यदि निर्माताओं को भविष्य में कीमत में वृद्धि की आशा होती है, तो वह बाज़ार से वस्तुओं को हटा लेते हैं, परिणामस्वरूप पूर्ति घट जाती है।

यदि भविष्य में वस्तु की कीमत में वृद्धि की आशा हो तो पूर्ति अपने आप बढ़ जाती है।

(vii) **प्राकृतिक कारक (Natural factors) (N)**–वस्तुओं की पूर्ति उत्पादित वस्तुओं का भाग है।

इसका तात्पर्य है कि वस्तुओं के उत्पादन अधिक होने का परिणाम अधिक पूर्ति होता है एवं वस्तुओं का उत्पादन कम होने पर कम पूर्ति होगी। कृषि उत्पादन विभिन्न प्राकृतिक कारकों पर निर्भर होता है। जैसे–बरसात, उत्पादकता, मौसम आदि। उत्पादन सूखा, अकाल, अधिक वर्षा, बाढ़ एवं तूफान आदि के कारण भी प्रभावित होता है।

नोट

(*viii*) **परिवहन एवं संचार के साधन (Means of transportation and communication) (C)** –यदि परिवहन एवं संचार के साधन विकसित हों तो वस्तुओं की पर्याप्त पूर्ति होती है। यदि परिवहन एवं संचार के साधन अविकसित हों तो घरेलू बाजार में वस्तुओं की दुर्लभता होगी।

(*ix*) **कर नीति (Taxation Policy) (T_p)**–यदि उत्पादन पर अधिक कर लगेगा तो वस्तु का उत्पादन अप्रोत्साहित होगा। इसी प्रकार कर की छूट निर्माताओं को अधिक उत्पादन के लिए प्रोत्साहित करती है।

(*x*) **निर्माताओं के बीच संधि (Agreement among producers) (A)**–कभी-कभी समस्त फर्में समान वस्तु का उत्पादन करके एवं संघ बनाती है, जिससे वस्तु की निरंतर पूर्ति हो, इसलिए वह अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

2.26. पूर्ति का नियम (Law of Supply)

अर्थ (Meaning)

साधारणतया किसी सेवा या वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर उसकी पूर्ति में भी होती है तथ कीमत में कमी होने पर इसकी पूर्ति में भी कमी होती है। पूर्ति का नियम भी माँग के नियम की भाँति एक गुणात्मक कथन है। अंतर केवल इतना है कि पूर्ति के नियम में पूर्ति और कीमत एक ही दिशा में परिवर्तित होते हैं, जबकि माँग के नियम में माँग और कीमत विपरीत दिशा में परिवर्तित होते हैं। यह आवश्यक नहीं कि पूर्ति का परिवर्तन आनुपातिक हो।

वस्तु का मूल्य अधिक होने पर लाभ की मात्रा बढ़ जाती है। इसलिए वस्तु के वर्तमान उत्पादक उसकी पूर्ति बढ़ाते हैं ताकि अधिक लाभ कमा सकें। वस्तु का उत्पादन नये उत्पादकों द्वारा भी किया जाता है। इस प्रकार पूर्ति बढ़ जाती है।

एक बाजार में एक निश्चित समय में वस्तु की विभिन्न कीमतों पर की वस्तु की विभिन्न मात्राएँ विक्रेता बेचने को तैयार होंगे। यदि हम वस्तु की विभिन्न कीमतों तथा वस्तु की विभिन्न पूर्तियों को तालिका द्वारा प्रदर्शित करें तो उसे पूर्ति तालिका या अनुसूची कहते हैं। वस्तु की कीमत और वस्तु की पूर्ति में प्रत्यक्ष संबंध होता है। दूसरे शब्दों में, इन दोनों चर-मूल्यों (Variables) के बीच सह-संबंध गुणांक ज्ञात करें तो धनात्मक होगा।

निम्नलिखित मान्यताओं के आधार पर किसी सेवा या वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर उसकी पूर्ति में भी वृद्धि होती है तथा कीमत में कमी होने पर उसकी पूर्ति में भी कमी होती है। पूर्ति का नियम भी माँग के नियम की भाँति एक गुणात्मक कथन है। अंतर केवल इतना है कि पूर्ति के नियम मे कीमत और पूर्ति एक ही दिशा में परिवर्तित होते हैं, जबकि माँग के नियम में कीमत और माँग विपरीत दिशा में परिवर्तित होते हैं। यह आवश्यक नहीं की पूर्ति का परिवर्तन आनुपातिक हो।

पूर्ति नियम की मान्यताएँ–

(*i*) क्रेता और विक्रेता की आय में परिवर्तन न होना।

(*ii*) क्रेता की रुचि या फैशन व आदतों में परिवर्तन न होना।

(*iii*) उत्पादन के साधनों की कीमतें समान रहना।

(*iv*) तकनीकी ज्ञान में परिवर्तन न होना।

(*v*) कीमत तथा पूर्ति के संबंधों में अत्यंत सूक्ष्म परिवर्तन मानना आदि।

नोट

पूर्ति तालिका द्वारा नियम की प्रस्तुति

एक पूर्ति तालिका वह कथन है जोकि किसी विशेष बाज़ार में विशेष समय पर किसी वस्तु विशेष की कुल मात्रा एवं इसकी विभिन्न कीमतें प्रस्तुत करता है।

पूर्ति का नियम पूर्ति तालिका की सहायता से अच्छी तरह समझा जा सकता है। निम्नलिखित वैकल्पिक पूर्ति तालिका पूर्ति के नियम को दर्शा रही है, जोकि 'x' वस्तु की कीमत एवं उसकी पूर्ति के बीच संबंध है। विद्यार्थियों को यह परामर्श दिया जाता है कि जब वह पूर्ति के नियम को समझाएँ तो 'अन्य बातें समान रहने पर' का उपयोग अवश्य करें।

तालिका 2.9. "X' वस्तु की कीमत एवं उसकी पूर्ति का संबंध दर्शा रही है।

X वस्तु की कीमत	*X वस्तु की पूर्ति (इकाइयाँ)*
5	500
6	600
7	700
8	800
9	900
10	1000

पूर्ति के नियम की वक्र द्वारा प्रस्तुति

पूर्ति तालिका की चित्र द्वारा प्रस्तुति पूर्ति वक्र है। दूसरे शब्दों में, पूर्ति वक्र तालिका की चित्रमय प्रस्तुति है। इसको निम्नलिखित चित्र द्वारा दर्शाया गया है। यह एक ऊपर की ओर दिशा वाला वक्र है जोकि बाएँ से दाएँ होता है।

इस प्रकार पूर्ति वक्र एवं पूर्ति तालिका दोनों पूर्ति के नियम को दर्शाते हैं। दूसरे शब्दों में, ये कीमत एवं पूर्ति में धनात्मक संबंध दर्शाते हैं कीमत में वृद्धि के साथ-साथ पूर्ति की गई मात्रा में वृद्धि होती है।

पूर्ति के नियम के अपवाद (Exceptions of the Law of Supply)

पूर्ति का नियम निम्न स्थितियों में लागू नहीं होगा।

(*i*) नियम **कृषि वस्तुओं की स्थिति में** लागू नहीं होगा, जिसकी पूर्ति प्राकृतिक कारकों से प्रभावित हो।

(*ii*) **शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं** की स्थिति में नियम लागू नहीं होगा। इन वस्तुओं की स्थिति में विक्रेता कम कीमत पर भी पूर्ति के लिए तैयार होगा।

(*iii*) **सामाजिक महानता** वाली वस्तुओं की स्थिति में भी नियम लागू नहीं होगा। इन वस्तुओं की पूर्ति सीमित होती है एवं उनकी कीमत में वृद्धि होने पर भी उनकी पूर्ति सीमित ही रहेगी।

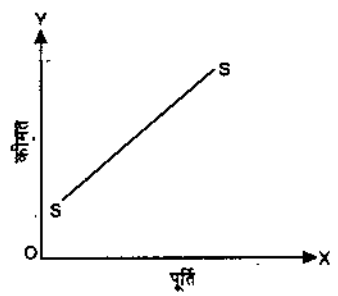

चित्र 2.30 पूर्ति वक्र की स्थिति दर्शा रहा है।

2.27. पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन तथा पूर्ति में परिवर्तन (Change in Quantity Supplied and Change in Supply)

नोट

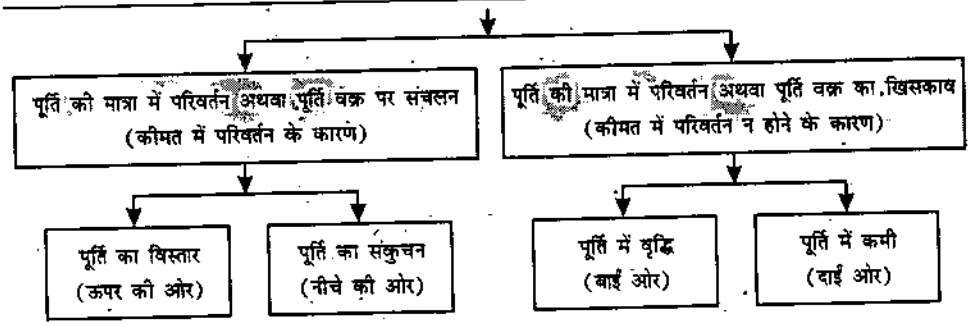

पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन अथवा पूर्ति वक्र का संचलन/संचरण

यदि मूल्य में वृद्धि या कमी के परिणामस्वरूप पूर्ति की मात्रा मे परिवर्तन होता है तो इस स्थिति को पूर्ति का संचरण/संचलन कहते हैं। इस अवस्था में मूल्य के अलावा पूर्ति को प्रभावित करने वाले सभी तत्त्व स्थिति माने जाते हैं। इस स्थिति में पूर्ति वक्र का संचरण (Movement) उसी पूर्ति वक्र पर ऊपर या नीचे की ओर होता है। इस अवस्था में पूर्ति की दो संभावनाएँ होती है–

(*a*) **पूर्ति का विस्तार (Extension of Supply)**–यदि मूल्य में वृद्धि के परिणामस्वरूप वस्तु की पूर्ति में वृद्धि होती है तो इस स्थिति को पूर्ति का विस्तार कहते हैं। मूल्य के अलावा सभी पूर्ति को प्रभावित करने वाले तत्त्व स्थिर होते हैं। हम उसी पूर्ति वक्र पर ऊपर की ओर संचरण करते हैं। इस स्थिति को अग्रलिखित तालिका में प्रदर्शित किया गया है।

(*b*) **पूर्ति का संकुचन (Contraction os Supply)**–यदि मूल्य में कमी के कारण वस्तु की पूर्ति में कमी होती है तो इस स्थिति को पूर्ति का संकुचन कहते हैं। मूल्य के अलावा अन्य पूर्ति को प्रभावति करने वाले साधन स्थिर होते हैं। इस स्थिति में हम उसी पूर्ति वक्र पर ऊपर से नीचे की ओर संचरण करते हैं।

पूर्ति वक्र पर संचरण को निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट किया गया है–

तालिका 2.10. पूर्ति वक्र के संचरण (Movement) की तालिका

	वस्तु का मूल्य	*वस्तु की पूर्ति*	*संचरण (Movement)*
A	10	100	पूर्ति का विस्तार A से B
B	12	150	
C	8	80	पूर्ति का संकुचन A से B

रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन–

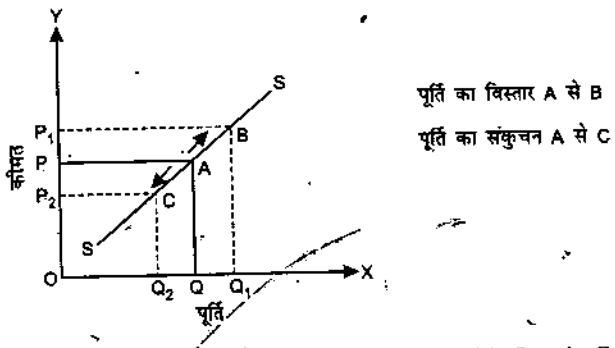

चित्र 2.31 पूर्ति वक्र पर संचरण (Movement alongside Supply Curve)

नोट

पूर्ति में परिवर्तन अथवा पूर्ति वक्र का खिसकाव/स्थानांतरण

यदि वस्तु की पूर्ति में उसके मूल्य के अतिरिक्त अन्य कारणों से परिवर्तन हो तो इसके परिणामस्वरूप पूर्ति में परिवर्तन को पूर्ति में वृद्धि या कमी कहते हैं। पूर्ति में वृद्धि या कमी का प्रदर्शन एक अन्य पूर्ति वक्र बनाकर करते हैं। यही कारण है कि इसे पूर्ति का स्थानांतरण कहते हैं। यह स्थानांतरण मौलिक पूर्ति वक्र के दाहिनी ओर (नीचे) या बाईं ओर ऊपर हो सकता है। पूर्ति के स्थानांतरण के निम्नलिखित दो रूप हो सकते हैं–

(*a*) **पूर्ति में वृद्धि (Increase in Supply)**–यदि मूल्य के अलावा अन्य कारकों में परिवर्तन के कारण पूर्ति में वृद्धि होती है तो इसे पूर्ति की वृद्धि कहते हैं। इस स्थिति में पूर्ति वक्र मौलिक वक्र के दाहिनी ओर अर्थात् नीचे की ओर होता है। मौलिक पूर्ति वक्र के स्थान पर दूसरा पूर्ति वक्र बन जाता है। यही कारण है कि इसे पूर्ति वक्र का स्थानांतरण कहते हैं। तालिका और रेखाचित्र में A से B की स्थिति इसे प्रदर्शित करती है।

पूर्ति में वृद्धि के कारण–

(*i*) उत्पादकों के उद्देश्य में परिवर्तन

(*ii*) स्थानापन्न वस्तुओं के मूल्य में कमी

(*iii*) उत्पादन के साधनों के मूल्य में कमी

(*iv*) तकनीकी में सुधार।

(*b*) **पूर्ति में कमी (Decrease in Supply)**–यदि मूल्य के अलावा अन्य कारकों के प्रभावस्वरूप उसी मूल्य पर वस्तु की कम पूर्ति की जाए तो उसे पूर्ति की कमी कहते हैं। इस अवस्था में पूर्ति वक्र मौलिक पूर्ति वक्र के बाईं ओर या ऊपर की ओर होता है। नये वक्र का निर्माण पूर्ति वक्र का स्थानांतरण होता है। निम्नलिखित तालिका एवं रेखाचित्र में A से C तक की स्थिति माँग की कमी को प्रदर्शित करती है।

पूर्ति में कमी के कारण–

(*i*) उत्पादकों के उद्देश्य में परिवर्तन

(*ii*) स्थानापन्न वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि

(*iii*) उत्पादन के साधनों के मूल्य में वृद्धि

(*iv*) तकनीकी के स्तर में गिरावट।

पूर्ति वक्र के स्थानांतरण को निम्नलिखित तालिका एवं रेखाचित्र से प्रदर्शित किया गया है–

तालिका 2.11. पूर्ति में वृद्धि/कमी की तालिका

	वस्तु का मूल्य (रुपये में)	वस्तु की पूर्ति (इकाइयों में)	परिवर्तन
A	10	100	पूर्ति में वृद्धि A से B
B	10	125	
C	10	80	पूर्ति में कमी A से C

नोट

रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन–

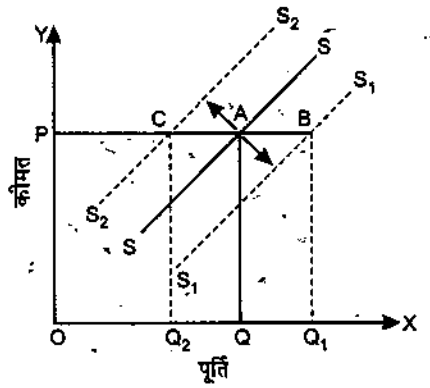

पूर्ति की वृद्धि = SS से S_1S_1 (A से B)

मूल्य—OP

पूर्ति—OQ से OQ_1

पूर्ति में कमी = SS से S_2S_2 (A से C)

मूल्य—OP

पूर्ति—OQ से OQ_2

चित्र 2.32 पूर्ति वक्र का स्थानांतरण (Shift)

इस विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि–

पूर्ति वक्र पर संचरण (Movement) की अवस्था में हम उसी पूर्ति वक्र पर संचरण करते हैं। यह संचरण मूल्य में परिवर्तन के परिणामस्वरूप होता है।

पूर्ति वक्र के स्थानांतरण (Shifting) की अवस्था में मौलिक वक्र के अतिरिक्त अन्य वक्र की स्थापना होती है। यह स्थानांतरण मूल्य के अतिरिक्त पूर्ति प्रभावित करने वाले अन्य कारकों के प्रभावस्वरूप होता है।

पूर्ति में परिवर्तन या पूर्ति वक्र का स्थानांतरण एवं पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन या पूर्ति वक्र का संचलन में अंतर

अंतर के आधार (Points of Difference)	पूर्ति में परिवर्तन (Change in Supply)	पूर्ति की गई मात्रा में परिवर्तन (Change in the quentity Suppled)
1. अर्थ (Meaning)	किसी वस्तु की कीमत को छोड़कर अन्य कारकों में परिवर्तन होने के कारण वस्तु की पूर्ति में होने वाली वृद्धि या कमी को पूर्ति में परिवर्तन या पूर्ति वक्र का स्थानांतरण कहते हैं।	अन्य बातें समान रहने पर किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने के कारण उस वस्तु की पूर्ति में वृद्धि या कमी को पूर्ति की गई मात्रा में परिवर्तन या पूर्ति वक्र का संचलन कहते हैं।
2. वक्र (Curve)		
3. पूर्ति वक्र की स्थिति (Situation of Supply Curve)	इस स्थिति में पूर्ति वक्र स्वयं दाईं या बाईं ओर स्थानांतरण करता है। दाईं ओर स्थानांतरण पूर्ति में वृद्धि प्रदर्शित करता है, जबकि बाईं ओर स्थापनांतरण पूर्ति में कमी प्रदर्शित करता है।	इस स्थिति में पूर्ति वक्र का संचलन ऊपर की ओर तथा नीचे की ओर होता है। ऊपर की ओर स्थानांतरण पूर्ति का विस्तार है, जबकि नीचे की ओर स्थानांतरण पूर्ति का संकुचन है।

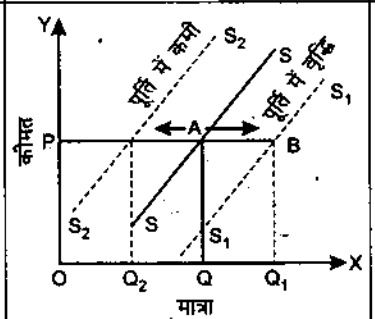

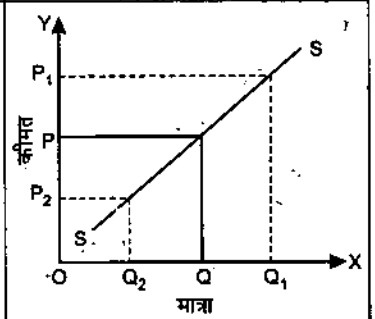

2.28. पूर्ति की लोच (Elasticity of Supply)

नोट

अर्थ (Meaning)

पूर्ति का नियम एक गुणात्मक कथन है, संख्यात्मक नहीं, क्योंकि इसमें यह पता नहीं लगता कि वस्तु की कीमत में परिवर्तन से वसतु की पूर्ति में कितना परिवर्तन होगा? पूर्ति की लोच इन दोनों चर-मूल्यों के सापेक्षिक परिवर्तन का माप करती है। इसे निम्न सूत्र द्वारा लिखा जा सकता है–

$$\text{पूर्ति की लोच (Es)} = \frac{\text{वस्तु की पूर्ति में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{वस्तु की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

$$\text{या} = \frac{\text{वस्तु की पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$\text{या} = \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P}{Q}$$

इस प्रकार कीमत में परिवर्तन से पूर्ति में होने वाले परिवर्तन को पूर्ति की लोच कहते हैं।

परिभाषाएँ (Definitions)

सैम्यूलसन के शब्दों में, "पूर्ति की लोच वस्तु की पूर्ति में उसकी कीमत के साथ परिवर्तन की तीव्रता है।" (Elasticity of supply is the degree of the responsiveness of supply of a commodity to a change in its price)

प्रो० बिलास के अनुसार, "पूर्ति की लोच वस्तु की पूर्ति की गई मात्राओं में प्रतिशत परिवर्तन को कीमत में प्रतिशत परिवर्तन का भागफल है।" (Elasticity of supply is the percentage change in quantities supplied divided by percentage change in price.)

गुणांक (Coefficient) के मूल्य पर निर्भर होकर, हम पूर्ति की लोच से संबंधित पाँच प्रकार की परिस्थितियाँ सोच सकते हैं। इनको पूर्ति की लोच की तीव्रता भी कहा जाता है। यह निम्नलिखित है:

पूर्ति की लोच के प्रकार (Types of elasticity of supply)

(*i*) **पूर्ण बेलोच पूर्ति (Perfectly Inelastic Supply)**–जब किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने से वस्तु की पूर्ति में कोई परिवर्तन नहीं होता तो उस दशा में वस्तु की पूर्ति की लोच शून्य होती है। $E_s = 0$

असाधारण पुस्तकें, टिकटें, सिक्के एवं अन्य वस्तुएँ इसका उदाहरण हैं। निम्नलिखित तालिका व चित्र से इसे स्पष्ट किया गया है–

तालिका 2.12. पूर्णतया बेलोच पूर्ति की स्थिति

प्रति इकाई मूल्य (रुपये में)	वस्तु की पूर्ति (इकाइयाँ)
5,000	100
10,000	100

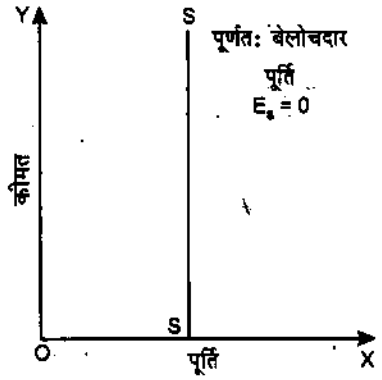

चित्र 2.33

***(ii)* इकाई लोचदार पूर्ति (Unit Elastic Supply)**–जब किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने के सापेक्ष उसकी पूर्ति में उसी अनुपात में परिवर्तन हो तो वस्तु की पूर्ति की लोच एक होता है। इस स्थिति में मूल्य और पूर्ति में परिवर्तन एक ही अनुपात में होता है। उदाहरणस्वरूप मूल्य में 50% का परिवर्तन हो। इसे अग्रलिखित तालिका और रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है–

तालिका 2.13. इकाई के बराबर लोच का प्रदर्शन	
प्रति इकाई मूल्य (रुपये में)	*वस्तु की पूर्ति (इकाइयाँ में)*
40	400
60	600

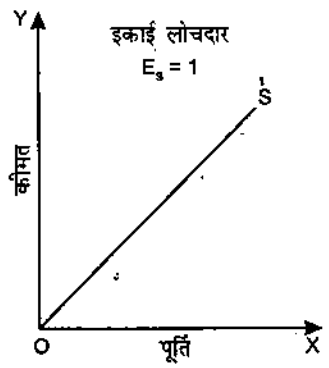

चित्र 2.34

***(iii)* पूर्ण लोचवार पूर्ति (Perfectly Elastic Supply)**–इस अवस्था में किसी विशेष मूल्य पर विक्रेता अनंत मात्रा में वस्तु की पूर्ति कर सकता है परंतु मूल्य में कमी होने पर वस्तु की कोई भी पूर्ति करने को तैयार नहीं है।

यह केवल काल्पनिक विचार है। व्यावहारिक जीवन में इस प्रकार की स्थिति नहीं पाई जाती है। निम्नलिखित तालिका एवं रेखाचित्र से इसे स्पष्ट किया गया है–

तालिका 2.14. पूर्णतया लोचवार पूर्ति को प्रदर्शित करती हुई तालिका	
प्रति इकाई मूल्य (रुपये)	*वस्तु की पूर्ति (इकाइयाँ)*
7	10
7	15

नोट

साथ दिए रेखाचित्र से यह मालूम होता है। कि मूल्य के स्थिति रहने के बाद भी पूर्ति अधिक मात्रा में बढ़ गई है।

जब किसी वस्तु की कीमत में कोई परिवर्तन न हो या बहुत सूक्ष्म परिवर्तन हो और वस्तु की पूर्ति बढ़कर अनंत या घटकर शून्य हो जाए तो वस्तु की पूर्ति को पूर्णत: लोचदार कहते हैं। इस दशा में $E_s = \infty$

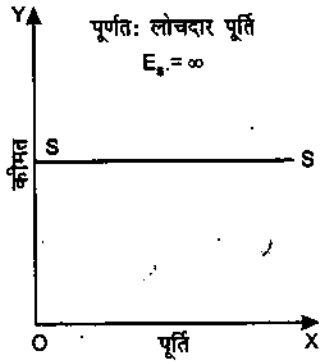

चित्र 2.35

(iv) सापेक्षत: लोचदार या इकाई से अधित पूर्ति (Relatively Elastic or More than Unit Elastic Supply)—जब किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने के सापेक्ष उसकी पूर्ति में अधिक अनुपात में परिवर्तन हो तो वस्तु की पूर्ति की लोच इकाई से अधिक होती है। इसे सापेक्षत: लोचदार पूर्ति कहते हैं। इस स्थिति में पूर्ति की लोच इकाई से अधिक ($E_s > 1$) होती है।

इस अवस्था में मूल्य में होने वाले परिवर्तन की तुलना में पूर्ति में परिवर्तन का प्रतिशत अधिक होता है। उदाहरण के लिए मूल्य में 20% की वृद्धि होने पर पूर्ति में 50% की वृद्धि है। उसे निम्नलिखित तालिका एवं रेखाचित्र से स्पष्ट किया गया है–

तालिका 2.15. सापेक्षत: लोचदार पूर्ति का प्रदर्शन

प्रति इकाई मूल्य (रुपयों में)	*वस्तु की पूर्ति (इकाइयों में)*
20	100
24	150

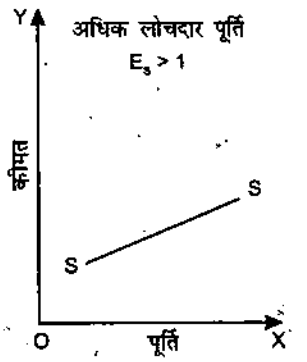

चित्र 2.36

(v) सापेक्षत: बेलोच पूर्ति (Relatively Inelastic or less than Unit Elastic Supply)—जब किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने के सापेक्ष उसकी पूर्ति में कम अनुपात में परिवर्तन

हो तो वस्तु की पूर्ति की लोच इकाई से कम होती है। इसे सापेक्षत: बेलोच पूर्ति कहते हैं। इस स्थिति में मूल्य में होने वाले परिवर्तन के अनुपात में पूर्ति में परिवर्तन कम होता है। उदाहरण के लिए यदि मूल्य में 50% की वृद्धि हो परंतु पूर्ति में केवल 20% की वृद्धि हो। इस स्थिति को निम्नलिखित तालिका व रेखाचित्र से प्रदर्शित किया गया है–

नोट

तालिका 2.16. इकाई से कम लोच की स्थिति का प्रदर्शन	
प्रति इकाई मूल्य (रुपयों में)	*वस्तु की पूर्ति (इकाइयाँ में)*
50	100
75	120

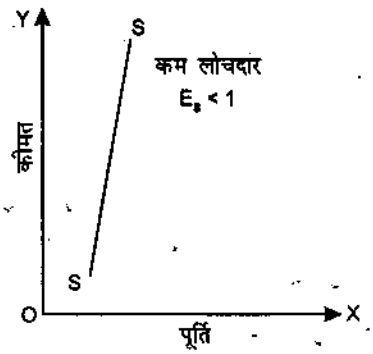

चित्र 2.37

क्रम संख्या	*लोच गुणांक (Coefficient)*	*लोच के प्रकार*	*पूर्ति का कीमत के साथ संबंध*
1.	$E_s = 0$	पूर्णत: बेलोचदार	पूर्ति में परिवर्तन नहीं होता।
2.	$E_s < 1$	बेलोचदार अथवा इकाई लोचदार से कम	कीमत के परिवर्तन की तुलना में पूर्ति में समान परिवर्तन।
3.	$E_s = 1$	इकाई लोचदार	कीमत के प्रतिशत परिवर्तन के साथ पूर्ति में समान परिवर्तन।
4.	$E_s > 1$	इकाई लोचदार से अधिक	पूर्ति में कीमत के परिवर्तन से अधिक प्रतिशत में परिवर्तन।
5.	$E_s = \infty$	पूर्णत: लोचदार	पूर्ति में असीमित वृद्धि अथवा कमी।

पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Elasticity of Supply)

पूर्ति की लोच निम्नलिखित कारकों द्वारा प्रभावित होती है।

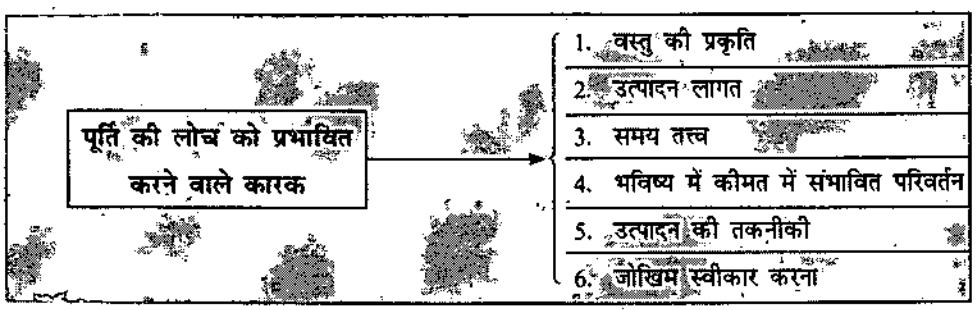

नोट

1. **वस्तु की प्रकृति (Nature of Commodity)**—शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं की पूर्ति बेलोच होती है और टिकाऊ वस्तुओं की पूर्ति लोचदार होती है।
2. **उत्पादन लागत (Cost of Production)**—यदि किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करने से सीमांत लागत बढ़े तो वस्तु की पूर्ति बेलोच होगी और यदि सीमांत लागत घटे तो पूर्ति लोचदार होगी।
3. **समय तत्त्व (Cost of Production)**—समय अवधि जितनी जितनी अधिक होगी, पूर्ति लोचदार होगी और समय अवधि जितनी का होगी, पूर्ति बेलोच होगी।
4. **भविष्य में कीमत में संभावित परिवर्तन (Expected change in future price)**—यदि निर्माता भविष्य में कीमत में वृद्धि की आशा करता है तो वस्तु की पूर्ति बेलोच होगी। वह वर्तमान में वस्तु की पूर्ति घटा देगा, जिससे वह भविष्य में उस वस्तु को ऊँची कीमत पर विक्रय कर सके। यदि निर्माता को वस्तु की कीमत कम होने की आशा होती है, तो वह अधिक से अधिक विक्रय करेगा एवं पूर्ति लोचदार होगी।
5. **उत्पादन की तकनीकी (Technique of production)**—जिन वस्तुओं का उत्पादन सरल तकनीकी द्वारा होता है उनकी पूर्ति लोचदार होती है इसके विपरीत जिन वस्तुओं का उत्पादन उलझी हुई कठिन तकनीकी से होता है उनकी पूर्ति बेलोच होती है।
6. **जोखिम स्वीकार करना (Risk taking)**—यदि उद्यमी अधिक जोखिम लेने को तैयार है तो पूर्ति लोचदार होगी। इसके विपरीत कम जोखिम होने पर पूर्ति बेलोच होगी।

पूर्ति की लोच का मापन

जब हम कीमत में परिवर्तन के कारण वस्तु की पूर्ति की गई मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन का माप करते हैं, तो इसे पूर्ति की लोच कहा जाता है।

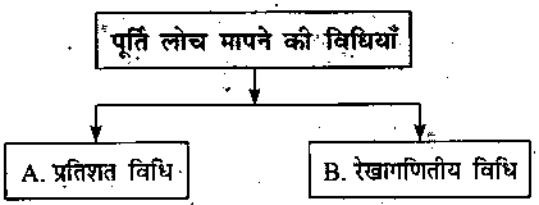

प्रतिशत विधि (Percentage Method)

मापन की विधि—पूर्ति की लोच को निम्नलिखित सूत्र की सहायता से मापा जा सकता है:

$$\text{पूर्ति की लोच } (E_s) = \frac{\text{वस्तु की पूर्ति में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{वस्तु की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}} \text{ अथवा}$$

$$E_s = \frac{\text{वस्तु की पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{वस्तु की कीमत में आनुपतिक परिवर्तन}} \text{ अथवा}$$

$$E_s = \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P}{Q}$$

यहाँ, P = कीमत

Q = पूर्ति की मात्रा

ΔP = वस्तु की कीमत में परिवर्तन

ΔQ = वस्तु की पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन

नोट

रेखागणितीय पद्धति (Geometric Method)

पूर्ति लोच का माप रेखागणितीय सूत्रों द्वारा भी किया जा सकता है। इस गणना को निम्नलिखित चित्र (A), (B) और (C) द्वारा समझाया गया है।

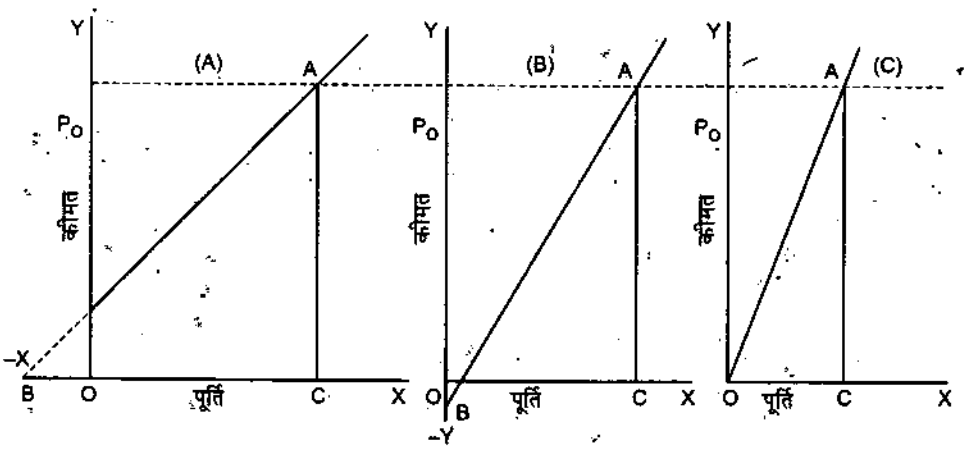

चित्र 2.38

चित्र 2.39

चित्र 2.40

उपरोक्त चित्र तीन सरल रेखा (straight line) वाले पूर्ति वक्र प्रदर्शित करते हैं।

चित्र (A)–पूर्ति वक्र को x-अक्ष की ओर बढ़ाया गया है। यह x-अक्ष को इसके नकारात्मक क्षेत्र बिंदु B पर काटता है।

यहाँ पूर्ति की मूल्य लोच इकाई से अधिक है, क्योंकि $BC > OC$

चित्र (B)–पूर्ति वक्र x-अक्ष को इसके धनात्मक (Positive) क्षेत्र में B बिंदु पर काटता है।

यहाँ पूर्ति की मूल्य लोच इकाई से कम है, क्योंकि $BC < OC$

चित्र (C)–पूर्ति वक्र x-अक्ष को उसके उद्गम (origin) O बिंदु पर काटता है। पूर्ति वक्र की सरल रेखा (straight line) उद्गम से गुजरती है।

यहाँ पूर्ति की मूल्य लोच इकाई के बराबर होगी, क्योंकि $BC = OC$। इससे यह ज्ञात होता है कि कोई भी पूर्ति वक्र चाहे उसका आकार कुछ भी हो यदि उद्गम (origin) से होकर गुजरता है। तो पूर्ति की मूल्य लोच इकाई के बराबर होगी।

सभी तीनों चित्रों में P_0 मौलिक मूल्य है, OC पूर्ति की गई मात्रा है और पूर्ति वक्र पर 'A' बिंदु स्थापित है।

पूर्ति की लोच का मापन (Measurement of Elasticity of Supply)

पूर्ति की लोच के मापन को निम्नलिखित उदाहरणों से और अच्छी तरह समझा जा सकता है।

उदाहरण 1.

कीमत (रुपये) Px	*पूर्ति (इकाइयाँ) Sx*
8	20
6	16

हल– यहाँ

$$\Delta Q = 4, \quad \Delta P = 2$$

$$Q = 20, \quad P = 8$$

$$E_s = \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P}{Q}$$

$$E_s = \frac{4}{2} \times \frac{8}{20} = \frac{4}{5} = 0.8 \text{ (बेलोचदार पूर्ति)}$$

(इकाई से कम लोच)

नोट

उदाहरण 2.

कीमत (रुपये) Px	पूर्ति (इकाइयाँ) Sx
10	20
8	15

हल– यहाँ $\Delta Q = 5, \quad \Delta P = 2$

$Q = 20, \quad P = 10$

$$E_s = \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P}{Q}$$

$$E_s = \frac{5}{2} \times \frac{10}{20} = \frac{5}{4} = 1.25 \text{ (लोचदार पूर्ति)}$$

(इकाई से अधिक लोच)

पूर्ति लोच को निम्नलिखित तरीके से भी मापा जा सकता है:

$$E_s = \frac{\text{पूर्ति में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

इस प्रकार, यदि कीमत 20% घटती है एवं पूर्ति 25% घटती है तो लोच $\frac{25}{20} = 1.25$ होगी।

उदाहरण 3. यदि एक वस्तु की बाज़ार की कीमत 4 रुपये है, एक विक्रेता इसकी 600 इकाइयाँ विक्रय करता है। जब कीमत बढ़कर 5 रुपये हो जाती है तो वह वस्तु की 750 इकाइयाँ विक्रय करता है। विक्रेता की पूर्ति की लोच क्या है?

हल–पूर्ति तालिका

कीमत (रुपये)	पूर्ति (इकाइयाँ)
4	600
5	750

यहाँ $\Delta Q = 750 - 600 = 150, \quad \Delta P = 5 - 4 = 1$

$Q = 600, \quad P = 4$

$$E_s = \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P}{Q}$$

$$E_s = \frac{150}{1} \times \frac{4}{600} = 1 \text{ (इकाई लोच)}$$

उदाहरण 4. निम्नलिखित स्थितियों में पूर्ति की लोच की गणना कीजिए:

(*a*)

कीमत	पूर्ति
50	100
75	150

नोट

(b)	कीमत	पूर्ति
	4	2
	4	4

(c)	कीमत	पूर्ति
	15	100
	20	200

(d)	कीमत	पूर्ति
	1,000	2
	2,000	3

(e)	कीमत	पूर्ति
	4	40
	6	40

हल–

(a) $\Delta Q = 50, \Delta P = 25, P = 50, Q = 100$

$$E_s = \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P}{Q}$$

$$E_s = \frac{50}{25} \times \frac{50}{100} = \frac{2500}{2500} = 1$$ (इकाई लोच)

(b) $\Delta Q = 2, P = 4, \Delta P = 0, Q = 2$

$$E_s = \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P}{Q}$$

$$E_s = \frac{2}{0} \times \frac{4}{2} = \infty$$ (पूर्णतया लोचदार)

(c) $\Delta Q = 100, P = 15, \Delta P = 5, Q = 100$

$$E_s = \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P}{Q}$$

$$E_s = \frac{100}{5} \times \frac{15}{100} = 3$$ (इकाई से अधिक लोच)

(d) $\Delta Q = 1, P = 1000, Q = 2, \Delta P = 1,000$

$$E_s = \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P}{Q}$$

$$E_s = \frac{1}{1,000} \times \frac{1,000}{2} = \frac{1}{2} = 10.5$$ (इकाई से कम लोचदार)

(e) $\Delta Q = 0, P = 4, \Delta P = 2, Q = 40$

$$E_s = \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P}{Q}$$

$$= \frac{0}{2} \times \frac{4}{40} = 0$$ (पूर्णत: बेलोच पूर्ति)

नोट

उदाहरण 5. एक वस्तु की पूर्ति 12 रुपये प्रति इकाई पर 1,200 इकाइयाँ थी। यदि वस्तु की पूर्ति बढ़कर 1,600 इकाई हो जाए तो, पूर्ति लोच 2 होने की स्थिति में वस्तु की नई कीमत क्या होगी?

हल–

कीमत (रुपये)	पूर्ति (इकाइयाँ)
12	1,200
?	1,600

$$E_s = \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P}{Q} = 2$$

$$2 = \frac{400}{\Delta P} \times \frac{12}{1200}$$

$$2 = \frac{4}{\Delta P}$$

$$2\Delta P = 4$$

$$\Delta P = \frac{4}{2} = 2$$

नई कीमत = 12 + 2 = 14 रुपये

वैकल्पिक रूप से

पूर्ति में आनुपातिक (Proportionate) परिवर्तन $\frac{400}{1,200} = \frac{1}{3}$

यदि पूर्ति की लोच 2 है तो पूर्ति में आनुपातिक (Proportionate) परिवर्तन कीमत में परिवर्तन का दोगुना होगा। दूसरे शब्दों में कीमत में आनुपातिक (proportionate) परिवर्तन पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन का आधा होगा जैसा कि पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन $\frac{1}{3}$ है; कीमत में आनुपातिक परिवर्तन $\frac{1}{3} \times \frac{1}{2}$ $= \frac{1}{6} = 2$ होगा। इसलिए कीमत में परिवर्तन $= 12 \times \frac{1}{6} = 2$ अब नई कीमत $12 + 2 = 14$ रुपये।

उदाहरण 6. एक वस्तु की पूर्ति 12 रुपये प्रति इकाई पर 800 इकाइयाँ हैं। यदि कीमत बढ़कर 14 प्रति इकाई हो जाए एवं पूर्ति की लोच 1.2 हो तो वस्तु की नई पूर्ति क्या होगी?

हल– पूर्ति की लोच $E_s = \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P}{Q} = 1.2$

कीमत (रुपये)	पूर्ति (इकाई)
12	800
14	?

$$1.2 = \frac{\Delta Q}{2} \times \frac{12}{800}$$

नोट

$$1.2 = \frac{3\Delta P}{400}$$

$$1.2 \times 400 = 3\Delta Q$$

$$480 = 3\Delta Q$$

$$\Delta Q = \frac{480}{3} = 160$$

वस्तु की नई पूर्ति = 800 + 160 = 960 इकाइयाँ

वैकल्पिक रूप से (Alternatively)

कीमत में आनुपातिक (Proportionate) परिवर्तन $= \frac{2}{12} = \frac{1}{6}$ क्योंकि पूर्ति की लोच 1.2 है, पूर्ति में आनुपातिक (proportionate) परिवर्तन कीमत में आनुपातिक (proportionate) परिवर्तन से 1.2 बार अधिक होगा। कीमत में आनुपातिक परिवर्तन $\frac{1}{6}$ है, इसलिए पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन $\frac{1}{6} \times 1.2$ = 02 बार होगा।

इस प्रकार नई पूर्ति = 800 + (800 × 0.2)

= 800 + 160 = 960 (इकाइयाँ)

पूर्ति की लोच का महत्त्व (Importance of Elasticity of Supply)

पूर्ति की लोच निम्नलिखित क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण है।

1. **साधन कीमत निर्धारण (Factor Pricing)**—किराए के आधुनिक सिद्धांत के अनुसार साधन (उत्पाद का साधन) किराया उस समय कमाता है, जबकि उस साधन की पूर्ति बेलोचदार हो जाती है। जब साधन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार हो जाती है तो, वह कोई किराया प्राप्त नहीं करता है। यही कारण है कि भूमि से पूर्ण प्राप्त आय किराया है, क्योंकि यह पूर्णतया बेलोचदार होती है। लघु अवधि में पूँजी द्वारा प्राप्त अतिरिक्त आय को (Quasi) किराया कहा जाता है। इस तथ्य के कारण लघु अवधि में पूँजी की पूर्ति बेलोचदार हो जाती है।
2. **कीमत निर्धारित करना (Price Determination)**—पूर्ति की लोच कीमत निर्धारण का एक तत्त्व है। पूर्ति दीर्घ अवधि में कीमत निश्चित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, क्योंकि दीर्घ-अवधि में पूर्ति लोचदार हो जाती है। लघु अवधि में पूर्ति कीमत निश्चित करने में कम (Subdued) भूमिका अदा करती है, क्योंकि पूर्ति बेलोचदार होती है।

पाइ के महत्त्व पूर्ण चित्रों की उनकी विशेषताओं के साथ एक झलक

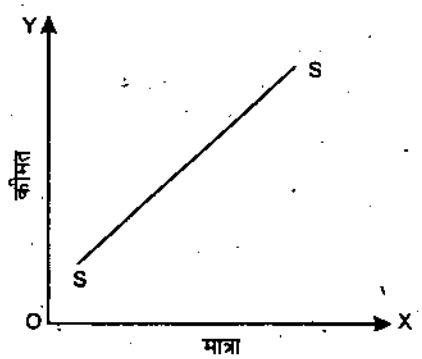

चित्र 2.41 व्यक्तिगत पूर्ति दर्शा रहा है।

नोट

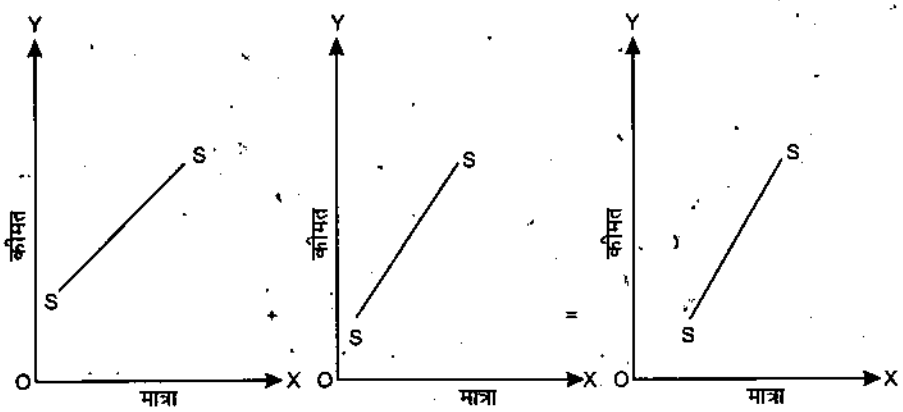

चित्र 2.42 बाज़ार पूर्ति दर्शा रहा है।

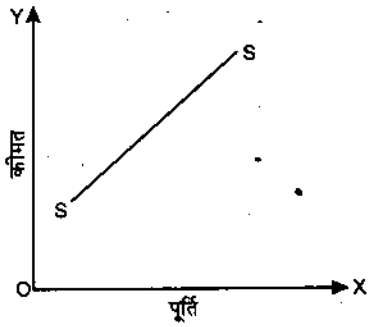

चित्र 2.43 पूर्ति वक्र की स्थिति को दर्शा रहा है।

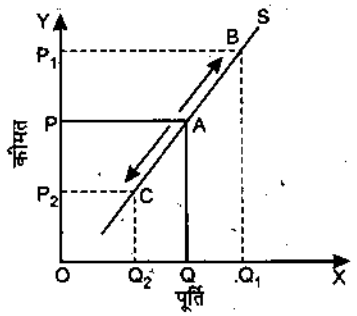

चित्र 2.44 पूर्ति का विस्तार A से B पूर्ति का संकुलचन A से C दर्शा रहा है।

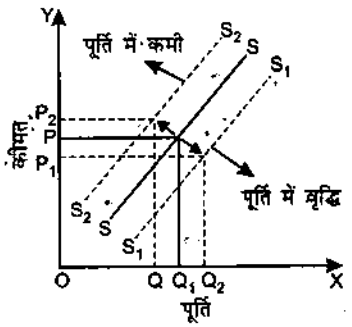

चित्र 2.45 पूर्ति में वृद्धि एवं कमी दर्शा रहा है।

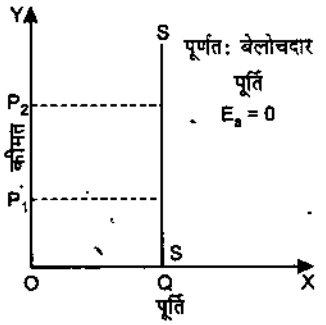

चित्र 2.46 बेलोचदार पूर्ति दर्शा रहा है।

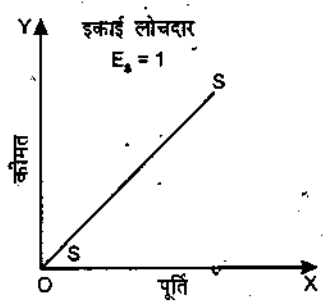

चित्र 2.47 इकाई लोच पूर्ति दर्शा रहा है।

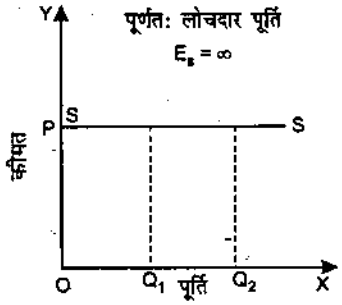

चित्र 2.48 पूर्णत: लोचदार पूर्ति दर्शा रहा है।

नोट

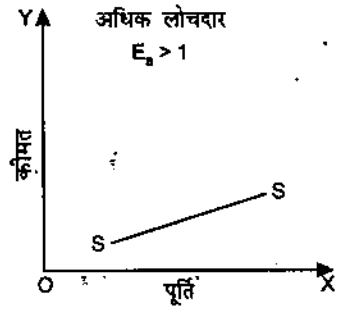

चित्र 2.49 इकाई से अधिक लोच

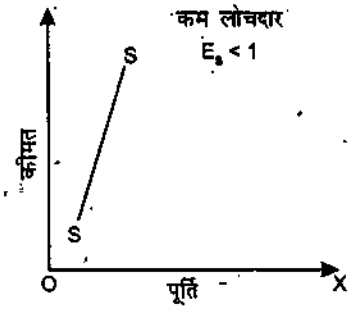

चित्र 2.50 इकाई से कम लोच

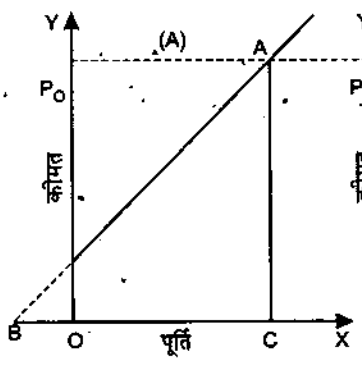

चित्र 2.51

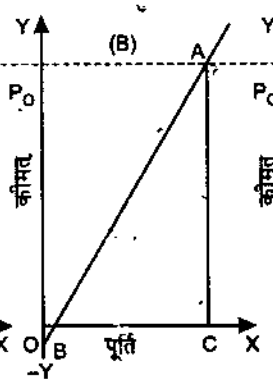

चित्र 2.52

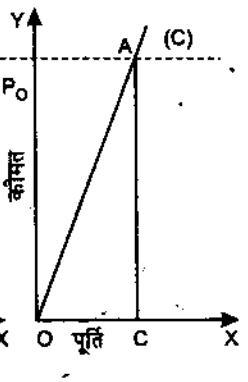

चित्र 2.53

2.29. उपभोक्ता की बचत की व्याख्या

उपभोक्ता के बचत सिद्धान्त की व्याख्या दो रूपों में की जा सकती है–

(क) वस्तु की उपयोगिता के संख्यात्मक माप पर आधारित मार्शल का दृष्टिकोण

(ख) वस्तु की उपयोगिता के क्रम वाचक माप पर आधारित हिक्स का दृष्टिकोण

(क) वस्तु की उपयोगिता के संख्यात्मक माप पर आधारित मार्शल का दृष्टिकोण: मार्शल ने उपभोक्ता की बचत के सिद्धांत का प्रतिपादन दैनिक जीवन में होने वाले इस अनुभव पर किया कि प्राय: जब हमें किसी वस्तु के उपभोग की अत्यन्त तीव्र इच्छा रहती है अथवा जब कोई वस्तु कम मात्रा में उपलब्ध रहती है तो हम उस वस्तु को क्रय करने के लिए उससे अधिक पैसा खर्च करने के लिए तत्पर हो जाते हैं जितने मूल्य में वह वस्तु हमें मिल जाती है इन दोनों का अन्तर ही उपभोक्ता की बचत है।

मार्शल ने उपभोक्ता की बचत की परिभाषा इस प्रकार की है: "किसी वस्तु को बिना प्राप्त किये हुए रहने की अपेक्षा वह मूल्य, जो एक व्यक्ति उस वस्तु के लिए देने के लिए तैयार रहता है और जो मूल्य वह वास्तव में देता है, उन दोनों का अन्तर ही उपभोक्ता की बचत कहलाती है।" ("The excess of price which a person would be willing to pay, rather than go without the thing over that which he actually does pay, is the economic measure of this surplus of satisfaction. If may be called consumer's surplus" Marshall.) अर्थात् "उस मूल्य की, जिसे उपभोक्ता किसी वस्तु को खरीदने के लिए देने के लिए तैयार हुआ होता तथा उस मूल्य, जिसे उपभोक्ता वास्तव में वस्तु को प्राप्त करने के लिए देता है, की बेशी (अन्तर) उपभोक्ता को प्राप्त हुए अतिरिक्त संतोष की आर्थिक माप है। इसे उपभोक्ता की बचत का नाम दिया जा सकता है।" मान लीजिए आपको बहुत तेज प्यास लगी है और आप एक गिलास पानी के लिए 5 रुपये तक देने के लिए तैयार हैं, पर उसी समय यदि एक गिलास पानी केवल

50 पैसे में मिल जाय तो 5 रुपया जो आप देने के लिए तैयार थे तथा 50 पैसा जो आप वास्तव में देते हैं, इन दोनों का अन्तर 4.50 रुपया, उपभोक्ता की बचत कहलायेगी।

नोट

उपभोक्ता बचत की धारणा सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम पर आधारित है। हम जानते हैं कि किसी वस्तु का स्टॉक हमारे पास जितना ही कम होगा, हम उस वस्तु को प्राप्त करने के लिए अधिक देने के लिए तैयार होंगे क्योंकि वस्तु की वह इकाई हमारे लिए उतनी ही अधिक उपयोगी होगी और जैसे-जैसे हम किसी वस्तु को अधिक प्राप्त करते जायेंगे, उसकी सीमान्त उपयोगिता घटती जायेगी। किसी वस्तु के बाजार मूल्य पर उस वस्तु की उपयोगिता का आधिक्य ही उपभोक्ता की बचत है अर्थात् कोई भी उपभोक्ता किसी वस्तु के लिए जितना मूल्य देने को तत्पर होगा वह उस वस्तु से मिलने वाल उपयोगिता के बराबर होगा क्योंकि कोई भी व्यक्ति किसी भी वस्तु के बदले उससे मिलने वाली उपयोगिता से अधिक देने को तैयार नहीं होगा और दूसरी ओर वास्तव में जो मूल्य वहउस वस्तु के लिए देता है, वही उस वस्तु को प्राप्त करने के लिए उसका त्याग हुआ। अत: यह कहा जा सकता है कि किसी वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता तथा उस वस्तु को प्राप्त करने के लिए त्यागी गई उपयोगिता का अन्तर ही उपभोक्ता की बचत है। सूत्र रूप में–

(क) उपभोक्ता की बचत (उपयोगिता के रूप में) = वस्तु से मिलने वाली कुल उपयोगिता-उस वस्तु पर व्यय किये हुए द्रव्य के रूप में कुल उपयोगिता का त्याग।

(ख) उपभोक्ता की बचत (द्रव्य के रूप में) = द्रव्य की वह मात्रा जो उपभोक्ता देने के लिए तत्पर है–वस्तु के क्रय पर खर्च की द्रव्य की कुल मात्रा।

(ग) उपभोक्ता की बचत = सीमान्त उपयोगिता का योग-(खरीदी गई वस्तुओं की संख्या × कीमत)
उपभोक्ता की बचत हमेशा धनात्मक होगी, कभी ऋणात्मक नहीं क्योंकि उपयोगिता से अधिक मूल्य वह देगा ही नहीं।

उपभोक्ता की बचत का रेखाचित्रीय प्रदर्शन

(क) उपयोगिता के रूप में: उपयोगिता के रूप में उपभोक्ता की बचत की धारणा को रेखाचित्र 2.54 में प्रदर्शित किया गया हैं रेखाचित्र में प्रत्येक इकाई से प्राप्त उपयोगिता विभिन्न आयतों के रूप में व्यक्त है। कुल उपयोगिता O A B C D E F G H J K क्षेत्र तथा त्यागी गयी उपयोगिता गैर छायांकित भाग के रूप में प्रदर्शित है। दोनों का अन्तर उपभोक्ता की बचत है जो छायांकित भाग के रूप में प्रदर्शित है।

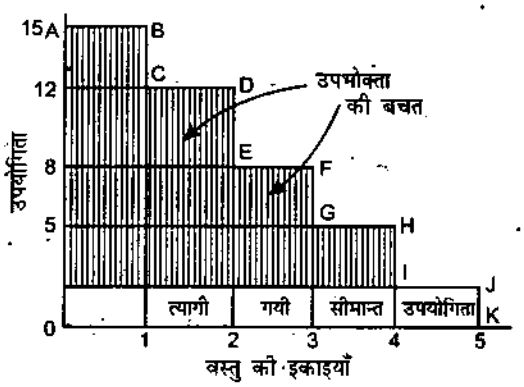

चित्र 2.54

(ख) मुद्रा के रूप में उपभोक्ता की बचत: मुद्रा के रूप में उपभोक्ता की बचत की माप को रेखाचित्र 2.55 में प्रदर्शित किया गया है। रेखाचित्र में खींची गयी DD रेखा वस्तु की विभिन्न इकाइयों से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता पर आधारित 'व्यय की तत्परता' प्रदर्शित करती हैं चूँकि विभिन्न इकाइयों से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता गिरती हुई होती है, इसलिए यह नीचे गिरती हुई है। इस रेखा के विभिन्न बिन्दु यह प्रदर्शित करते है कि किसी वस्तु की विभिन्न

नोट

इकाइयों के लिए कोई उपभोक्ता जितना मूल्य देने के लिए तैयार है। DD रेखा से स्पष्ट है जब x की कोई इकाई उसके पास नहीं है उस समय x_1 मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता OD है और इसलिए मुद्रा के रूप में इस इकाई के लिए वह OD देने के लिए तैयार है। अब यदि हम आरेखीय प्रदर्शन के लिए बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता मान लें अर्थात् यह मान ले कि एक दिए हुए मूल्य पर उपभोक्ता वस्तु की जितनी मात्रा चाहे क्रय कर सकता है और यह मान लें कि बाजार में x का प्रचलित मूल्य प्रति इकाई OP है तो उपभोक्ता को OB – OP = DD उपभोक्ता की बचत प्राप्त होगी।

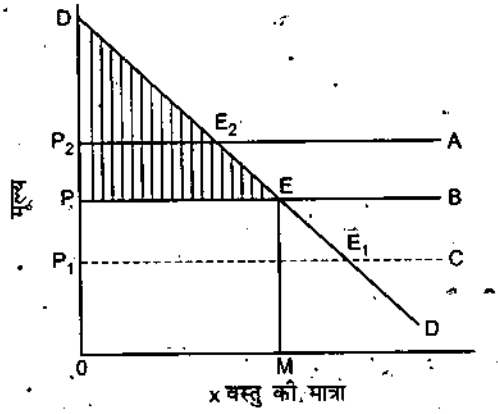

चित्र 2.55

वस्तु की दूसरी इकाई अब कम सीमान्त उपयोगिता देगी, इसलिए उसके लिए व्यय की तत्परता भी कम होगी। इसी प्रकार जैसे-जैसे वह X की अधिक इकाई प्राप्त करता जायेगी उसकी सीमान्त उपयोगिता तथा फलस्वरूप उसे प्राप्त करने की व्यय की तत्परता कम होती जायेगी, जैसा गिरते हुए DD से प्रदर्शित है। मूल्य के OP पर स्थिर रहने के कारण DD लम्बीय दूरी से प्रदर्शित है, क्रमशः कम होती गयी है। यदि हम देखें तो पायेंगे कि यह वह लम्बीय दूरी, जो हर एक इकाई पर उपभोक्ता को प्राप्त होने वाली उपभोक्ता की बचत प्रदर्शित करती है, घटती हुई OM इकाई पर OP मूल्य के बराबर हो जाती है अर्थात् वस्तु की सीमान्त उपयोगिता मूल्य के बराबर है, उपभोक्ता की बचत शून्य है। इस प्रकार OM वस्तुओं के क्रय पर सीमान्त उपयोगिता का योग या कुल उपयोगिता या व्यय की तत्परता = ODEM कुल व्यय या OP × OM = OPEM

उपभोक्ता की बचत = ODEM – OPEM = DPE

चूँकि उपभोक्ता की बचत मूल्य के ऊपर निर्भर करती है, इसलिए उपभोक्ता की बचत मूल्य के परिवर्तन के अनुसार परिवर्तित होगी। यदि मूल्य घटकर OP_1 हो जाय तो उपभोक्ता की बचत बढ़कर $DP_1 E_1$ तथा यदि मूल्य बढ़कर OP_2 हो जाये तो उपभोक्ता की बचत घटकर $DD_2 E_1$ हो जायेगी।

सिद्धान्त की आलोचनायें

इस सिद्धान्त की प्रायः जो आलोचनायें मिलती हैं उनमें से कुछ तो ऐसी हैं जो यह मानती हैं कि यह एक सैद्धान्तिक सत्य नहीं है। इस सिद्धान्त की आलोचनाओं का अध्ययन निम्नांकित शीर्षकों के रूप में किया जा सकता है।

1. वस्तु की उपयोगिता का माप सम्भव नहीं मार्शल द्वारा प्रतिपादित उपभोक्ता की बचत-सिद्धान्त की नींव ही इस मान्यता पर खड़ी है कि वस्तु की उपयोगिता को नापा जा सकता है। पर वस्तुस्थिति यह है कि उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक विचार है। इसे मुद्रा के द्वारा नापना सर्वथा असम्भव है।
2. द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता बदलती रहती है: उपयोगिता की बचत को नापते समय मार्शल ने

यह मान लिया कि द्रव्य से मिलने वाली उपयोगिता में सम्पूर्ण विनिमय-क्रिया की अवधि में कोई परिवर्तन नहीं होगा। पर यह मान्यता ठीक नहीं क्योंकि जैसे-जैसे किसी वस्तु का क्रय बढ़ता जाता है, उपभोक्ता के पास मुद्रा की मात्रा कम होती जाती है। परिणामस्वरूप मुद्रा की उपयोगिता क्रमशः बढ़ती जाती है।

नोट

3. स्थानपन्न वस्तुओं के कारण कठिनाई: मार्शल ने यह भी मान्यता रक्खी कि वस्तुयें प्रतिस्थापित नहीं की जा सकतीं पर व्यावहारिक जीवन में ऐसा मिलता नहीं। इन वस्तुओं के कारण उपभोक्ता पर मूल्य में होने वाले परिवर्तन के प्रभाव का अध्ययन ठीक-ठीक नहीं हो पाता। इस प्रकार उपभोक्ता की बचत की ठीक-ठीक माप सम्भव नहीं है।
4. माँग की सारिणी का अनिश्चित होना: उपभोक्ता की बचत का अनुमान माँग-रेखा के द्वारा ही किया जाता है। इस प्रकार यह आवश्यक है कि माँग की सारिणी निश्चित हो। आलोचकों का यह कहना है कि माँग की सारिणी केवल काल्पनिक होती है तथा इसके सम्बन्ध में अनुमान लगना सम्भव नहीं है।
5. उपभोक्ताओं की आय तथा रुचियों में भिन्नता: आलोचकों का यह भी कहना है कि विभिन्न उपभोक्ताओं की आय तथा रुचियों में भिन्नता होती है जिसके कारण एक ही वस्तु की उपयोगिता भिन्न-भिन्न हुआ करती है।
6. जीवन रक्षक, परम्परागत तथा प्रतिष्ठात्मक वस्तुओं के सम्बन्ध में उपभोक्ता की बचत का माप सम्भव नहीं इस प्रकार की वस्तुओं की उपयोगिता अमापनीय होती है।
7. उपभोक्ता की बचत परिवर्तित होती रहती है: कुछ आलोचकों का यह मत है कि उपभोक्ता की बचत बाज़ार-मूल्य पर आधरित है पर बाजार-मूल्य में बहुत अधिक परिवर्तन होता रहता है।
8. वस्तुओं के क्रय की वृद्धि के साथ-साथ पहले क्रय की गई इकाइयों की उपयोगिता में कमी: पैटन का कहना है कि जैसे-जैसे वस्तुओं की मात्रा उपभोक्ता के पास बढ़ती जायेगी वैसे-वैसे पहले क्रय की गई वस्तुओं की उपयोगिता में कमी होती जायेगी।
9. काल्पनिक तथा अव्यावहारिक विचार: निकोलसन ने इस सिद्धान्त को एक काल्पनिक तथा अव्यावहारिक सिद्धान्त कहा। उनके मत में यह सिद्धान्त एक कोरी कल्पना है तथा व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित नहीं है।

सेमुलसन के अनुसार "उपभोक्ता की बचत का महत्त्व सैद्धान्तिक एवं ऐतिहासिक है और गणित की पहेली के समान कुछ आकर्षक है।" श्रीमती जोन रॉबिन्सन ने इसे 'उपयोगिताहन बेकार धरणा' कहा है। पर विभिन्न आलोचनाओं के बावजूद भी प्रो. पीगू ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया।

उपभोक्ता की बचत सिद्धान्त का आधुनिक रूप

अनधिमान वक्र द्वारा उपभोक्ता की बचत की माप: आधुनिक अर्थशास्त्री हिक्स अनधिमान वक्र के माध्यम से इसे व्यक्त करने का दूसरा ढंग स्पष्ट किया तथा मार्शल के तरीके में व्याप्त दोषों को दूर करने का प्रयास किया। पर जहाँ तथा उपभोक्ता की बचत के मौलिक विचार अथवा परिभाषा का प्रश्न है, दोनों में कोई भिन्नता नहीं है। हिक्स के अनुसार उपभोक्ता की बचत की माप उसकी आय की बचत के रूप में करना चाहिये। अनधिमान-वक्र के माध्यम से उपभोक्ता की बचत की परिभाषा देते हुए प्रो. हिक्स ने इस प्रकार कहा–"उपभोक्ता की बचत मुद्रा की वह मात्रा है जो उसकी आर्थिक दशा में कुछ परिवर्तन के बाद या तो उपभोक्ता को दी जानी चाहिये अथवा उससे ले ली जानी चाहिये जिससे उपभोक्ता या तो ऊपर उठ जाये अथवा नीचे आ जाये तथा उसी अनधिमान-वक्र पर बना रहे जिस पर वह इस प्रकार के परिवर्तन के पहले था।"

(क) मुद्रा के रूप में उपभोक्ता की माप: दिये रेखाचित्र 2.56 में OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा OY पर मुद्रा की मात्रा प्रदर्शित है। इस रेखाचित्र में IC_1 मुद्रा (Y) तथा वस्तु (X) के

उन संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है। यदि उपभोक्ता वस्तु की ON मात्र खरीदना चाहता है तो वह IC_1 वक्र पर T बिन्दु पर होगा, यह T बिन्दु यह प्रदर्शित करता है कि उपभोक्ता ON वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए PF या TK मुद्रा देने को तैयार है।

नोट

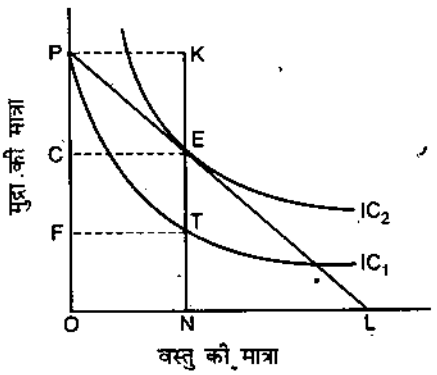

चित्र 2.56

उपभोक्ता की बचत को ज्ञात करने के लिए अब हमें यह जानना है उसे वास्तव में कितना देना पड़ता है। रेखाचित्र में PL बजट रेखा प्रदर्शित है। यह IC_2 वक्र को E बिन्दु पर स्पर्श करती है। इस रेखा का ढाल वस्तु की प्रति इकाई मूल्य प्रदर्शित करता है। अब यदि दिये गये रेखाचित्र में उपभोक्ता ON वस्तुयें खरीदना चाहे तो मूल्य-रेखा के आधार पर उसकी संस्थिति IC_2 वक्र के E बिन्दु पर होगी। वह ON वस्तुओं के लिए ON मुद्रा देगा। स्पष्ट है कि पहले वह PF देने के लिए तत्पर था अब उसे केवल PC देना पड़ रहा है। अत: PF – PC = CF मुद्रा के रूप में उपभोक्ता की बचत हुई।

यहाँ एक बात और सामने आती है, और वह यह कि मूल्य के ज्ञान के अभाव में वह IC_1 पर है जबकि मूल्य के ज्ञान के बाद IC_2 पर हैं. IC_2 का सन्तुष्टि का स्तर निश्चत ही IC_1 के संतुष्टि के स्तर से अधिक हैं दोनों के सन्तुष्टि के स्तरों के बीच का अन्तर उपभोक्ता की बचत है।

(ख) वस्तु के रूप में उपभोक्ता की बचत की माप: रेखाचित्र 2.57 में आधार अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा लम्ब अक्ष पर मुद्रा की मात्रा प्रदर्शित है। उपभोक्ता AC मुद्रा व्यय करना चाहता है तथा वह IC_1 के D बिन्दु पर है जिस पर वह AC मुद्रा के बदले OM वस्तुओं प्राप्त कर सकने को सोचता है। पर जब वह बाजार में जाता है तब उसे AB मूल्य-रेखा ज्ञात होती है। ऐसी परिस्थिति में वह AC मुद्रा से IC_2 वक्र के E बिन्दु पर होगा अर्थात् अब जहाँ वह AC से OM वस्तुयें खरीदने को तत्पर था अब उसे बाजार में ON वस्तुओं मिल जाती हैं। फलस्वरूप ON – OM = MN वस्तु के रूप में उपभोक्ता की बचत हुई।

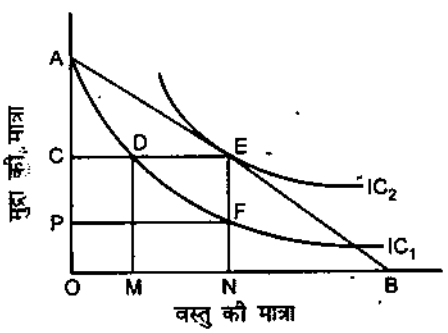

चित्र 2.57

नोट

मूल्य तथा आय में परिवर्तनों का उपभोक्ता की बचत पर प्रभाव

वस्तु के मूल्य तथा आय में परिवर्तन का क्या प्रभाव उपभोक्ता की बचत पर पड़ता है इसे निम्नांकित रूप में व्यक्त किया जा सकता है।

(क) मूल्य में कमी पर आय स्थिर रहे: रेखाचित्र 2.58 में आधार अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा लम्ब अक्ष पर आय की मात्रा प्रदर्शित है। मूल मूल्य-रेखा ST है तथा उपभोक्ता I_2 वक्र के E_2 बिन्दु पर है तथा उपभोक्ता की बचत $E_1 E_2$ या $Y_1 Y_2$ है। यदि मूल्य गिर जाये जैसा ST_1 मूल्य-रेखा से स्पष्ट है तो उपभोक्ता अब उसी आय से अधिक वस्तुयें क्रय कर सकेगा। फलस्वरूप वह I_3 वक्र के E_3 बिन्दु पर है। फलस्वरूप अब उपभोक्ता की बचत बढ़कर $E_1 E_3$ या $Y_1 Y_2$ हो जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि जैसे-जैसे मूल्य में कमी होती जायेगी, उपभोक्ता की बचत में वृद्धि होती जोयगी। इसी प्रकार यह भी प्रदर्शित किया जाता सकता है कि जैसे-जैसे मूल्य में वृद्धि होती जोयगी उपभोक्ता की बचत में कमी होती जायेगी। रेखाचित्र 2.58 में यदि हम ST_1 को मूल मूल्य रेखा मान लें तथा ST बढ़ा हुआ मूल्य प्रदर्शित करे तो देखा जा सकता है कि मूल्य रेखा ST होते ही उपभोक्ता की बचत कम हो जायेगी।

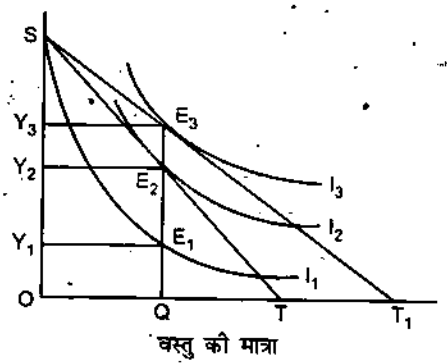

चित्र 2.58

(ख) आय में वृद्धि पर वस्तु का मूल्य यथास्थिर रहे: रेखाचित्र 2.59 में आधार अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा लम्ब अक्ष पर मुद्रा के रूप में आय प्रदर्शित है। मूल अवस्था में उसकी आय OS है। वह ST मूल्य-रेखा पर है जो IC_2 के E_2 बिन्दु पर स्पर्श करती है। उपभोक्ता की बचत $E_1 E_2$ है। पर यदि उसकी आय OS से बढ़कर OS_1 हो जाये तो नयी मूल्य-रेखा $S_1 T_1$ होगी जो ST के समानान्तर है तथा यह प्रदर्शित करती है कि वस्तु का मूल्य यथास्थिर है। आय में वृद्धि होने के कारण, अब उसके लिए IC_1 वक्र बेकार हो जाता है और अब वह

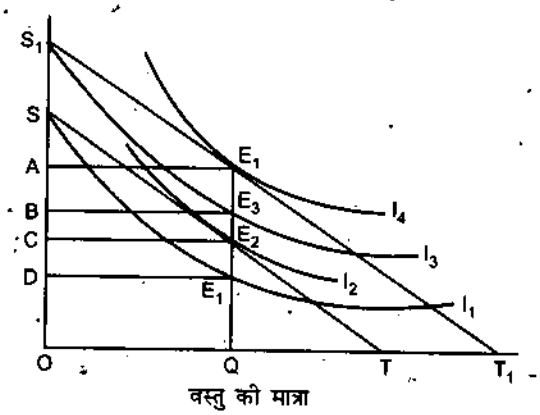

चित्र 2.59

IC_3 के आधार पर अपनी उपभोक्ता की बचत का विश्लेषण करता है। आय में वृद्धि के कारण अब वह IC_4 के E_4 पर होगा तथा उपभोक्ता की बचत अब $E_3 E_4$ होगी। यह $E_3 E_4$ बचत पहली बचत $E_1 E_3$ से अधिक होगी, कम अथवा बराबर होगी, यह सब IC_1 तथा IC_2 के ढाल पर निर्भर करेगा।

नोट

उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त का महत्व

अनेक अर्थशास्त्रियों ने उपभोक्ता के बचत-सिद्धान्त की आलोचना की। निकोलसन की आपत्ति का प्रत्युत्तर देते समय मार्शल द्वारा दिये गये नि उदाहरणों की चर्चा की गई है उससे इस सिद्धान्त के व्यावहारिक महत्व की झलक मिलती है। प्रो० टामस के अनुसार उपभोक्ता की बचत का विचार वास्तविकाता से सम्बन्ध रखता है यद्यपि इसको मापने की पद्धति नितान्त काल्पनिक है, पर हम इसका अनुभव प्रतिदिन के संसार में करते हैं। विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त के महत्त्व का अध्ययन दिया जा सकता है:

(क) **सैद्धान्तिक महत्व:** इस सिद्धान्त का सैद्धान्तिक महत्व यह है कि इसके द्वारा किसी वस्तु के उपयोग-मूल्य तथा विनियम-मूल्य का अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

(ख) व्यावहारिक महत्व: उपभोक्ता की बचत का व्यावहारिक महत्व उसके सैद्धान्तिक महत्व की अपेक्षा बहुत अधिक है। इस सिद्धान्त का प्रयोग अनेक आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिये किया जा सकता है जो इस प्रकार हैं–

(i) **विभिन्न देशों तथा स्थानों और भिन्न-भिन्न समयों की आर्थिक स्थितियों की तुलना:** इस सिद्धान्त की सहातया से सरलतापूर्वक की जा सकती है। उपभोक्ता की बचत के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि किस देश में आर्थिक विकास अधिक है तथा किसमें कम, किस जह जीवन-स्तर नीचा है तथा किस जगह ऊँचा। जो देश आर्थिक दृष्टि से अधिक उन्नत होगा, जहाँ सुविधाबें अधिक होंगी वहाँ दूसरे देश की अपेक्षा जिसमें सुविधायें न हों, समान आय से अधिक उपभोक्ता की बचत प्राप्त होगी।

(ii) **राजस्व तथा आर्थिक नीति के निर्धारण में महत्त्व:** राजस्व के क्षेत्र में इस सिद्धान्त का प्रयोग कर नीति के निर्धारण तथा विभिन्न उद्योगों को दिये जाने वाले अनुदानों के सम्बन्ध से किया जा सकता है। सरकार को कर लगाते समय इस दिशा में दो बातों पर ध्यान देना चाहिए पहली बात यह है कि उन्हीं वस्तुओं पर कर लगाया जाय जिनसे उपभोक्ता की बचत मिल रही हो जिससे कर के कारण मूल्य की वृद्धि के बाद भी उपभोक्ता का आकर्षण उस वस्तु में बना रहे। दूसरी बात यह है कि सरकार को उन्हीं वस्तुओं पर कर लगाना चाहिए जिन पर कर के कारण होने वाले उपभोक्ता की बवचत के त्याग से अधिक आय सरकार को मिले। तभी सामाजिक कयाण अधिकतम होगा।

(iii) **एकाधिकार के मूल्य-निर्धारण में सहायक:** मूल्य-निर्धारण करते समय एकाधिकारी वही मूल्य रखता है जिससे उसका लाभ अधिकतम हो। मूल्य निश्चित करते समय उस वस्तु से मिलने वाली उपभोक्ता की बचत का ध्या रखना चाहिये। उसे मूल्य ऐसा रखना चाहिये जिसमें उपभोक्ता का कुछ-न-कुछ उपभोक्ता की बचत मिलती रहे जिससे वह उस वस्तु को खरीदने के लिए तत्पर रहे।

(iv) **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सिद्धान्त का महत्त्व:** प्रो० मार्शल ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के संदर्भ में उपभोक्ता के बचत-सिद्धान्त के महत्व पर बल दिया। इस सन्दर्भ में हम यह कह सकते हैं कि जो व्यय हम किसी वस्तु को अपने देश में बनाने में करते तथा जो हम उसे दूसरे देश से मँगाने पर करते, इन दोनों का अन्तर ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में उपभोक्ता की बचत कहलायेगी। इस प्रकार जिस वस्तु के आयात से उपभोक्ता की बचत

अधिक होगी उसी वस्तु का आयात होगा अन्यथा नहीं। यह बचत जिस देश में जितनी अधिक होती है उतना ही वह देश अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभान्वित होता है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि उपभोक्ता की बचत का सिद्धान्त कोरी कल्पना नहीं है बल्कि इसका व्यावहारिक महत्त्व भी है।

नोट

2.30. सारांश (Summary)

- *स्टॉक एक कमोडिटी की कुल मात्रा है जिसे एक संक्षिप्त सूचना पर बिक्री के लिए टी बाजार में लाया जा सकता है* और पूर्ति का अर्थ है कि वास्तव में बाजार में लाया जाने वाला मात्रा।
- *कीमत जिस पर विक्रेताओं द्वार कमोडिटी की मात्रा दी जाती है, उसे सप्लाई मूल्य कहा जाता है।*
- जब वस्तु की कीमत में एक छोटा-सा गिरावट पूर्ति में एक बड़े संकुचन की ओर जाता है, तो पूर्ति अपेक्षाकृत लोचदार है लेकिन जब एक बड़ी गिरावट में कीमत में पूर्ति में बहुत कम संकुचन की ओर जाता है, तो पूर्ति को अपेक्षाकृत अस्थिरता नहीं कहा जाता है।
- माँग की लोच की धारणा का उत्पादकों के लिए आजकल बहुत अधिक महत्त्व है। अपनी आय बढ़ाने के लिए उन्हें अपने उत्पादन की कीमत उस समय कम करनी चाहिए जब उनके उत्पादन की माँग की लोच इकाई से अधिक होती है। इसका कारण यह है कि किसी वस्तु की कीमत कम होने पर उस पर किए जाने वाले कुल व्यय में तभी वृद्धि होती है जब उसकी माँग की लोच इकाई से अधिक होती है। माँग की लोच के इकाई से कम होने की स्थिति में उत्पादकों को वस्तु की कीमत में वृद्धि करनी चाहिए।
- उपरोक्त इकाई में सर्वप्रथम मार्शल द्वारा उपभोक्ता की बचत की धारण को व्याख्यित करने का प्रयास किया गया हैं तत्पश्चत् उपभोक्ता की बचत को रेखाचित्रों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है जिसमें उपयोगिता के रूप में तथा मुद्रा के रूप में उपभोक्ता की बचत की सम्मिलित किया गया है।
- अर्थशास्त्र में उपभोक्ता की बचत का सिद्धान्त एक महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करता है। मार्शल ने उपभोक्ता की बचत की परिभाषा इस प्रकार की है: "किसी वस्तु को बिना प्राप्त किये हुए रहने की अपेक्षा वह मूल्य, जो एक व्यक्ति उस वस्तु के लिए देने के लिए तैयार रहता है और जो मूल्य वह वास्वत में देता है, उन दोनों का अन्तर ही उपभोक्ता की बचत कहलाती है।" उपभोक्ता बचत की धारणा सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम पर आधारित है।
- उपभोक्ता की बचत हमेशा धनात्मक होगी, की ऋणात्मक नहीं क्योंकि उपयोगिता से अधिक मूल्य वह देगा ही नहीं। मार्शल के उपभोक्ता की बचत सिद्धान्त की आलोचना के पश्चत् उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त के आधुनिक रूप की व्याख्या की गई है। आधुनिक अर्थशास्त्री हिक्स अनधिमान वक्र के माध्यम से इसे व्यक्त करने का दूसरा ढंग स्पष्ट किया तथा मार्शल के तरीके में व्याप्त दोषों को दूर करने का प्रयास किया। पर जहाँ तक उपभोक्ता कीबचत के मौलिक विचार अथवा परिभाषा का प्रश्न है, दोनों में कोई भिन्नता नहीं है। हिक्स के अनुसार उपभोक्ता की बचत की माप उसकी आय की बचत के रूप में करना चाहिए। मूल्य तथाआय में परिवर्तनों का उपभोक्ता की बचत पर प्रभाव तथा उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त का महत्व को भी इकाई में स्पष्ट किया गया है। इस सिद्धान्त का प्रयोग अनेक आर्थिक समस्याओं को सुलाझाने के लिये किया जा सकता है। जो इस प्रकार हैं–(1) विभिन्न देशों तथा स्थानों और भिन्न-भिन्न समयों की आर्थिक स्थितियों की तुलना, (2) राजस्व तथा आर्थिक नीति के निर्धारण में महत्व, (3) एकाधिकार के मूल्य-निर्धारण में सहायक, तथा (4) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सिद्धान्त का महत्व। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि उपभोक्ता की बचत का सिद्धान्त कोरी कल्पना नहीं है बल्कि इसका व्यावहारिक महत्व भी है।

2.31. अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

नोट

1. माँग की धारणा से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए।
2. माँग की कीमत लोच से आप क्या समझते हैं?
3. बिंदु लोच विधि क्या है? उदाहरण सहित बताइए।
4. माँग की आड़ी लोच की प्रकृति तथा श्रेणियों का उल्लेख कीजिए।
5. पूर्ति से क्या मतलब है? पूर्ति कार्यक्रम और वक्र की सहायता से पूर्ति के नियम को समझाएँ।
6. पूर्ति की अवधि लोच को परिभाषित करें। एक उदाहरण के साथ इसकी माप समझाओ।
7. क्या कारक पूर्ति का निर्धारण करते हैं? उदाहरणों के साथ समझाएँ।
8. पूर्ति की लोच का वर्णन करें। इसके मुख्य प्रकारों पर चर्चा करें।
9. पूर्ति की लोच की अवधारणा को समझाओ और पूर्ति के लोच को प्रभावित करनेवाले कारक का वर्णन करें।
10. सप्लाई के समय की पूर्ति वक्र की सहायता से पूर्ति के नियम की व्याख्या करें।
11. पूर्ति की लोच कैसे मापा जाता है? पूर्ति लोच के विभिन्न निर्धारक क्या हैं?
12. पूर्ति के नियम राज्य और पूर्ति वक्र के आकार का वर्णन।
13. स्थिति की व्याख्या करते समय पूर्ति की लोच एक से कम और कम से कम है।
14. संक्षेप में निम्नलिखित का जवाब दें–
    (*a*) पूर्ति और स्टॉक की अवधारणाओं को परिभाषित करें।
    (*b*) पूर्ति की लोच स्पष्ट करें।
    (*c*) पूर्ति के नियम राज्य।
    (*d*) पूर्ति के लोच के निर्धारकों को बताएँ।
    (*e*) पूर्ति वक्र के आकार क्या है?
    (*f*) पूर्ति के संकुचन और विस्तार की व्याख्या करें।
15. उपभोक्ता की बचत से आप क्या समझते हैं? इसके मापने की कौन-कौन सी विधियाँ हैं?
16. उपभोक्ता की बचत की अवधारण स्पष्ट कीजिए तथा आर्थिक विश्लेषण में इसका महत्व बताइये।
17. उपभोक्ता की बचत के विचार का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
18. उपभोक्ता की बचत को मापने में क्या कठिनाईयाँ है? इसके माप की हिक्स विधि का वर्णन कीजिए।
19. उपभोक्ता की बचत के स्वभाव की व्याख्या कीजिए तथा समसीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम के साथ इसका सम्बन्ध बताइये।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers : Self Assessment)

1. कीमतों	2. कीमत	3. प्रत्यक्ष	4. (अ)
5. (ब)	6. (अ)	7. (अ)	8. सही
9. सही	10. गलत	11. गलत	12. सही।

इकाई-3
(Unit-3)

नोट

घरेलू, फर्म एवम् बाजार की संरचना
(House Holds, Firms and Market Structure)

संरचना

3.1 उद्देश्य (Objectives)
3.2 प्रस्तावना (Introduction): उपभोग का अर्थ
3.3 तटस्थता वक्र क्या है? (What is an Indifference Curve?)
3.4 तटस्थता अनुसूची (Indifference Schedule)
3.5 तटस्थाता वक्र चित्रीय प्रस्तुतीकरण (Graphical Presentation of Indifference Curve)
3.6 तटस्था मानचित्र (Indifference Map)
3.7 सीमांत प्रतिस्थापन की दर (Marginal Rate of Substitution)
3.8 सीमांत प्रतिस्थापन की दर घटती क्यों है? (Why does the Marginal Rate of Substitution Diminish?)
3.9 घटती सीमांत उपयोगिता का नियम तथा घटती सीमांत प्रतिस्थापन की दर के नियम की तुलना (Comparison of the Law of Diminishing Marginal Utility and the Law of Diminishing Marginal Rate of Substitution)
3.10 तटस्थता वक्र विश्लेषण की मान्यताएँ (Assumptions of Indifference Curve Analysis)
3.11 तटस्थता वक्रों की विशेषताएँ (Properties of Indifference Curves)
3.12 तटस्थता वक्रों के आकार के कुछ अपवाद (Some Exceptional Shapes of Indifference Curves)
3.13 बजट रेखा या कीमत रेखा (Budget Line or Price Line)
3.14 बजट रेखा की विशेषताएँ (Properties of Budget Line)
3.15 बजट रेखा या कीमत रेखा का स्थानांतरण (Shifting of the Budget Line or Price Line)
3.16 उपभोक्ता संतुलन (Consumer's Equilibrium)
3.17 उपभोक्ता संतुलन की दो आधारभूत शर्तें (Two Basic Conditions of Consumer's Equilibrium)
3.18 उपभोक्ता संतुलन पर वस्तु की कीमत में होने वाले परिवर्तन का प्रभाव (Effect of Change in Commodity Price on Consumer's Equlibrium)
3.19 कीमत प्रभाव (Price Effect)
3.20 आय प्रभाव (Income Effect)
3.21 प्रतिस्थापन प्रभाव (Substitution Effect)
3.22 प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव की पहचान या कीमत प्रभाव का प्रतिस्थापन प्रभाव और आय प्रभाव में विभाजन (Identification of Substitution Effect and Income Effect of Splitting Price Effect into Substitution Effect and Income Effect)
3.23 हिक्स का दृष्टिकोण (The Hicksian Approach)
3.24 गिफ्फेन का विरोधाभास (Giffen's Paradox)
3.25 गिफ्फन वस्तुओं की स्थिति में आय तथा प्रतिस्थापन प्रभाव (Income and Substitution Effects in Case of Giffen Goods)
3.26 आय तथा प्रतिस्थापन प्रभावों के संभव संयोग (Possible Combinations of Income and Substitution Effects)

नोट

3.27 एकाधिकार क्या है? (What is Monopoly?)
3.28 एकाधिकार की विशेषताएँ (Features of Monopoly)
3.29 एकाधिकार में संतुलन (Monopoly Equilibrium) अथवा एकाधिकार में कीमत तथा उत्पादन का निर्धारण (Determination of Price and Output under Monopoly)
3.30 कुल आय तथा कुल लागत वक्र दृष्टिकोण (Total Revenue and Total Cost Curve Approach)
3.31 सीमांत आय तथा सीमांत लागत दृष्टिकोण (Marginal Revenue and Marginal Cost Approach)
3.32 कीमत विभेद या भेदमूलक एकाधिकार (Price Discrimination or Discriminating Monopoly)
3.33 कीमत विभेद के प्रकार (Types of Price Discrimination)
3.34 कीमत विभेदीकरण की श्रेणियाँ (Degrees of Price Discrimination)
3.35 कीमत विभेद की आवश्यक शर्तें (Essential Conditions for Price Discrimination)
3.36 कीमत विभेद कब लाभदायक होता है? (When Price Discrimination is Profitable)
3.37 भेदमूलक एकाधिकार में कीमत-उत्पादन का निर्धारण (Price and Output Determination under Discriminating Monopoly)
3.38 क्या एकाधिकारी कीमत सदैव पूर्ण प्रतियोगी कीमत से अधिक होती है? (Is Monopoly Price always Higher than the Perfectly Competitive Price?)
3.39 अपूर्ण व एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता (Imperfect and Monopolistic Competition)
3.40 अविश्वास नीति और एकाधिकार (Monopoly and Antitrust Policy)
3.41 अपूर्ण प्रतियोगिता (Imperfect Competition)
3.42 सारांश (Summary)
3.43 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

3.1. उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- उपभोग, एवम उपयोगिता का अर्थ जानने हेतु।
- तटस्थता वक्र जानने हेतु।
- सीमांत प्रतिस्थापन की दर समझने हेतु।
- कीमत प्रभाव का अध्ययन करने हेतु।
- आय प्रभाव का अध्ययन करने हेतु।
- माँग सिद्धांत जानने हेतु।

3.2. प्रस्तावना (Introduction)

उपभोग: उपभोग वह आर्थिक क्रिया है जिसमें व्यक्तिगत तथा सामूहिक आश्यकताओं की संतुष्टि के लिए वस्तुओं और सेवाओं की उपयोगिता का उपभोग किया जाता है। जैसे भोजन करना, कपड़ा पहनना आदि। मानवीय आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए वस्तुओं तथा सेवाओं का प्रत्यक्ष एवं अंतिम प्रयोग उपभोग कहलाता है।

उपभोग निम्न चार बातों से अभिप्रेरित होता है–

1. बहुत सी मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।
2. संतुष्टि में उपयोगिता का नाश होता है।
3. संतुष्टि वस्तुओं और सेवाओं के उपभोग से होती है।
4. वस्तु तथा सेवा का प्रत्यक्ष एवं अन्तिम प्रयोग उपभोग है।

नोट

उपयोगिता विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि वस्तु की उपयोगिता का **गणनावाचक माप** (Cardinal Measurement) संभव है अर्थात् उपयोगिता को गणनावाचक संख्याओं जैसे 1, 2, 3, 4 आदि के रूप में प्रकट किया जा सकता है। परंतु यह एक व्यावहारिक व्याख्या नहीं है। ऐसा कोई भी मापदंड नहीं है जिससे हम किसी वस्तु के उपभोग से प्राप्त होने वाली संतुष्टि को व्यक्त कर सकें। परंतु उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं अथवा एक ही वस्तु की विभिन्न इकाइयों से प्राप्त होने वाली संतुष्टि की तुलना कर सकता है। यह उपयोगिता का क्रमवाचक माप कहलाता है। उदाहरण के लिए, यदि आप एक कप चाय और एक कप कॉफी का उपभोग करते हैं तो आप इतना कह सकते हैं कि दोनों में से किस पेय से आपको अधिक उपयोगिता प्राप्त हुई है। परंतु आप उस उपयोगिता को गणनावाचक संख्याओं, जैसे 50 इकाइयों अथवा 40 इकाइयों, में व्यक्त नहीं कर सकते। क्रमवाचक शब्द का अर्थ है 'प्रथम', 'द्वितीय', 'तृतीय', आदि क्रम देना तटस्थता वक्र विश्लेषण उपयोगिता के क्रमवाचक माप पर आधारित है।

तटस्थता वक्र विश्लेषण का प्रतिपादन सबसे पहले अंग्रेज अर्थशास्त्री **ऐजवर्थ** (Edgeworth) ने सन् 1881 में अपनी पुस्तक '*Mathematical Psychics*' में किया था। इस धारणा का विकास इटली के अर्थशास्त्री **पेरिटो** (Pareto) ने सन् 1906 में, ब्रिटिश अर्थशास्त्री **डब्लू. ई. जॉनसन** (W. E. Johnson) ने सन् 1913 में और रूसी अर्थशास्त्री **स्लटस्की** (Slutsky) ने सन् 1915 में किया था। इस विश्लेषण को माँग सिद्धांत का महत्त्वपूर्ण उपकरण बनाने का श्रेय सन् 1934 के बाद **हिक्स तथा ऐलन** (Hicks and Allen) को जाता है। इन्होंने अपने एक लेख **'मूल्य सिद्धांत पर पुनर्विचार'** (A Reconsideration of the Theory of Value) में इसे वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत किया है। **हिक्स** ने अपनी पुस्तक **'मूल्य तथा पूँजी'** (Value and Capital) में इसकी विस्तृत विवेचना की है।

3.3. तटस्थता वक्र क्या है? (What is an Indifference Curve?)

तटस्थता वक्र वह वक्र है जो दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को प्रकट करता है जिनसे उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्राप्त होती है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि एक तटस्थता वक्र पर जितने बिंदु होते हैं वे दो वस्तुओं के उन संयोगों को प्रकट करते हैं जिनसे उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्राप्त होती है। चूँकि प्रत्येक बिंदु द्वारा प्रकट किए गए संयोग से समान संतुष्टि प्राप्त होती है, इसलिए उपभोक्ता उनके चुनाव के संबंध में **तटस्थ** (Indifferent) हो जाता है अर्थात् एक तटस्थता वक्र पर दिए गए सभी संयोगों को समान महत्त्व देता है।

एच. एल. वेरियन के अनुसार, **"एक तटस्थता वक्र दो वस्तुओं के सभी संयोगों को प्रकट करती है जिनसे व्यक्ति को संतुष्टि का समान स्तर प्राप्त होता है। इसलिए वक्र पर बिंदुओं द्वारा व्यक्त सभी संयोगों के संबंध में एक व्यक्ति तटस्थ होता है।"** (An indifference curve represents all combinations of two commodities that provide the same level of satisfaction to a person. That person is therefore indifferent among the combinations represented by the points on the curve.)

—H. L. Varian

तटस्थता का अर्थ है अंतर का अभाव

वस्तु X तथा वस्तु Y के दो विभिन्न संयोग X_1Y_1 तथा X_2Y_2 हैं जिनसे उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्राप्त हो रही है। उपभोक्ता इन दोनों संयोगों के विषय में तटस्थ होगा अर्थात् संतुष्टि के स्तर के संदर्भ में उसके लिए संयोग X_1Y_1 तथा X_2Y_2 के बीच में कोई अंतर नहीं होगा।

तटस्थता वक्र वह वक्र है जो दो वस्तुओं X तथा Y के उन विभिन्न संयोगों को प्रकट करती है जिनसे उसे समान संतुष्टि प्राप्त होती है।

कौतसुवयानी के अनुसार, **"एक तटस्थता वक्र बिंदुओं का वह पथ है, जो वस्तुओं के उन विशेष संयोगों को प्रकट करता है जो उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्रदान करते हैं, अतएव इनके प्रति उपभोक्ता तटस्थ होता है।"** (An indifference curve is the locus of points ..... particular combination of goods ..... which yield the same utility to the consumer, so that he is indifferent as to the particular combinations he consumes.")

—Koutsoyiannis

नोट

3.4. तटस्थता अनुसूची (Indifference Schedule)

एक तटस्थता तालिका से अभिप्राय उस तालिका से है जो दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को दर्शाती है जिससे उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्राप्त होती है। इसलिए उपभोक्ता इनमें से प्रत्येक संयोग को समान महत्त्व देता है अर्थात् इनके प्रकृति वह तटस्थ होता है। **मेयर्स के शब्दों में, "तटस्थता तालिका वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों की तालिका होती है जो किसी व्यक्ति को समान रूप से संतुष्टि प्रदान करेंगे।"** (An indifference schedule may be defined as a schedule of various combinations of goods that will be equally satisfactory to the individual concerned.) – **Meyers**

निम्नलिखित तालिका सेबों तथा संतरों के उन विभिन्न संयोगों को दर्शाती है जिनसे एक उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्राप्त होती है।

तालिका 3.1. तटस्थता अनुसूची (Indifference Schedule)

सेबों तथा संतरों के संयोग	सेब	संतरे
A	1	10
B	2	7
C	3	5
D	4	4

उपरोक्त तालिका यह दर्शाती है कि सेबों तथा संतरों के चारों संयोगों **A, B, C, D** से उपभोक्ता समान संतुष्टि प्राप्त करेगा। संयोग **'A'** में 1 सेब + 10 संतरे हैं; संयोग **'B'** में 2 सेब + 7 संतरे हैं; संयोग **'C'** में 3 सेब + 5 संतरे हैं और संयोग **'D'** में 4 सेब + 4 संतरे हैं। उपभोक्ता अधिक सेब लेने के लिए संतरों की कुछ मात्रा का त्याग इस प्रकार से कर रहा है कि प्रत्येक संयोग से मिलने वाली संतुष्टि के स्तर में कोई परिवर्तन न हो।

3.5. तटस्थाता वक्र चित्रीय प्रस्तुतीकरण (Graphical Presentation of Indifference Curve)

तटस्थता वक्र तटस्थता तालिका का प्रस्तुतीकरण करता है। तालिका 3.1 पर आधारित तटस्थता वक्र को चित्र 3.1 द्वारा प्रकट किया गया है। इस चित्र में **OX-** अक्ष पर सेबों की संख्या तथा **OY-** अक्ष पर संतरों की संख्या प्रकट की गई है। **IC** वक्र तटस्थता वक्र है। इसके विभिन्न बिंदु **A, B, C** तथा **D** सेबों तथा संतरों के ऐसे संयोगों को प्रकट कर रहे हैं जिनसे कि उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्राप्त हो रही है। इसलिए इस वक्र को **समान उपयोगिता वक्र (Iso-Utility Curve)** भी कहा जाता है।

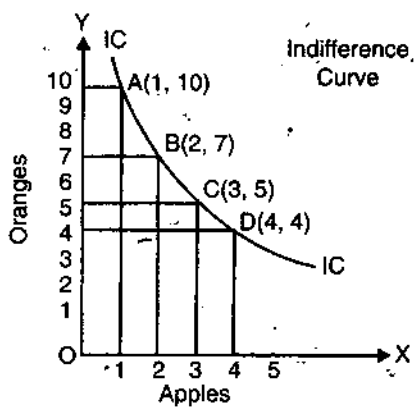

चित्र 3.1

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान भरिए (Fill in the blanks)–

1. तटस्थता का अर्थ है कि एक ही वक्र पर एक बिंदु से दूसरे की ओर .... होना।
2. अनाधिमान का अर्थ है कि निचली .... वक्र के ऊँची तटस्थता वक्र पर खिसकना।
3. ऊँची तटस्थता वक्र .... के ऊँचे स्तर को प्रकट करती है।

नोट

3.6. तटस्था मानचित्र (Indifference Map)

एक तटस्थता वक्र दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को प्रकट करता है जिनसे उपभोक्ता को एक निश्चित स्तर की संतुष्टि प्राप्त होती है। यदि विभिन्न वस्तुओं के विभिन्न संयोगों से प्राप्त होने वाली संतुष्टि को ऊँचे या नीचे स्तर पर दिखाना है तो हमें अलग-अलग तटस्थता वक्रों का प्रयोग करना पड़ेगा। यदि इन तटस्थता वक्रों या इनके समूह को एक चित्र के रूप में प्रकट किया जाए तो उसे तटस्थता मानचित्र कहा जाता है। **अतः तटस्थता मानचित्र वह ग्राफ है जो तटस्थ वक्रों के एक समूह को प्रदर्शित करता है जिसमें प्रत्येक वक्र संतुष्टि के एक निश्चित स्तर को बतलाता है।** (Indifference map is that graph which represents a group of indifference curves each of which expresses a given level of satisfaction). चित्र 3.2 में तटस्थता मानचित्र को प्रकट किया गया है चित्र में **OX**-अक्ष पर

> *एक तटस्थता वक्र दूसरी तटस्थता वक्र के दायीं ओर तथा ऊपर है, संतुष्टि के ऊँचे स्तर को प्रकट करती है।* ***तटस्थता*** *का अर्थ है एक ही वक्र पर एक बिंदु से दूसरे बिंदु की ओर गतिशील होना परंतु* ***अनाधिमान*** *(Preference) का अर्थ है एक निचली तटस्थता वक्र के ऊँची तटस्थता वक्र पर खिसकना। इसका कारण यह है कि ऊँची तटस्थता वक्र आय के ऊँचे स्तर को प्रकट करती है।*

सेबों की संख्या तथा **OY**-अक्ष पर संतरों की संख्या प्रकट की गई है। I_1, I_2, I_3, तथा I_4 विभिन्न तटस्थता वक्र हैं। प्रत्येक तटस्थता वक्र संतुष्टि के विभिन्न स्तरों को प्रकट कर रहा है। जैसे-जैसे तटस्थता वक्र दाईं ओर खिसकते जाते हैं वैसे-वैसे संतुष्टि का स्तर बढ़ता जाता है। इस चित्र में I_4 पर प्रकट संयोग सबसे अधिक संतुष्टि को प्रकट कर रहे हैं। I_3 वक्र के संयोग I_4 वक्र के संयोगों की तुलना में संतुष्टि के कम स्तर को प्रकट कर रहे हैं। I_1 वक्र के संयोग सब से कम संतुष्टि को प्रकट कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, चित्र 3.2 में I_2 के बिंदु **'D'** पर उपभोक्ता 4 सेबों + 4 संतरों का उपभोग करता है। यदि वह उपभोक्ता 4 सेबों + 5 संतरों का उपभोग करे तो स्वाभाविक रूप से उसका संतुष्टि का स्तर पहले से अधिक होगा और इस प्रकार वह I_3 के बिंदु **'F'** पर खिसक जाएगा। इसी प्रकार यदि वह उपभोक्ता 6 सेबों + 4 संतरों का उपभोग करे तो उसकी संतुष्टि बिंदु **'D'** से अधिक होगी, और इस प्रकार वह I_3 के **G** बिंदु पर खिसक

चित्र 3.2

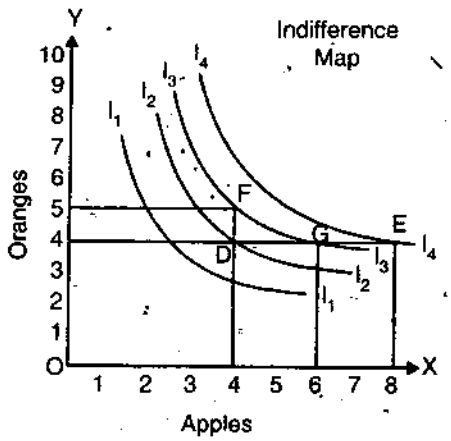

जाएगा। इसलिए हम कह सकते हैं कि बिंदु 'F' तथा 'G' जो कि तटस्थता वक्र I_3 पर है बिंदु 'D' की अपेक्षाकृत जोकि I_2 पर है अधिक संतुष्टि के स्तर को दर्शाते हैं। यदि उपभोक्ता 8 सेबों + 4 संतरों का उपभोग करता है उसकी संतुष्टि बिंदु 'G' से अधिक होगी और वह I_4 के बिंदु 'E' पर खिसक जाएगा। अत: संतुष्टि के दृष्टिकोण से $I_4 > I_3 > I_2 > I_4$। अन्य शब्दों में, कोई भी तटस्थता वक्र जो दूसरी से दाईं ओर होगा उसे ऊँची तटस्थता वक्र कहा जाएगा और वह अधिक संतुष्टि प्रदान करेगा। ऊँची तटस्थता वक्र पर स्थित किसी भी संयोग को नीची तटस्थता वक्र पर स्थित संयोग से अधिक पसंद किया जाएगा।

नोट

3.7. सीमांत प्रतिस्थापन की दर (Marginal Rate of Substitution)

तटस्थता वक्र के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उपभोक्ता जब एक वस्तु -X की एक अधिक इकाई प्राप्त करता है तो उसकी संतुष्टि में वृद्धि होती है। यदि उपभोक्ता अपने संतुष्टि के स्तर को समान रखना चाहता है अर्थात् वह उसी तटस्थता वक्र पर रहना चाहता है तो उपभोक्ता को Y-वस्तु की कुछ इकाइयों का त्याग करना पड़ेगा। अन्य शब्दों में, सेब की अतिरिक्त मात्रा से प्राप्त होने वाली संतुष्टि के बदले में उसे संतरे की उतनी मात्रा का त्याग करना पड़ेगा जिसकी संतुष्टि सेब से प्राप्त अतिरिक्त संतुष्टि के बराबर है। अन्य शब्दों में,

सीमांत प्रतिस्थान की दर तटस्था वक्र के ढलान को निर्धारित करती है। स्थिर सीमांत प्रतिस्थापन का अर्थ है ढलान का स्थिर होना या सीमांत दर तटस्थता वक्र का एक सरल रेखा होना। घटती सीमांत प्रतिस्थापन दर का अर्थ है घटता हुआ ढलान या तटस्थता वक्र का उन्नतोदर (Conves) होना अर्थात् मूल बिंदु की ओर उन्नतोदर होना।

सेबों से प्राप्त संतुष्टि (Satisfaction gained of Apples) = संतरों के त्याग से प्राप्त संतुष्टि (Satisfaction lost from Oranges)

यदि उपभोक्ता सेब की एक अधिक इकाई प्राप्त करने के लिए संतरे की तीन इकाइयों का त्याग करता है अर्थात् वह एक सेब के लिए 3 संतरों का प्रतिस्थापन करता है तो यह कहा जाएगा कि एक सेब से प्राप्त संतुष्टि 3 संतरों से प्राप्त संतुष्टि के बराबर है। अत: सेब के लिए संतरों की सीमांत प्रतिस्थापन दर 1 : 3 है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सेबों की संतरों के लिए सीमांत प्रतिस्थापन दर संतरों की वह संख्या है जिसका सेबों की एक अधिक इकाई प्राप्त करने के लिए इस प्रकार त्याग करना पड़ता है कि उपभोक्ता को प्राप्त होने वाली संतुष्टि समान रहती है। अन्य शब्दों में, **सीमांत प्रतिस्थापन दर (MRS) वह दर है जिस पर उपभोक्ता, संतुष्टि के अपने स्तर में परिवर्तन किए बिना, एक वस्तु का दूसरी वस्तु के लिए प्रतिस्थापन कर सकता है। यह तटस्थता वक्रों के ढलान को प्रकट करती है।** (Marginal rate of substitution (MRS) is the rate at which the consumer can substitute one good for another without changing the level of satisfaction. It indicates the slope of indifference curves.)

बिलास के अनुसार, **"वस्तु-X की वस्तु-Y के लिए सीमांत प्रतिस्थापन दर (MRS*xy*) वस्तु-Y की मात्रा है जो उपभोक्ता वस्तु-X की एक अधिक इकाई प्राप्त करने के लिए, त्याग करने को तैयार होता है जिससे उसका संतुष्टि स्तर पहले जितना बना रहे।"** (The marginal rate of substitution of X for Y (MRS*xy*) is defined as the amount of Y, the consumer is just willing to give up to get one more unit of X and maintain the same level of satisfaction. **—Bilas**

$$MRS_{xy} = \frac{\text{Loss of Y}}{\text{Gain of X}} = (-)\frac{\Delta Y}{\Delta X}$$

(यहाँ MRS*xy*) Y के लिए X की सीमांत प्रतिस्थापन दर; ΔY = वस्तु-Y में परिवर्तन, ΔX = वस्तु-X में परिवर्तन)

अन्य शब्दों में, यदि उपभोक्ता संतुष्टि के समान स्तर को बनाए रखना चाहता है तो सीमांत प्रतिस्थापन दर वस्तु-Y तथा वस्तु -X की मात्रा का वह अनुपात है जिसे वस्तु-X की एक अधिक इकाई प्राप्त करने के लिए अवश्य त्यागना पड़ेगा। यह अनुपात सामान्यत: ऋणात्मक होता है क्योंकि वस्तु-X की वृद्धि के साथ जुड़ा वस्तु-Y में परिवर्तन ऋणात्मक होता है।

नोट

(i) सीमांत प्रतिस्थापन की स्थिर दर (Constant Marginal Rate of Substitution)

सीमांत प्रतिस्थापन की दर तब स्थिर होती है जब वस्तु-X की एक अधिक इकाई प्राप्त करने के लिए, वस्तु-Y की केवल एक इकाई का त्याग करना पड़ता है ताकि संतुष्टि का समान स्तर बना रहे। अन्य शब्दों में, प्रतिस्थापन की दर समान रहती है। **पूर्ण प्रतिस्थापन वस्तुओं की सीमांत प्रतिस्थापन दर समान होती है।**

स्थिर सीमांत प्रतिस्थापन दर केवल एक सैद्धांतिक संभावना है

जब वस्तु-X का वस्तु-Y के लिए बढ़ती हुई दर पर प्रतिस्थापन किया जाता है तो उपभोक्ता के पास वस्तु Y की मात्रा कम होती जाती है तथा वस्तु X की मात्रा बढ़ती जाती है। जब उपभोक्ता के पास वस्तु X की मात्रा बढ़ती जाती है तो उसकी प्रत्येक अतिरिक्त इकाई से पहली इकाई की तुलना में कम संतुष्टि प्राप्त होती है। इसके विपरीत वस्तु Y की इकाइयों में कमी होते जाने के फलस्वरूप उसकी प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के त्याग के फलस्वरूप पहली इकाई की तुलना में संतुष्टि की अधिक हानि होती है। जब वस्तु Y की एक अतिरिक्त इकाई का त्याग करने के फलस्वरूप संतुष्टि में होने वाली हानि वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के फलस्वरूप संतुष्टि में होने वाली वृद्धि से अधिक होती है तो वस्तु X तथा वस्तु Y में स्थिर दर विनिमय कैसे हो सकता है।

निम्नलिखित तालिका 2 तथा चित्र 3.3 द्वारा व्याख्या की जा सकती है।

तालिका 3.2. सीमांत प्रतिस्थापन की स्थिर दर (Constant Marginal Rate of Substitution)

संयोग	सेब	संतरे	सीमांत प्रतिस्थापन की दर
A	1	10	
B	2	9	1 : 1
C	3	8	1 : 1
D	4	7	1 : 1

तालिका 2 से प्रकट होता है कि सेबों की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता को एक संतरे का त्याग करना पड़ेगा। अन्य शब्दों में, सीमांत प्रतिस्थापन की दर समान अर्थात् 1 : 1 ही रहेगी।

चित्र 3.3 में दिखाया गया है कि उपभोक्ता जब बिंदु **A** से बिंदु **B** पर खिसकता है, एक अतिरिक्त सेब प्राप्त करने के लिए वह एक संतरे का त्याग करता है। इस स्थिति में संतरों के लिए उपभोक्ता की सेबों की सीमांत प्रतिस्थापन दर 1 : 1 है। इसी प्रकार जब वह **B** से **C** या **C** से **D** पर खिसकता है अर्थात् एक बिंदु से दूसरे बिंदु पर सरकता है तो सीमांत प्रतिस्थापन की दर समान अर्थात् 1 : 1 रहेगी। ऐसी स्थिति में तटस्थता वक्र बाएँ से दाएँ नीचे की गिरती हुई **सीधी रेखा (Straight Line)** होगी जैसा कि चित्र 3.3 में दिखाया गया है।

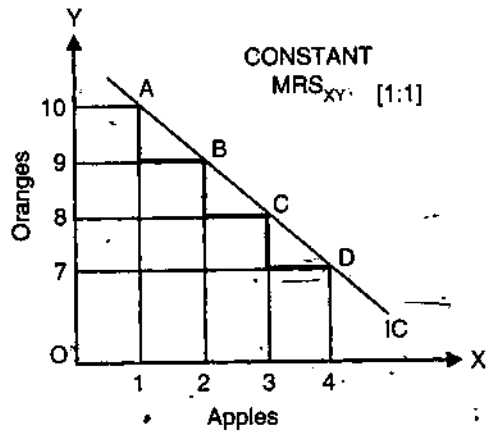

चित्र 3.3

नोट

(*ii*) **सीमांत प्रतिस्थापन की बढ़ती दर (Increasing Marginal Rate of Substitution)**

सीमांत प्रतिस्थापन की बढ़ती दर से अभिप्राय है कि उपभोक्ता के पास जब किसी वस्तु का स्टॉक बढ़ जाता है तो संतुष्टि के समान स्तर को कायम रखने के लिए वह उस वस्तु का दूसरी वस्तु के लिए बढ़ती हुई दर पर प्रतिस्थापन करता है। उदाहरण के लिए वस्तु-**X** की एक अधिक इकाई प्राप्त करने के लिए वस्तु-**Y** की 2 इकाइयों का त्याग किया जाता है और वस्तु-**X** की एक और इकाई प्राप्त करने के लिए वस्तु-**Y** की 3 इकाइयों का त्याग किया जाता है। ऐसी स्थिति में तटस्थता वक्र का ढलान मूल बिंदु की ओर **नतोदर (Concave)** होता है जैसा कि चित्र 3.4 में दिखलाया गया है।

सीमांत प्रतिस्थापन की बढ़ती दर की व्याख्या निम्नलिखित तालिका 3.3 तथा चित्र 3.4 द्वारा की जा सकती है–

तालिका 3.3. सीमांत प्रतिस्थान की बढ़ती दर (Increasing Marginal Rate of Substitution)

संयोग	सेब	संतरे	सीमांत प्रतिस्थापन की दर
A	1	10	
B	2	9	1 : 1
C	3	7	2 : 1
D	4	4	3 : 1

तालिका 3.3 से प्रकट होता है कि सेब की दूसरी इकाई प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता को 1 संतरे का त्याग करना पड़ता है, सेब की तीसरी इकाई प्राप्त करने के लिए 2 संतरों का त्याग करना पड़ता है और सेब की चौथी इकाई प्राप्त करने के लिए 3 संतरों का त्याग करना पड़ता है। अन्य शब्दों में, सेबों के लिए संतरों की प्रतिस्थापन की दर बढ़ रही है।

चित्र 3.4 में यह प्रकट किया गया है कि उपभोक्ता जब 2 सेब खरीदता है, तो वह 9 संतरे खरीदेगा। अन्य शब्दों में, एक अतिरिक्त सेब प्राप्त करने के लिए वह एक संतरे का त्याग करेगा। जब वह 3 सेब खरीदता है तब वह 7 संतरे खरीदेगा। अन्य शब्दों में, वह एक अतिरिक्त सेब खरीदने के लिए 2 संतरों का त्याग करेगा। इसी प्रकार जब 4 सेब खरीदता है, तब वह संतरे भी 4 ही खरीदेगा अर्थात् एक अधिक सेब प्राप्त करने के लिए वह 3 संतरों का त्याग करेगा। अन्य शब्दों में, सीमांत प्रतिस्थापन की दर बढ़ रही है। **ऐसी स्थिति में तटस्थता वक्र मूल बिंदु की ओर नतोदर (Concave to the Point of Origin) होती है।**

नोट

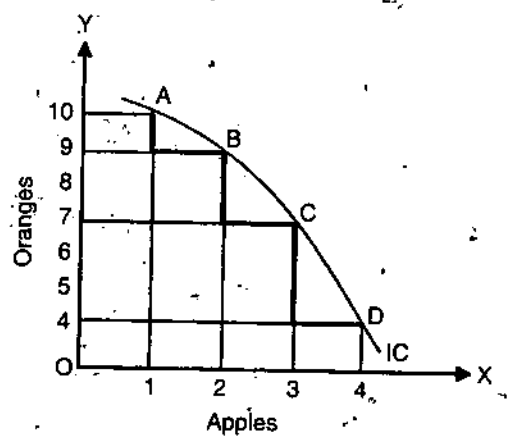

चित्र 3.4

***(iii)* सीमांत प्रतिस्थापन की घटती दर (Diminishing Marginal Rate of Substitution)**

सीमांत प्रतिस्थापन की घटती दर से अभिप्राय है कि उपभोक्ता के पास जब किसी वस्तु का स्टॉक बढ़ता है तो अपने संतुष्टि के स्तर को समान बनाए रखने के लिए वह इस वस्तु का दूसरी वस्तु के लिए प्रतिस्थापन घटती हुई दर पर करेगा। ऐसी स्थिति में तटस्थता वक्र मूल बिंदु की ओर **उन्नतोदर (Convex to the Origin)** होती है। तटस्थता वक्र की यह एक आधारभूत मान्यता है, इसे चित्र 3.5 में दर्शाया गया है। यह एक सामान्य विशेषता भी है और इसकी व्याख्या एक नियम के रूप में नीचे की गई है।

इस नियम को तालिका 3.4 और चित्र 3.5 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

तालिका 3.4. घटती सीमांत प्रतिस्थान दर
(Diminishing Marginal Rate of Substitution)

संयोग	सेब	संतरे	सीमांत प्रतिस्थापन दर
A	1	10	–
B	2	7	3 : 1
C	3	5	2 : 1
D	4	4	1 : 1

तालिका 3.4 से ज्ञात होता है कि उपभोक्ता दूसरे सेब के लिए 3 संतरे, तीसरे सेब के लिए 2 संतरे तथा चौथे सेब के लिए 1 संतरे का प्रतिस्थापन करेगा अर्थात् जैसे-जैसे सेबों की अधिक संख्या लेता जाएगा, संतरों की सेबों के लिए सीमांत प्रतिस्थापन दर कम होती जाएगी।

चित्र 3.5 से ज्ञात होता है कि जब उपभोक्ता बिंदु **'A'** से बिंदु **'B'** की ओर जाता है तो वह सेब की एक अतिरिक्त इकाई के लिए 3 संतरों का त्याग करता है। इस स्थिति में उपभोक्ता की सेब के लिए संतरों की प्रतिस्थापन दर **(MRS)** 3 : 1 होगी। इस प्रकार जब वह **B** से **C** की ओर जाता है तो सेब की एक अतिरिक्त इकाई के बदले में 2 संतरों का त्याग करने के लिए तैयार है, अर्थात् उसकी सीमांत प्रतिस्थापन दर 2 : 1 है। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि उपभोक्ता जैसे-जैसे सेबों के उपयोग को बढ़ाता जाता है तो उसकी प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के लिए वह क्रमशः कम संतरों का त्याग करता है अर्थात् प्रतिस्थापन दर 3 : 1, 2 : 1, 1 : 1 हो जाती है। **चूँकि यह अवश्यंभावी होता है, इसलिए इसे घटती सीमांत प्रतिस्थापन दर का नियम कहा जाता है।**

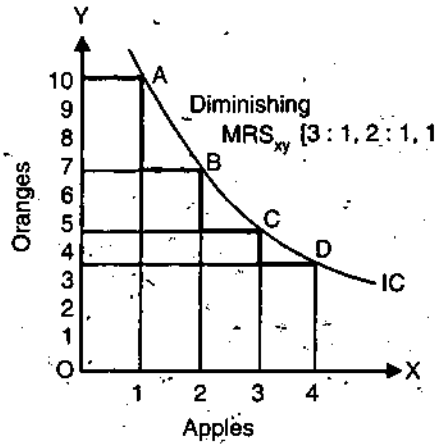

चित्र 3.5

3.8. सीमांत प्रतिस्थापन की दर घटती क्यों है? (Why does the Marginal Rate of Substitution Diminish?)

घटती सीमांत प्रतिस्थापन दर का नियम, वास्तव में, घटती सीमांत उपयोगिता के नियम का ही एक विस्तृत रूप है। घटती सीमांत उपयोगिता के नियम के अनुसार एक उपभोक्ता जब किसी वस्तु के उपभोग की मात्रा को बढ़ाता जाता है तो उस वस्तु से प्राप्त होने वाली सीमांत उपयोगिता घटती जाती है और इसके विपरीत जब वह किसी वस्तु के उपभोग की मात्रा को घटाता है, तो उस वस्तु से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता बढ़ती जाती है। चित्र 3.5 से ज्ञात होता है उपभोक्ता बिंदु **'A'** पर 1 सेब और 10 संतरों का उपभोग करता है। बिंदु **'B'** पर उपभोक्ता 7 संतरे और 2 सेबों का उपभोग करता है अर्थात् उसने 1 सेब के लिए 3 संतरों का त्याग किया। घटती सीमांत उपयोगिता के नियम के अनुसार सेबों की बढ़ती हुई संख्या की सीमांत उपयोगिता घट रही है और संतरों की घटती हुई संख्या की सीमांत उपयोगिता बढ़ रही है। इसके फलस्वरूप उपभोक्ता सेब की प्रत्येक अगली इकाई के बदले में संतरों की क्रमशः कम मात्रा का त्याग करने के लिए तैयार होगा। अन्य शब्दों में, सेबों की संतरों के लिए सीमांत प्रतिस्थापन दर **(MRS)** घट रही है। इस नियम के लागू होने के वे ही कारण हैं जो घटती सीमांत उपयोगिता के नियम के हैं अर्थात् (*i*) विशेष आवश्यकता की संतुष्टि, (*ii*) वस्तुएँ पूर्ण स्थानापन्न होती हैं तथा (*iii*) वस्तुओं के वैकल्पिक उपयोग होते हैं। यह नियम **(*i*) पूर्ण स्थानापन्न (Perfect Substitutes)** तथा **(*ii*) पूर्ण पूरक वस्तुओं (Perfect Complementary Goods) के संबंध में लागू नहीं होता है।**

3.9. घटती सीमांत उपयोगिता का नियम तथा घटती सीमांत प्रतिस्थापन की दर के नियम की तुलना (Comparison of the Law of Diminishing Marginal Utility and the Law of Diminishing Marginal Rate of Substitution)

घटती सीमांत प्रतिस्थापन की दर का नियम तथा घटती सीमांत उपयोगिता का नियम उपभोक्ता के व्यवहार की एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति को प्रकट करते हैं। इन नियमों के अनुसार एक उपभोक्ता के पास जैसे-जैसे किसी वस्तु का स्टॉक या मात्रा बढ़ती जाती है, उसकी अतिरिक्त इकाइयों का महत्त्व कम होता जाता है। अतः घटती सीमांत प्रतिस्थापन की दर का नियम घटती सीमांत उपयोगिता के नियम के ही अनुरूप है। परंतु हिक्स के अनुसार, घटती सीमांत प्रतिस्थापन की दर का नियम उपभोक्ता के व्यवहार की इस प्रवृत्ति को घटती सीमांत उपयोगिता के नियम की तुलना में कम मान्यताओं के आधार पर व्याख्या करता है। **इसलिए यह नियम निम्नलिखित कारणों से घटती सीमांत उपयोगिता के नियम की तुलना में अधिक वास्तविक है।**

नोट

1. **उपयोगिता के गणनावाचक माप की आवश्यकता नहीं है (No Need of Measuring Utility in Cardinal Numbers)**–घटती सीमांत उपयोगिता का नियम उपयोगिता के गणनावाचक माप की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है। इसके विपरीत घटती सीमांत प्रतिस्थापन की दर के नियम में उपयोगिता को गणनावाचक संख्या में मापने की आवश्यकता ही नहीं है। इसलिए यह नियम अधिक वास्तविक है।
2. **स्वतंत्र वस्तुओं की मान्यता से मुक्त (Free from the Assumption of Independent Commodities)**–घटती सीमांत उपयोगिता का नियम इस अवास्तविक मान्यता पर आधारित है कि एक वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता केवल उस वस्तु की उपलब्ध मात्रा पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए, चाय से प्राप्त होने वाली उपयोगिता पर संबंधित वस्तु कॉफी से प्राप्त होने वाली उपयोगिता का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। घटती सीमांत प्रतिस्थापन की दर के नियम में यह धारणा मानने की आवश्यकता ही नहीं है। यह नियम संबंधित वस्तुओं के एक-दूसरे की उपयोगिता पर पड़ने वाले प्रभाव को ध्यान में रखता है।
3. **मुद्रा की स्थिर सीमांत उपयोगिता की मान्यता से स्वतंत्र (Free from the Assumption of Constant Marginal Utility of Money)**–घटती सीमांत उपयोगिता के नियम की तीसरी अवास्तविक मान्यता मुद्रा की सीमांत उपयोगिता को स्थिर मानना है। घटती सीमांत प्रतिस्थापन की दर के नियम के लिए इस अवास्तविक मान्यता की कोई आवश्यकता नहीं है।

परंतु **कौतसुवियानी (Koutsoyiannis)** का यह मानना है कि सीमांत प्रतिस्थापन की दर सीमांत उपयोगिता की धारणा **(MRS)** में निहित है क्योंकि यह सिद्ध किया जा सकता है कि उपयोगिता फलन में अंतर्निहित सीमांत प्रतिस्थापन की दर वस्तुओं की सीमांत उपयोगिता के अनुपात के बराबर है।

$$MRSxy = \frac{MU_X}{MU_Y} \quad \text{or} \quad MRSyx = \frac{MU_Y}{MU_X}$$

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)

4. सीमांत प्रतिस्थापन की दर तटस्थता वक्र के ..... को निर्धारित करती है।
   (अ) अर्थ (ब) ढलान (स) संतुष्टि (द) उद्देश्य
5. स्थिर सीमांत प्रतिस्थापन का अर्थ है ढलान का ..... होना।
   (अ) अस्थिर (ब) स्थिर (स) वक्र (द) सीधा
6. घटती सीमांत प्रतिस्थापन का अर्थ है तटस्थता वक्र का ..... होना–
   (अ) उन्नतोदर (Convex) (ब) वक्र (स) स्थिर (द) अस्थिर
7. पूर्ण प्रतिस्थापन वस्तुओं की सीमांत प्रतिस्थापन दर ..... होती है–
   (अ) असमान (ब) वक्र (स) स्थिर (द) समान।

3.10. तटस्थता वक्र विश्लेषण की मान्यताएँ (Assumptions of Indifference Curve Analysis)

तटस्थता वक्र विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है–

1. **विवेकपूर्ण उपभोक्ता (Rational Consumer)**–यह माना जाता है कि उपभोक्ता का व्यवहार विवेकपूर्ण होगा। हम यह मान लेते हैं कि उपभोग निर्णयों से संबंधित स्थितियों के बारे में उपभोक्ता को पूर्ण सूचना प्राप्त है। बाजार में उपलब्ध सभी वस्तुओं तथा सेवाओं के बारे में, उनकी कीमत तथा अपनी मौद्रिक आय के बारे में उपभोक्ता को जानकारी प्राप्त है। इस सूचना के आधार पर उपभोक्ता यह निर्णय ले सकता है कि कौन-सा संयोग बेहतर है

अथवा कौन-सा संयोग समान संतुष्टि प्रदान करता है। **प्रत्येक उपभोक्ता अपनी सीमित आय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करने का प्रयास करेगा।**

नोट

2. **क्रमवाचक उपयोगिता (Ordinal Utility)**—तटस्थता वक्र विश्लेषण क्रमवाचक उपयोगिता की मान्यता पर आधारित है। इसे क्रमवाचक उपयोगिता इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसे क्रमवाचक संख्याओं के रूप में व्यक्त किया जाता है। क्रमवाचक संख्याएँ वे संख्याएँ हैं जो **शृंखलाओं में श्रेणी को (Ranks in Series)** व्यक्त करती हैं जैसे **प्रथम, द्वितीय** और **तृतीय।** इसके अनुसार उपभोक्ता वस्तुओं के विभिन्न संयोगों के लिए अपनी **प्राथमिकताओं (Preferences)** को **श्रेणियों (Ranks)** को व्यक्त कर सकते हैं। उन्हें किसी वस्तु की उपयोगिता को गणनावाचक संख्याओं में व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं है। एक उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिता की तुलना करके उपयोगिता को 'अधिक' या 'कम' के रूप में व्यक्त करता है न कि उसको 2, 4, 6, 8 आदि संख्याओं के रूप में।

3. **घटती सीमांत प्रतिस्थापन दर (Diminishing Marginal Rate of Substitution)**—**बोमोल (Baumol)** के अनुसार, **"तटस्थता वक्र विश्लेषण की यह मान्यता है कि सीमांत प्रतिस्थापन दर घटती जाती है।"** इसका अभिप्राय यह हुआ कि एक उपभोक्ता के पास जैसे-जैसे किसी वस्तु की मात्रा बढ़ती है वह उस वस्तु का अन्य वस्तु से प्रतिस्थापन घटती दर पर करता है।

4. **पूर्ण संतुष्टि नहीं (Non-Satiety)**—उपभोक्ता **पूर्ण संतुष्टि के स्तर (Level of Satiety)** पर नहीं पहुँचता। उपभोक्ता एक वस्तु की अधिक मात्रा को कम मात्रा की तुलना में अधिक पसंद करता है। जैसे दो रसगुल्लों के स्थान पर पाँच रसगुल्ले। यदि उपभोक्ता को किसी वस्तु की कम मात्रा की तुलना में अधिक मात्रा को पसंद करना है, तब उसके पास उस वस्तु की इतनी मात्रा होनी चाहिए कि और अधिक लेने से उसे कोई भी संतुष्टि प्राप्त न हो।

5. **चुनाव में सामंजस्य (Consistency in Selection)**—उपभोक्ता के व्यवहार में सामंजस्य पाया जाता है। इसका अर्थ हुआ कि उपभोक्ता यदि किसी एक समय में वस्तुओं के **A** संयोग को वस्तुओं के **B** संयोग से अधिक पसंद करता है तो वह किसी दूसरे समय में भी वस्तुओं के **A** संयोग की तुलना में वस्तुओं के **B** संयोग की अधिक पसंद नहीं करेगा।

$$\text{यदि } A > B, \text{ तब } B \not> A$$

(इसे पढ़ा जाएगा यदि **A, B** से अधिक (>) है तो **B, A** अधिक (≯) नहीं हो सकता।

6. **सकर्मकता (Transitivity)**—इस विश्लेषण की यह भी मान्यता है कि तटस्थता और प्राथमिकता के संबंध में सकर्मकता पाई जाती है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि यदि उपभोक्ता **'A'** संयोग से **'B'** संयोग को अधिक पसंद करता है तथा **'B'** संयोग को **'C'** संयोग से अधिक पसंद करता है तो वह **'A'** संयोग को **'C'** संयोग की तुलना में अवश्य ही अधिक पसंद करेगा। इस प्रकार यदि उपभोक्ता **'A'** तथा **'B'** के बीच तटस्थ है तथा **'B'** और **'C'** के बीच तटस्थ है तो वह **'A'** और **'C'** के बीच भी तटस्थ होगा।

3.11. तटस्थता वक्रों की विशेषताएँ (Properties of Indifference Curves)

तटस्थता वक्र की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **तटस्थता वक्र का ढलान सामान्यतया बाएँ से दाएँ नीचे की ओर होता है (An indifference Curve Generally Slopes Downwards from Left to the Right)**—एक तटस्थता वक्र का ढलान बाएँ से दाएँ नीचे की ओर अर्थात् ऋणात्मक **(Negative)** होता है। तटस्थता वक्र की यह विशेषता इस मान्यता पर आधारित है कि उपभोक्ता यदि एक वस्तु की अधिक मात्रा का उपयोग करता है तो वह दूसरी वस्तु की कम मात्रा का उपयोग करेगा, तभी वस्तुओं के विभिन्न संयोगों से मिलने वाली संतुष्टि समान होगी।

नोट

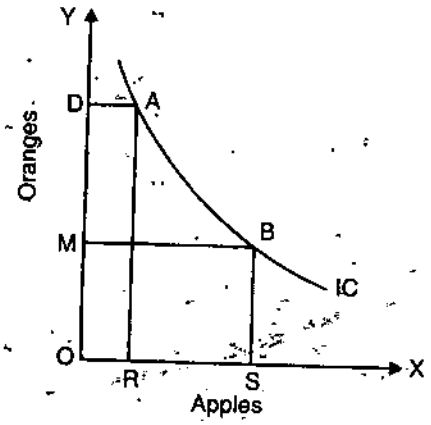

चित्र 3.6

चित्र 3.6 में **IC** वक्र बाएँ से दाएँ नीचे की ओर ढलान वाले तटस्थता वक्र को प्रकट कर रहा है। जैसा कि वक्र **IC** द्वारा प्रकट हो रहा है। तब उपभोक्ता को **A** तथा **B** संयोगों से समान संतुष्टि प्राप्त हो सकती है क्योंकि **A** संयोग में **B** संयोग की तुलना में संतरों की संख्या अधिक है तो **B** संयोग में सेबों की संख्या कम है। अत: **तटस्थता वक्र का ढलान IC रेखा की भाँति ऋणात्मक होता है अर्थात् बाएँ से बाएँ नीचे की ओर झुका हुआ, मूल बिंदु की ओर उन्नतोदर होता है।**

2. **मूल बिंदु की ओर उन्नतोदर (Convex to the Point of Origin)**–तटस्थता वक्र सामान्यतया मूल बिंदु की ओर उन्नतोदर (नीचे की ओर झुका हुआ) होता है। वक्र उन्नतोदर होने से अभिप्राय मूल बिंदु की ओर इसके अंदर को झुके होने **(Bowing inward)** से है। अन्य शब्दों में, तटस्थता वक्र का ढलान **चपटा (Flatter)** होता जाता है जैसे-जैसे उस वक्र पर आगे की ओर सरकते जाते हैं। तटस्थता वक्र का ढलान **सीमांत प्रतिस्थापन की दर** कहलाता है क्योंकि यह उस दर को प्रकट करता है जिस पर उपभोक्ता संतुष्टि के समान स्तर को कायम रखने के लिए एक वस्तु (जैसे सेब) का दूसरी वस्तु (जैसे संतरा) के लिए प्रतिस्थापन करता है। अन्य शब्दों में, तटस्थता वक्र की यह विशेषता घटती सीमांत प्रतिस्थापन की दर के नियम पर आधारित है।

तटस्थता वक्र की उन्नतोदरता घटती सीमांत प्रतिस्थापन की दर के कारण होती है।

चित्र 3.7 में तटस्थता वक्र मूल बिंदु **'O'** की ओर **उन्नतोदर (Convex)** है। इससे प्रकट होता है कि सेबों की संतरों के लिए सीमांत प्रतिस्थापन दर घटती जा रही है। इसका अर्थ है

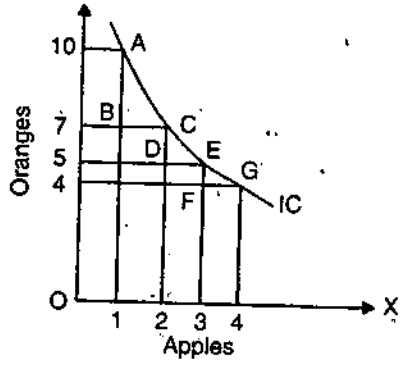

चित्र 3.7

कि उपभोक्ता सेबों की जैसे-जैसे अधिक मात्रा लेता जाएगा, वह संतरों की कम मात्रा का त्याग करना चाहेगा। उपभोक्ता पहले अतिरिक्त सेब के लिए 3 संतरों (AB) का त्याग करेगा, दूसरे सेब के लिए 2 संतरों (CD) का तथा तीसरे सेब के लिए 1 संतरे (EF) का त्याग करना चाहेगा। वास्तविक जीवन में इसी प्रकार की ही स्थिति होती है। इसीलिए तटस्थता वक्र मूल बिंदु की ओर उन्नतोदर होती है।

3. **दो तटस्थता वक्र एक दूसरे को न तो छूते और न ही काटते हैं (Indifference Curves Never Touch or Intersect Each Other)**—प्रत्येक तटस्थता वक्र संतुष्टि के विभिन्न स्तर को प्रकट करता है, इसलिए ये एक दूसरे को न तो छूते और न ही काटते हैं। चित्र 3.8 में दो तटस्थता वक्र IC_1 तथा IC_2 एक दूसरे को बिंदु 'A' पर काटते हुए दिखाए गए हैं, परंतु वास्तव में ऐसा संभव नहीं है। तटस्थता वक्र IC_1 पर बिंदु 'A' तथा बिंदु 'C' समान संतुष्टि वाले संयोगों को प्रकट कर रहे हैं अर्थात् **'A' संयोग से प्राप्त संतुष्टि = 'C' संयोग से प्राप्त संतुष्टि।**

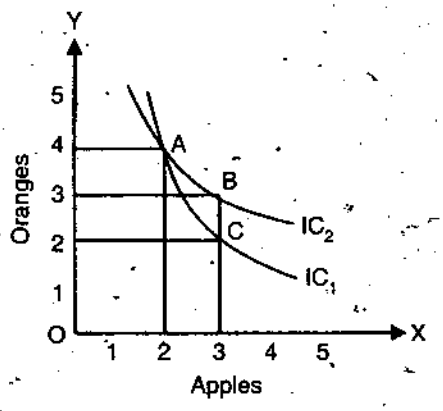

चित्र 3.8

इसी प्रकार तटस्थता वक्र IC_2 पर बिंदु 'A' तथा बिंदु 'B' समान संतुष्टि को प्रकट कर रहे हैं अर्थात् 'A' संयोग से प्राप्त संतुष्टि =B संयोग से प्राप्त संतुष्टि। इसका अर्थ यह हुआ कि 'B' संयोग से प्राप्त संतुष्टि 'C' संयोग से प्राप्त संतुष्टि के बराबर है, **परंतु यह संभव नहीं** है क्योंकि संयोग 'B' में संयोग 'C' की तुलना में संतरों की मात्रा अधिक है बेशक सेबों की मात्रा समान है।

4. **ऊँचा तटस्थता वक्र संतुष्टि के उच्च (अधिक) स्तर को प्रकट करता है (Higher Indifference Curve Indicates Higher Satisfaction)**—तटस्थता वक्रों की यह विशेषता है कि एक तटस्थता मानचित्र में ऊँचा तटस्थता वक्र अपने से नीचे तटस्थता वक्र की अपेक्षा अधिक संतुष्टि प्रकट करता है। इस विशेषता को चित्र 3.9 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में IC_2 ऊँचा तथा IC_1 नीचा तटस्थता वक्र है। IC_2 तटस्थता वक्र का B बिंदु, IC_1 तटस्थता वक्र के बिंदु A की अपेक्षा सेबों की अधिक मात्रा तथा संतरों की समान मात्रा प्रकट कर रहा है। अतएव IC_2 तटस्थता वक्र के बिंदु B से IC_1 तटस्थता वक्र के बिंदु A की अपेक्षा अधिक संतुष्टि प्राप्त होगी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि तटस्थता वक्र जितना ऊँचा होगा उतनी ही अधिक संतुष्टि प्रकट करेगा।

नोट

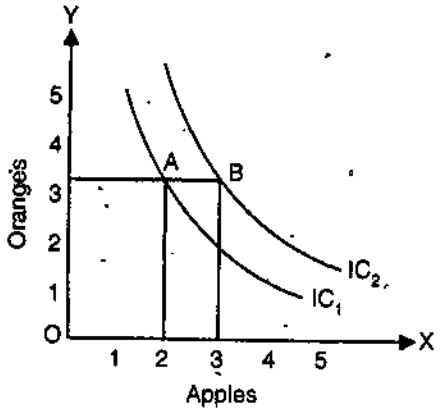

चित्र 3.9

5. **तटस्थता वक्र सामान्यतया न तो OX-अक्ष को और न ही OY-अक्ष को छूता है (Indifference Curve should Generally not Touch X-axis or Y-axis)**—यह मान लिया जाये कि उपभोक्ता वस्तुओं के संयोग खरीदता है। तो तटस्थता वक्र न तो OX-अक्ष और न ही OY-अक्ष को छूता है। यदि तटस्थता वक्र किसी भी अक्ष को छूता है तो इसका अर्थ यह होगा कि उपभोक्ता केवल एक ही वस्तु प्राप्त करना चाहता है। उसकी दूसरी वस्तु के लिए माँग शून्य है। ऐसा केवल उस समय हो सकता है जब दो वस्तुओं में से एक वस्तु मुद्रा है। यदि OY-अक्ष पर मुद्रा की मात्रा प्रकट की गई है तो तटस्थता वक्र OY-अक्ष को स्पर्श कर सकता है। जैसा कि चित्र 3.10 में दिखाया गया है कि IC तटस्थता वक्र OY-अक्ष को बिंदु M पर छू रहा है। इसका अर्थ यह हुआ कि उपभोक्ता मुद्रा की OM मात्रा अपने पास रखना चाहता है और वह सेबों की कोई भी मात्रा खरीदना नहीं चाहता। इसके विपरीत बिंदु N से ज्ञात होता है कि उपभोक्ता मुद्रा की OP मात्रा तथा सेबों की OQ मात्रा के संयोग को पसंद करता है। इस संयोग से उपभोक्ता को उतनी ही संतुष्टि प्राप्त होगी जितनी उसे केवल मुद्रा को अपने पास रखने से अर्थात् OM संयोग से प्राप्त होती है।

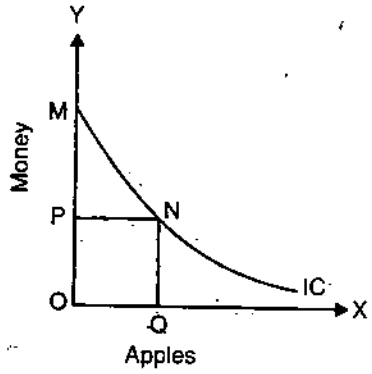

चित्र 3.10

6. **तटस्थता वक्रों का एक-दूसरे के समानांतर होना आवश्यक नहीं (Indifference Curve Need not be Parallel to Each Other)**—जैसा कि चित्र 3.11 में दिखाया गया है कि तटस्थता वक्र एक दूसरे के समानांतर हो भी सकते हैं अथवा नहीं भी हो सकते। यह इस बात पर निर्भर करता है कि तटस्थता वक्र मानचित्र पर बनाई गई दो तटस्थता वक्रों की सीमांत प्रतिस्थापन दर क्या है। यदि दो वक्रों के विभिन्न बिंदुओं की सीमांत प्रतिस्थापन दर एक स्थिर अनुपात में ही घटती है तो ये वक्र समानांतर होंगे अन्यथा ये समानांतर नहीं होंगे।

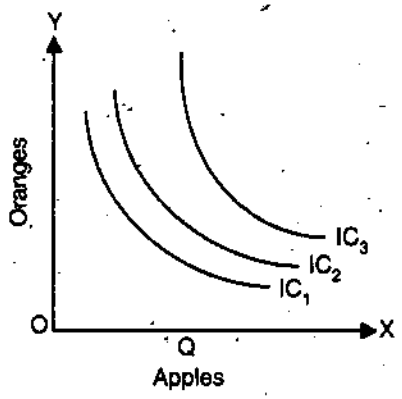

चित्र 3.11

3.12. तटस्थता वक्रों के आकार के कुछ अपवाद (Some Exceptional Shapes of Indifference Curves)

निम्नलिखित चित्र तटस्थता वक्रों के कुछ अपवादों को प्रकट करते हैं–

1. **अपवाद 1: सीधी रेखा तटस्थता वक्र-पूर्ण प्रतिस्थापन वस्तुएँ (Exception 1: Straight Line Indifference Curve-Perfect Substitutes)**–यदि वस्तु X तथा वस्तु Y पूर्ण प्रतिस्थापन हैं तो उनकी सीमांत प्रतिस्थापन दर (MRS) 1:1 होगी। **दो वस्तुएँ स्थानापन्न तब होती हैं जब उपभोक्ता एक वस्तु का दूसरी वस्तु के लिए समान दर पर प्रतिस्थापन करेगा।** पूर्ण प्रतिस्थापन वस्तुओं के लिए तटस्थता वक्रें जैसा चित्र 3.12 में दिखाया गया है, सरल रेखाएँ होती हैं। इन वक्रों के प्लान द्वारा दो वस्तुओं की प्रतिस्थापन दर स्पष्ट हो जाती है।

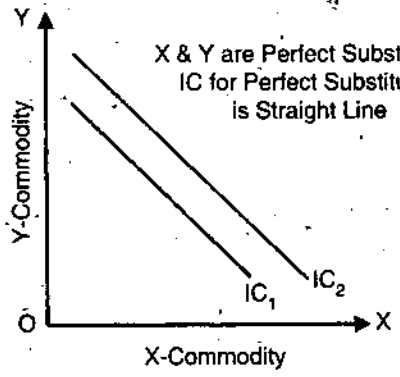

चित्र 3.12

2. **अपवाद 2: L प्रकार की (समकोणीय) तटस्थता वक्र-पूर्ण पूरक वस्तुएँ (Exception 2: L Shaped (Right Angled) Indifference Curve : Perfect Complements)**– पूर्ण पूरक वस्तुओं की तटस्थता वक्र जैसा कि चित्र 3.13 में दिखाया गया है। **L-प्रकार की** (समकोणीय) होती हैं। **पूर्ण पूरक वस्तुएँ वे हैं जिनका एक निश्चित अनुपात में एक साथ उपयोग किया जाता है।** उदाहरण के लिए, दाएँ पैर का जूता तथा बाएँ पैर का जूता पूर्ण प्रतिस्थापन है क्योंकि इनमें से एक के बिना दूसरे का कोई उपयोग नहीं है। जब उपभोक्ता के पास इनकी एक न्यूनतम संख्या है तो ऐसी कोई दर नहीं है जिस पर एक जूते का दूसरे के लिए प्रतिस्थापन किया जा सकता है।

नोट

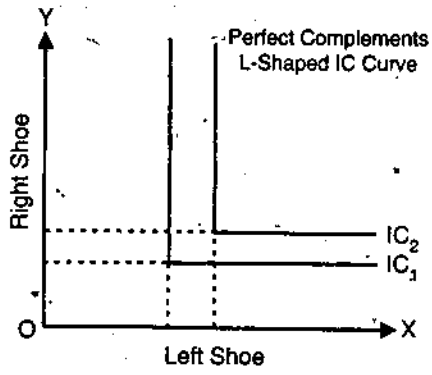

चित्र 3.13

3. **अपवाद 3: पड़ी हुई सरल रेखा तटस्थता वक्र वस्तु जिससे शून्य संतुष्टि प्राप्त होती है (Horizontal Indifference Curve - A Good that Gives Zero Satisfaction)** –जब किसी वस्तु से शून्य संतुष्टि प्राप्त होती है तो उपभोक्ता उस वस्तु की एक इकाई भी प्राप्त करने के लिए दूसरी वस्तु की न्यूनतम मात्रा का भी त्याग नहीं करना चाहेगा। उदाहरण के लिए, धूम्रपान नहीं करने वाले व्यक्ति के लिए सिगरेट की तटस्थता वक्र, जैसा कि चित्र 3.14 में दिखाया गया है, पड़ी हुई सरल रेखा होगी। उस वस्तु की तटस्थता वक्र जिससे शून्य संतुष्टि प्राप्त होती है **OX** (जिस पर शून्य संतुष्टि वाली वस्तु को दिखाया गया है) के समानांतर होगी।

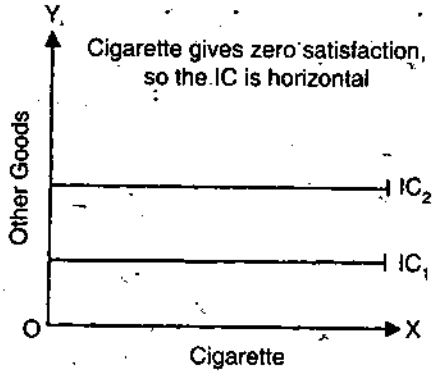

चित्र 3.14

4. **अपवाद 4: U आकार का तटस्थता वक्र : ऋणात्मक उपयोगिता वाली वस्तु (Exceptional 4: U Shaped Indifference Curve A Good that Gives Negative Utility)**–यदि किसी वस्तु के उपभोग से एक सीमा के पश्चात ऋणात्मक उपयोगिता प्राप्त होती है तो उसकी तटस्थता वक्र, उदाहरण के लिए, जैसा कि चित्र 3.15 में दिखाया गया है **'U'** आकार की होगी। उदाहरण के लिए, बिंदु **Q** पर उपभोक्ता को जितना भोजन चाहिए वह मिल जाता है। बिंदु **Q** के पश्चात तटस्थता वक्र का ढलान **धनात्मक (Positive)** हो जाता है। इससे प्रकट होता है कि अतिरिक्त भोजन का उपभोग करने से उपभोक्ता को ऋणात्मक उपयोगिता प्राप्त होगी। इसलिए वह उस वस्तु के उपयोग से बचने के लिए दूसरी वस्तु की कुछ मात्रा का त्याग करने के लिए इच्छुक होगा। इसलिए किसी वस्तु का एक सीमा तक उपभोग करने के पश्चात उसके प्रति एक उपभोग से प्राप्त उपयोगिता ऋणात्मक हो जाती है तो तटस्थता वक्र का ढलान धनात्मक हो जाता है।

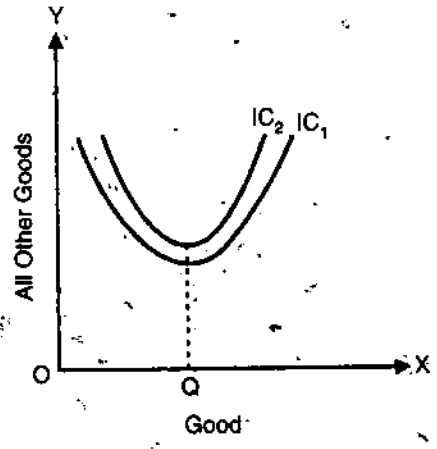

चित्र 3.15

3.13. बजट रेखा या कीमत रेखा (Budget Line or Price Line)

तटस्थता वक्र स्वयं उपभोक्ता के व्यवहार की सामान्यतया भविष्यवाणी नहीं कर सकता क्योंकि यह दो महत्त्वपूर्ण सूचनाओं को छोड़ देता है, वे हैं उपभोक्ता की आय तथा वस्तुओं की कीमतें। कीमत और आय की सूचना एक तटस्थता चित्र में एक अन्य रेखा द्वारा प्रदान की जाती है, इस रेखा को बजट रेखा या कीमत रेखा कहा जाता है।

तटस्थता वक्र विश्लेषण द्वारा उपभोक्ता संतुलन की स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए बजट रेखा का अध्ययन आवश्यक है। इस रेखा को **कीमत रेखा (Price Line), उपभोग संभावित रेखा (Consumption Possibility Curve) अथवा प्राप्त होने वाले संयोगों की रेखा** (Line of Attainable Combinations) भी कहा जाता है।

हिब्डन के अनुसार, **"बजट रेखा वह रेखा है जो दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को प्रकट करती है जिन्हें उपभोक्ता एक दी हुई मौद्रिक आय तथा दो वस्तुओं की दी हुई कीमत पर खरीद सकता है।"** (The budget line is that line which shows all the different combinations of the two commodities that a consumer can purchase given his money income and the price of two commodities. **—Hibbdon)**

व्याख्या (Explanation)

मान लीजिए उपभोक्ता की आय ₹ 4.00 है, वह सेबों तथा संतरों पर अपनी सारी आय खर्च करना चाहता है। संतरे की कीमत 50 पैसे प्रति संतरा तथा सेब की कीमत ₹ 1.00 प्रति सेब है। अपनी निश्चित आय तथा सेबों एवं संतरों की निश्चित कीमत से उपभोक्ता इन दोनों वस्तुओं के जो विभिन्न संयोग खरीद सकता है उन्हें तालिका 3.5 और चित्र 3.16 द्वारा प्रकट किया जा सकता है।

तालिका 3.5. वैकल्पिक उपभोग संभावनाएँ
(Alternative Consumption Possibilties)

संयोग	*आय (रुपये)*	*सेब कीमत = (₹ 1.00)*	*संतरे कीमत = (50 पैसे)*
A	4.00	0 +	8
B	4.00	1 +	6

नोट

C	4.00	2 +	4
D	4.00	3 +	2
E	4.00	4 +	0

तालिका 3.5 से ज्ञात होता है कि यदि उपभोक्ता केवल संतरे खरीदना चाहता है तो वह अपनी ₹ 4 की निश्चित आय से अधिक से अधिक 8 संतरे खरीद सकता है। इसके विपरीत यदि उपभोक्ता केवल सेब ही खरीदना चाहता है तो वह अपनी निश्चित आय से अधिक से अधिक 4 सेब खरीद सकता है। सेबों तथा संतरों की इन सीमाओं के बीच बनने वाले कई संयोग जैसे 6 संतरे +1 सेब, 4 संतरे +2 सेब, 2 संतरे +3 सेब भी खरीद सकता है।

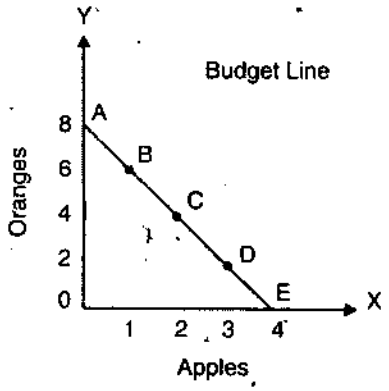

चित्र 3.16

चित्र 3.16 में दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को **AE** रेखा द्वारा दर्शाया गया है। इस रेखा को बजट रेखा या कीमत रेखा कहा जाता है। चूँकि हम मान कर चलते हैं कि उपभोक्ता अपनी सारी आय इन दोनों वस्तुओं के उपभोग पर खर्च करता है, इसलिए **AE** बजट रेखा या कीमत रेखा उपभोक्ता की सीमा रेखा **(Limit Line)** है। बजट रेखा का ढलान उसके द्वारा प्रकट की गई दोनों वस्तुओं सेबों तथा संतरों की कीमतों का अनुपात है; अर्थात्

बजट रेखा का ढलान (Slope of Budget Line) $= \frac{P_a}{P_o}$; (यहाँ P_a = सेबों की कीमत तथा P_o = संतरों की कीमत)

लिप्सी के अनुसार, **"बजट रेखा का ढलान दो कीमतों के अनुपात का ऋणात्मक होता है। (उस वस्तु की कीमत को जिसे पड़े या OX-अक्ष द्वारा प्रकट किया गया है, अंश (Numerator) के रूप में प्रयोग किया गया है।)"** (The slope of the budget line is the negative of the ratio of two prices with the price of the goods that is placed on the horizontal OX-axis appearing in the numerator. **—Lipsey)**

3.14. बजट रेखा की विशेषताएँ (Properties of Budget Line)

यदि दोनों वस्तुओं की कीमतें निश्चित या स्थिर हैं तब बजट रेखा में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं–

1. यह एक सीधी या सरल रेखा होगी।
2. इसका ढलान ऋणात्मक होगा।
3. इसका ढलान दो वस्तुओं अर्थात् संतरों और सेबों की कीमतों के अनुपात के ऋणात्मक विपरीत **(Negative Inverse)** के बराबर $= (-) \frac{P_a}{P_o}$ होगा।

4. यदि दो बजट रेखाएँ वस्तु की समान कीमतें परंतु आय के विभिन्न स्तरों को प्रदर्शित करती हैं, तब दोनों रेखाएँ समानांतर **(Parallel)** होंगी।

3.15. बजट रेखा या कीमत रेखा का स्थानांतरण (Shifting of the Budget Line or Price Line)

नोट

बजट रेखा की स्थिति तथा ढलान दो तत्त्वों पर निर्भर करती है–(1) उपभोक्ता की आय और (2) उन दो वस्तुओं की कीमतों जिन्हें उपभोक्ता खरीदना चाहता है। बजट रेखा में निम्न प्रकार के परिवर्तन हो सकते हैं–

1. **आय में परिवर्तन (Change in Income)**–यदि दोनों वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन नहीं होता तब **आय बढ़ने से बजट रेखा ऊपर की ओर सरक जाएगी और आय के कम होने से बजट रेखा नीचे की ओर सरक जाएगी।** अन्य शब्दों में, जब दोनों वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहती हैं परंतु उपभोक्ता की आय में परिवर्तन आ जाता है तब बजट रेखा की स्थिति में परिवर्तन आ जाता है परंतु ढलान में कोई परिवर्तन नहीं आता। चित्र 3.17 से ज्ञात होता है कि जब उपभोक्ता की आय ₹ 4.00 थी तो वह **AB** रेखा द्वारा प्रकट किए गए सेबों और संतरों के संयोग खरीद सकता था। यदि उपभोक्ता की आय बढ़कर ₹ 5 हो जाती है तथा सेबों और संतरों की कीमतें अपरिवर्तित रहती हैं तो उपभोक्ता सेब और संतरे दोनों ही वस्तुएँ पहले से अधिक खरीद सकेगा। अब वह 4 सेबों के स्थान पर अधिक से अधिक 5 सेब और 8 संतरों के स्थान पर अधिक से अधिक 10 संतरे खरीद सकेगा। **आय बढ़ने से बजट रेखा ऊपर दाईं ओर सरक कर CD हो जाएगी। इसी प्रकार आय के कम होने पर बजट रेखा नीचे बाईं ओर सरक कर EF हो जाएगी, परंतु इनका ढलान समान रहेगा। लिप्सी के शब्दों में, "एक गृहस्वामी की आय में परिवर्तन होने से बजट रेखा में समानांतर खिसकाव होगा, आय बढ़ने पर बजट रेखा बाहर की ओर और आय कम होने पर यह अंदर की ओर सरकेगी।" (A change in household's income shifts the budget line parallel to itself, outwards when income rises and inwards when income falls.–Lipsey)**

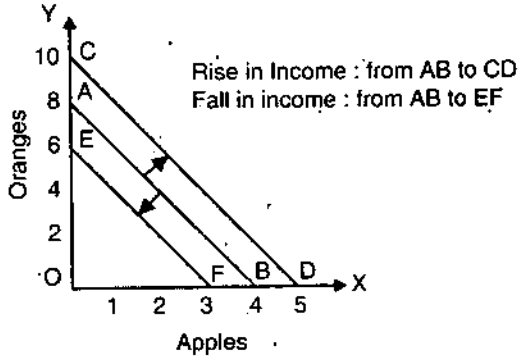

चित्र 3.17

2. **सभी कीमतों में आनुपातिक परिवर्तन (A Proportionate Change in All Prices)**–जब मौद्रिक आय के स्थिर रहने पर, सभी कीमतों में एक ही अनुपात में परिवर्तन होता है तब बजट रेखा में समानांतर खिसकाव होता है। कीमतें बढ़ने पर यह मूल बिंदु की ओर और कीमतें घटने पर यह मूल बिंदु से दूर की ओर सरकती है। **अतएव कीमतों में आनुपातिक परिवर्तन के फलस्वरूप बजट रेखा की स्थिति में परिवर्तन आएगा परंतु बजट रेखा के ढलान में परिवर्तन नहीं आएगा।** कीमतों के घटने पर यह ऊपर की ओर तथा कीमतों के बढ़ने पर यह नीचे या पीछे की ओर सरकेगी। इसका वही प्रभाव पड़ेगा जो वास्तविक आय

नोट

में परिवर्तन का प्रभाव पड़ता है। चित्र 3.18 से प्रकट होता है कि जब उपभोक्ता की आय ₹ 4 और सेबों की कीमत 1 रुपया प्रति सेब तथा संतरों की कीमत 50 पैसे प्रति संतरा थी, तब बजट रेखा **AB** थी। जब सेबों तथा संतरों की कीमतों में 50 प्रतिशत कमी आ जाती है और आय स्थिर रहती है, तब बजट रेखा ऊपर की ओर सरक कर **CD** हो जाएगी। इसके विपरीत जब दोनों वस्तुओं की कीमतों में समान अनुपात में वृद्धि होती है तब बजट रेखा पीछे की ओर सरक कर **EF** हो जाएगी।

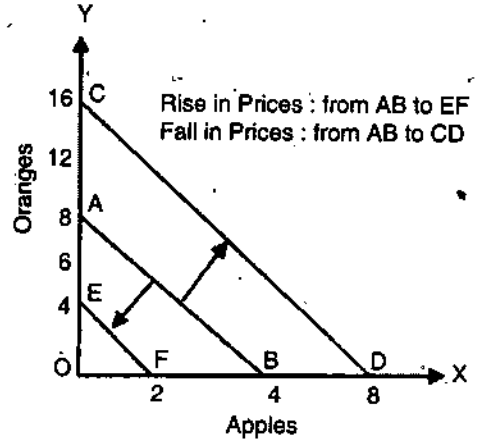

चित्र 3.18

3. **केवल एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन (Change in the Price of One Commodity only)**—जब उपभोक्ता की आय तथा एक वस्तु की कीमत स्थिर रहती है परंतु दूसरी वस्तु की कीमत में परिवर्तन आता है **तब बजट रेखा के ढलान में भी परिवर्तन आ जाता है।** इसका प्रभाव यह होगा कि कीमत रेखा का एक सिरा अपने पहले स्थान पर ही बना रहेगा, परंतु जिस वस्तु की कीमत में परिवर्तन आया है उस वस्तु की ओर वाला सिरा यदि कीमत बढ़ती है तो अपने प्रारंभिक स्थान से पीछे अर्थात् मूल बिंदु की ओर सरक जाएगा। परंतु यदि कीमत कम होती है तो अपने प्रारंभिक स्थान से आगे अर्थात् **X**-अक्ष पर आगे की ओर सरक जाएगा। चित्र 3.19 से स्पष्ट हो जाता है कि यदि सेबों की कीमत कम हो जाए परंतु उपभोक्ता की आय तथा संतरों की कीमत समान रहे, तब बजट रेखा अपने पूर्व स्थान **AB** से हटकर **AC** हो जाएगी। इस नई स्थिति में उपभोक्ता अधिक सेब खरीदने के योग्य हो जाएगा। यदि सेबों की कीमत बढ़कर ₹ 2 प्रति सेब हो जाती है, तब बजट रेखा पीछे की ओर सरक कर **AD** हो जाएगी, अब उपभोक्ता कम सेब खरीद पाएगा।

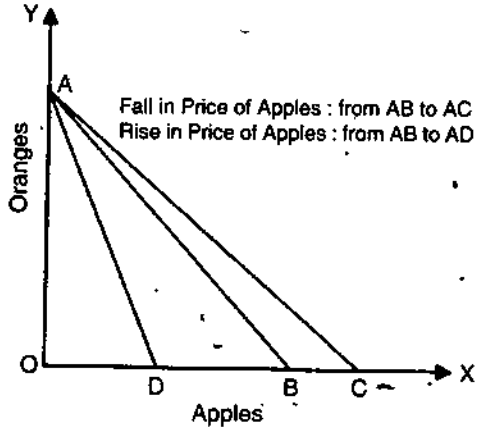

चित्र 3.19

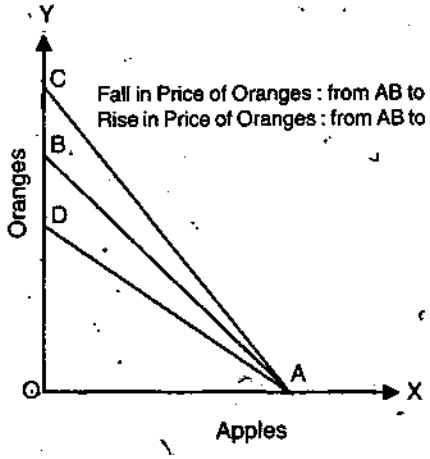

चित्र 3.20

अब मान लीजिए कि सेबों की कीमत स्थिर रहती है परंतु संतरों की कीमत में परिवर्तन आता है। यह मान लिया जाता है कि उपभोक्ता की आय 4.00 रुपये स्थिर रहती है; जैसा कि चित्र 3.20 में दिखाया गया है कि प्रारंभिक बजट रेखा **AB** है। संतरों की कीमतों में गिरावट आने से बजट रेखा सरक कर **AC** हो जाएगी, जो यह व्यक्त करेगी कि उपभोक्ता अपनी समान आय के स्तर से अब अधिक संतरे खरीद सकता है। इसके विपरीत यदि संतरों की कीमत में वृद्धि होती है तब बजट रेखा पीछे की ओर सरक कर **AD** हो जाएगी जो यह संकेत देगी कि उपभोक्ता अपनी स्थिर आय से अब संतरों की कम संख्या खरीद सकता है। **संक्षेप में, अन्य बातें समान रहने पर दो वस्तुओं में से एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने के फलस्वरूप बजट रेखा के ढलान में परिवर्तन होता है।**

3.16. उपभोक्ता संतुलन (Consumer's Equilibrium)

प्रत्येक उपभोक्ता अपने एक निश्चित व्यय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है। एक उपभोक्ता तटस्थता वक्र विश्लेषण की सहायता से यह ज्ञात कर सकता है कि विभिन्न वस्तुओं के संयोगों पर उसे अपनी सीमित आय किस प्रकार व्यय करनी चाहिए जिससे कि वह अधिकतम संतुष्टि प्राप्त कर सके। जब उपभोक्ता अपनी सीमित आय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त कर रहा होता है तो इस अवस्था को उपभोक्ता संतुलन की अवस्था कहा जाता है। अत: **उपभोक्ता संतुलन से अभिप्राय ऐसी स्थिति से है जिसमें उपभोक्ता एक निश्चित आय तथा निश्चित कीमतों पर वस्तुओं तथा सेवाओं का एक ऐसा संयोग खरीदता है जिससे उसे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो रही हो और वह उसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन करने का इच्छुक न हो।**

कौतसुवयानी के शब्दों में, **"उपभोक्ता उस समय संतुलन में होता है जब वह अपनी निश्चित आय तथा बाजार कीमतों पर अपनी संतुष्टि को अधिकतम करता है।" (The consumer is in equilibrium when he maximises his satisfaction given his income and the market prices.**

—Koutsoyiannis)

3.17. उपभोक्ता संतुलन की दो आधारभूत शर्तें (Two Basic Conditions of Consumer's Equilibrium)

उपभोक्ता संतुलन वहाँ पाया जाता है जहाँ बजट रेखा और उन्नतोदर तटस्थता वक्र के बीच स्पर्श (Tangency) पाया जाता है।

कौतसुवयानी के अनुसार, **"उपभोक्ता संतुलन की मुख्य शर्तें दो हैं"–**

नोट

(i) कीमत रेखा तटस्थता वक्र की स्पर्श रेखा (Tangent) होनी चाहिए अर्थात् X के लिए Y की सीमांत प्रतिस्थापन की दर उनकी कीमतों के अनुपातों के बराबर हो $MRSxy = \frac{P_x}{P_y}$।

(ii) तटस्थता वक्र मूल बिंदु की ओर उन्नतोदर होनी चाहिए।

(i) **बजट रेखा अथवा कीमत रेखा तटस्थता वक्र की स्पर्श रेखा होनी चाहिए (Budget Line or Price Line should be Tangent to Indifference Curve)**–चित्र 3.21 में AB बजट या कीमत रेखा है। IC_1, IC_2 तथा IC_3 तटस्थता वक्र हैं। एक उपभोक्ता AB कीमत रेखा पर व्यक्त सेबों और संतरों के A, B, C, D तथा E किसी भी संयोग को खरीद सकता है। वह IC_3 पर कोई भी संयोग नहीं ले सकता क्योंकि वह कीमत रेखा AB से दूर है। वह उन्हीं संयोगों को खरीद सकता है जो न केवल कीमत रेखा AB पर स्थित हैं बल्कि उससे संबंधित सबसे ऊँचे तटस्थता वक्र पर हैं। यहाँ यह वक्र IC_2 है। A, B, C, D तथा E संयोगों में से उपभोक्ता **D संयोग (4 संतरे + 2 सेब) पर संतुलन की स्थिति** में होगा क्योंकि इस बिंदु पर कीमत रेखा (AB) सबसे ऊँचे तटस्थता वक्र IC_2 की स्पर्श रेखा है। इसमें कोई शक नहीं कि उपभोक्ता 'C' या 'E' संयोगों को भी खरीद सकता है। परंतु ये उसे अधिकतम संतुष्टि प्रदान नहीं करेंगे क्योंकि ये निचली तटस्थता वक्र IC_1 पर स्थित हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि कीमत रेखा तथा तटस्थता वक्र का **स्पर्श रेखा बिंदु (Point of Tangency)** उपभोक्ता संतुलन बिंदु है। **वाटसन** के शब्दों में, **"जब उपभोक्ता संतुलन की अवस्था में होता है तो उसकी सबसे ऊँची प्राप्त होने योग्य तटस्थता वक्र, बजट रेखा की, स्पर्श रेखा होती है।" (When consumer is in equilibrium, his highest attainable indifference curve is tangent to budget line.–Watson)**। संतुलन बिंदु 'D' पर कीमत रेखा तथा तटस्थता वक्र का ढलान एक दूसरे के बराबर है। तटस्थता वक्र का ढलान X वस्तु की Y वस्तु के लिए सीमांत प्रतिस्थापन दर (MRS_{xy}) है तथा कीमत रेखा का ढलान X-वस्तु की कीमत P_x तथा Y-वस्तु की कीमत P_y का अनुपात है।

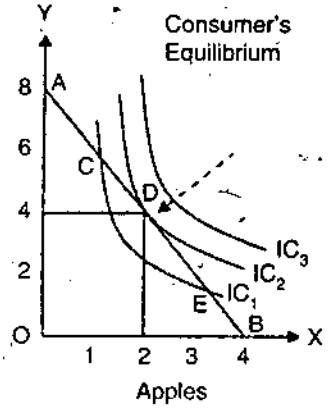

चित्र 3.21

संतुलन की स्थिति में–

$$\text{Slope of Indifference Curve} = \text{Slope of Budget or Price Line or } MRS_{xy} = \frac{P_x}{P_y}$$

संक्षेप में, उपभोक्ता संतुलन की पहली शर्त यह है कि कीमत रेखा तटस्थता वक्र की स्पर्श रेखा होनी चाहिए अर्थात् X-वस्तु के लिए Y-वस्तु की सीमांत प्रतिस्थापन की दर तथा X और Y वस्तुओं की कीमतों का अनुपात बराबर होना चाहिए।

नोट

(ii) तटस्थता वक्र मूल बिंदु की ओर उन्नतोदर होनी चाहिए (Indifference Curve must be Convex to the Origin)–संतुलन की दूसरी शर्त यह है कि संतुलन बिंदु पर तटस्थता वक्र मूल बिंदु की ओर उन्नतोदर होनी चाहिए। इसका अर्थ यह है कि X-वस्तु की Y-वस्तु के लिए सीमांत प्रतिस्थापन दर घटती हुई होनी चाहिए। यदि संतुलन बिंदु पर तटस्थता वक्र **उन्नतोदर (Convex)** न होकर **नतोदर (Concave)** है तो यह संतुलन की स्थाई स्थिति नहीं होगी। इस तथ्य को **हिक्स** ने चित्र 3.22 द्वारा स्पष्ट किया है।

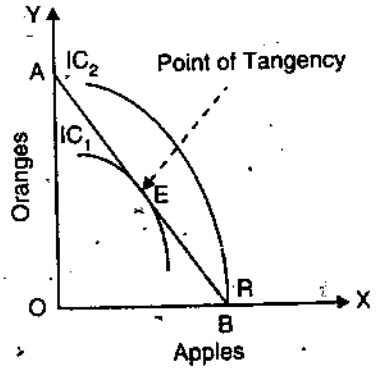

चित्र 3.22

चित्र 3.22 में AB कीमत रेखा है। IC_1 तटस्थता वक्र है। बिंदु 'E' पर कीमत रेखा AB तटस्थता वक्र IC_1 की स्पर्शीय रेखा है। अतएव बिंदु 'E' पर सीमांत प्रतिस्थापन की दर तथा वस्तुओं की कीमतों का अनुपात बराबर है परंतु बिंदु 'E' एक स्थाई संतुलन बिंदु नहीं है। इस बिंदु पर सीमांत प्रतिस्थापन की दर घटती हुई नहीं बल्कि बढ़ती हुई है। अर्थात् बिंदु E पर तटस्थता वक्र मूल बिंदु O की ओर **नतोदर (Concave)** है और इसलिए संतुलन की दूसरी शर्त का यह उल्लंघन है। इसका अर्थ यह हुआ कि बिंदु E से बाएँ या दाएँ हटने पर उपभोक्ता ऊँची तटस्थता वक्र पर पहुँच जाएगा। अतएव बिंदु E पर संतुलन स्थाई नहीं होगा। स्पर्शीय बिंदु E दिए हुए वक्र पर अधिकतम संतुष्टि को व्यक्त नहीं करता। असल में स्पर्शीय बिंदु E निचली तटस्थता वक्र पर न्यूनतम संतुष्टि का बिंदु होगा, **जबकि सबसे ऊँचा तटस्थता वक्र बजट रेखा के सिरे वाले बिंदुओं में से एक बिंदु पर पर होगा** (जैसा कि चित्र में R बिंदु से प्रकट होता है)। बजट रेखा AB पर बाईं या दाईं ओर सरक कर ऊँचे तटस्थता वक्रों को तब तक प्राप्त किया जा सकता है जब तक कि उपभोक्ता तटस्थता वक्र IC_2 के बिंदु R पर नहीं पहुँच जाता। यह बिंदु **किनारे वाले संतुलन (Corner Equilibrium)** की स्थिति को बतलाता है। अन्य शब्दों में, यदि तटस्थता वक्र नतोदर है तब संतुलन की अवस्था एक किनारे अथवा दूसरे किनारे पर होगी, जो यह प्रकट करेगी कि केवल एक ही वस्तु का उपभोग होगा। किनारे वाले संतुलन के बिंदु R पर उपभोक्ता केवल सेब ही खरीदता है, संतरे नहीं। अत: उपभोक्ता स्थिर संतुलन तब ही प्राप्त करेगा। जब तटस्थता वक्र न केवल बजट रेखा को स्पर्श कर रहा हो बल्कि मूल बिंदु की ओर उन्नतोदर भी हो।

3.18. उपभोक्ता संतुलन पर वस्तु की कीमत में होने वाले परिवर्तन का प्रभाव (Effect of Change in Commodity Price on Consumer's Equlibrium)

किसी वस्तु की कीमत में होने वाले परिवर्तन का उसकी माँगी गई मात्रा पर पड़ने वाला प्रभाव **कीमत-प्रभाव (Price Effect)** कहलाता है। इसे प्राय: दो भागों में बाँटा जाता है। (*i*) आय प्रभाव, (*ii*) प्रतिस्थापन प्रभाव

कीमत प्रभाव = आय प्रभाव और प्रतिस्थापन प्रभाव

नोट

3.19. कीमत प्रभाव (Price Effect)

कीमत प्रभाव वस्तुओं के उपभोग में होने वाले उस परिवर्तन को प्रकट करता है जो दो वस्तुओं में से किसी एक की कीमत में परिवर्तन के कारण संभव होता है जबकि दूसरी वस्तु की कीमत तथा उपभोक्ता की आय स्थिर रहती है। (The Price effect may be defined as the change in the consumption of the goods, when the price of either of the two goods changes while the price of the other goods and the income of the consumer remains constant.)

रिचर्ड जी. लिप्सी के शब्दों में, "कीमत प्रभाव से यह स्पष्ट होता है कि उपभोक्ता की मौद्रिक आय तथा एक वस्तु की कीमत स्थिर रहने पर दूसरी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने के कारण दोनों वस्तुओं के उपभोग में परिवर्तन होने का उपभोक्ता के संतुलन अथवा संतुष्टि पर कितना प्रभाव पड़ता है।" (The Price effect shows how much satisfaction of the consumer varies due to change in the consumption of two goods as the price of one changes, the price of the other and money income remains constant. **—Richard G. Lipsey)**

मान लीजिए उपभोक्ता की आय ₹ 4.00 स्थिर रहती है और संतरों की कीमत 50 पैसे प्रति संतरा भी स्थिर रहती है परंतु सेबों की कीमत में परिवर्तन आता है। सेबों की कीमत में परिवर्तन से उपभोक्ता के संतुलन पर पड़ने वाले प्रभाव को **कीमत प्रभाव** कहा जाता है। कीमत प्रभाव की व्याख्या चित्र 3.23 की सहायता से की जा सकती है। मान लीजिए **IC** प्रारंभिक तटस्थता वक्र है तथा **AB** प्रारंभिक कीमत रेखा है और उपभोक्ता बिंदु **'E'** पर संतुलन में है। जब उपभोक्ता की आय तथा संतरों की कीमत स्थिर रहती है परंतु सेबों की कीमत ₹ 1.00 प्रति सेब से कम हो कर 50 पैसे प्रति सेब हो जाती है, तब नई कीमत रेखा **AD** बन जाती है, यह **AD** कीमत रेखा ऊँची तटस्थता वक्र IC_1 को बिंदु **G** पर स्पर्श करती है, बिंदु **G** नया संतुलन बिंदु है। अन्य शब्दों में, सेबों के लिए माँग **ON** से बढ़ कर **OT** हो जाएगी अर्थात् सेबों की माँग में **NT** की वृद्धि हो जायेगी, जिसे **कीमत में कमी के कारण 'कीमत प्रभाव' (Price Effect a Fall in Price)** कहा जाएगा। दूसरी ओर यदि सेबों की कीमत बढ़ कर ₹ 2.00 प्रति सेब हो जाती है, अन्य बातें समान रहें, तब कीमत रेखा पीछे की ओर सरक कर **AC** हो जाएगी। यह तटस्थता वक्र IC_2 को नए संतुलन बिंदु **F** पर स्पर्श करेगी। इससे प्रकट होता है कि सेबों की माँग **ON** से घट कर **OM** हो जाएगी अर्थात् सेबों की माँग में **MN** की कमी होगी जो **कीमत में वृद्धि के कारण कीमत प्रभाव (Price Effect of a Rise in Price)** को प्रदर्शित करती है।

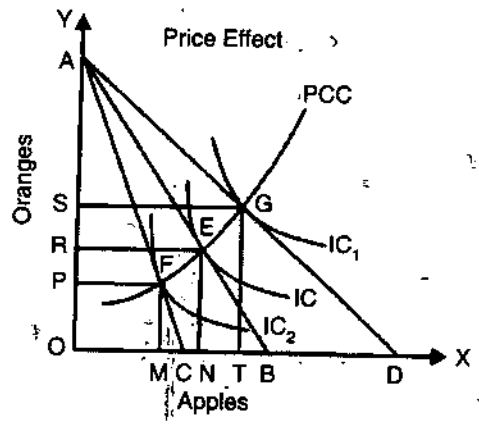

चित्र 3.23

विभिन्न संतुलन बिंदुओं **E, F, G** को मिला देने से जो वक्र प्राप्त होता है उसे **कीमत उपभोग वक्र (Price Consumption Curve-PCC)** कहा जाता है। **वस्तु-X की कीमत उपभोग वक्र उपभोक्ता के उन विभिन्न संतुलन बिंदुओं को प्रदर्शित करती है जब केवल वस्तु-X की कीमत में परिवर्तन आता है जबकि वस्तु-Y की कीमत तथा उपभोक्ता की आय दोनों स्थिर रहते हैं।** (The Price effect

consumption curve for commodity-X represent the points of the consumer's equilibrium when only the price of 'X' is varied, the price of 'Y' and income of the consumer remaining constant.) **अन्य शब्दों में, कीमत उपभोग वक्र (PCC) वह वक्र है जिससे यह ज्ञात होता है कि उपभोक्ता की आय तथा किसी एक वस्तु की कीमत स्थिर रहने पर, केवल दूसरी वस्तु की कीमत में होने वाले परिवर्तन का उपभोक्ता के संतुलन पर क्या प्रभाव पड़ेगा।** कीमत उपभोग वक्र (PCC) के विभिन्न ढलान हो सकते हैं। सामान्यतया इसका ढलान धनात्मक (Positive) होता है। परंतु गिफ्फन पदार्थों से संबंधित PCC का ढलान पीछे को मुड़ा हुआ (Backward Sloping) होता है। परंतु ध्यान देने वाली यह बात भी है कि यह आवश्यक नहीं है कि निम्नकोटि वाली वस्तुओं के लिए इसका ढलान पीछे की ओर (Backward) अवश्य ही हो। कीमत उपभोग वक्र (PCC) की विस्तार-सहित व्याख्या आगे की गई है।

3.20. आय प्रभाव (Income Effect)

आय प्रभाव से अभिप्राय किसी वस्तु की माँगी जाने वाली मात्रा में होने वाले उस परिवर्तन से है जो वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने के कारण उपभोक्ता की वास्तविक आय में परिवर्तन होने के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। कीमत प्रभाव में से आय प्रभाव का अलग से अनुमान लगाने के लिए हमें यह मान लेना चाहिए कि वस्तुओं की तुलनात्मक कीमत अर्थात् Y वस्तु की कीमत की तुलना में X वस्तु की कीमत) में परिवर्तन नहीं होता। अन्य शब्दों में तुलनात्मक कीमत स्थिर रहती है।

यह मान्यता, कि X वस्तु तथा Y वस्तु की तुलनात्मक कीमतें स्थिर रहती हैं, तभी सिद्ध होती हैं जब दो कीमत रेखाएँ एक दूसरे के समांतर खींची जाती हैं क्योंकि समांतर सरल रेखाओं का ढलान बराबर होता है तथा कीमत-रेखा का ढलान वस्तु X तथा Y वस्तु की तुलनात्मक कीमत प्रकट करता है।

3.21. प्रतिस्थापन प्रभाव (Substitution Effect)

प्रतिस्थापन प्रभाव से अभिप्राय किसी वस्तु की माँगी जाने वाली मात्रा में होने वाले उस परिवर्तन से है जब एक वस्तु की कीमत में होने वाले परिवर्तन के कारण वह दूसरी वस्तु की तुलना में सस्ती या महँगी हो जाती है। प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण सस्ती वस्तुओं का हमेशा महँगी वस्तु के लिए प्रतिस्थापन किया जाता है। कीमत प्रभाव में से प्रतिस्थापन प्रभाव को अलग करने के लिए **ये मान लिया जाना चाहिए कि उपभोक्ता की वास्तविक आय स्थिर रहती है। यदि ऐसा नहीं किया गया तो कीमत परिवर्तन के कारण आय प्रभाव को प्रतिस्थापन प्रभाव से अलग करना संभव नहीं होगा।**

3.22. प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव की पहचान या कीमत प्रभाव का प्रतिस्थापन प्रभाव और आय प्रभाव में विभाजन (Identification of Substitution Effect and Income Effect of Splitting Price Effect into Substitution Effect and Income Effect)

कीमत प्रभाव से प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव में विभाजित होने से संबंधित निम्नलिखित दो दृष्टिकोण हैं।

(a) हिक्स का दृष्टिकोण (The Hicksian Approach), और (b) स्टलस्की का दृष्टिकोण (The Slutsky's Approach)

3.23. हिक्स का दृष्टिकोण (The Hicksian Approach)

1. सामान्य वस्तुओं के लिए प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव का अलगाव (Separation of Substitution Effect and Income Effect for Normal Goods)

सामान्य वस्तुएँ वे वस्तुएँ हैं जिनका प्रतिस्थापन प्रभाव ऋणात्मक परंतु आय प्रभाव धनात्मक

नोट

(Positive) होता है। वास्तव में, **प्रतिस्थापन प्रभाव सदैव ऋणात्मक होता है।** इसका अर्थ है कि किसी वस्तु की माँगी गई मात्रा में वृद्धि होती है जब वह सापेक्षिक रूप में सस्ती हो जाती है और माँग में कमी हो जाती है जब वह सापेक्षिक रूप में महँगी हो जाती है। **धनात्मक आय प्रभाव** का अर्थ है कि वस्तु की कीमत के गिरने से वास्तविक आय में वृद्धि होती है जिससे माँगी गई मात्रा बढ़ती है। अन्य शब्दों में, आय प्रभाव वास्तविक आय तथा माँगी गई मात्रा में सदा प्रत्यक्ष संबंध को प्रकट करता है परंतु कीमत और माँगी गई मात्रा के बीच ऋणात्मक संबंध का संकेत देता है। अन्य शब्दों में, **धनात्मक आय प्रभाव उसी दिशा में संचालित होता है जिस दिशा में ऋणात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव संचालित होता है। (Positive income effect moves in the same direction as the negative substitution effect.)** इसका अभिप्राय यह है कि कीमत परिवर्तन के कारण प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव दोनों सामान्य वस्तु के अधिक उपभोग को व्यक्त करते हैं जब उस वस्तु की कीमत में गिरावट आती है। चूँकि कीमत प्रभाव, आय तथा प्रतिस्थापन प्रभाव का संयोग है इसलिए लोग सामान्य वस्तु की माँग अधिक करते हैं जब उस वस्तु की कीमत घटती है। संक्षेप में, प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव दोनों ही कीमत और माँगी गई मात्रा के बीच विपरीत संबंध को व्यक्त करते हैं। इसलिए सामान्य वस्तुओं के लिए माँग वक्र का ढलान सदा बाएँ से दाएँ नीचे की ओर **(Downwards Slope)** होता है।

(a) कीमत वृद्धि की स्थिति में सामान्य वस्तु के लिए प्रतिस्थापन और आय प्रभावों का अलगाव (Separation of Substitution and Income Effects for a Normal Goods in Case of Price Rise)–सामान्य वस्तुओं की कीमत वृद्धि की स्थिति में प्रतिस्थापन तथा आय प्रभाव के अलगाव की चित्र 3.24 के द्वारा व्याख्या की जा सकती है।

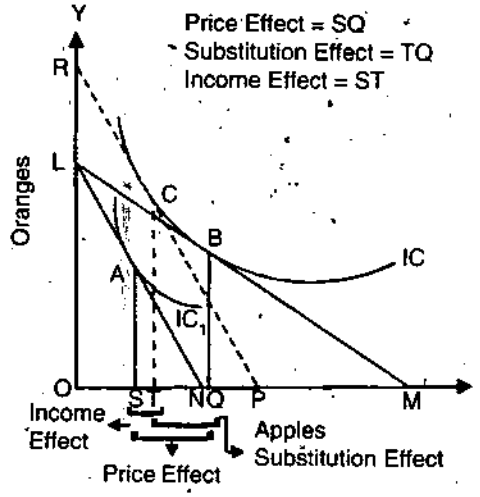

चित्र 3.24

चित्र 3.24 यह व्यक्त करता है कि **LM प्रारंभिक कीमत रेखा है। उपभोक्ता तटस्थता वक्र IC** के बिंदु **B** संतुलन में है। वह सेबों की **OQ** इकाइयाँ खरीदता है। जब सेबों की कीमत में वृद्धि होती है तो कीमत रेखा पीछे की ओर सरक कर **(Shifting Inwards) LN** हो जाती है। उपभोक्ता तटस्थता वक्र IC_1 के बिंदु **A** पर नए संतुलन की स्थिति को प्राप्त करता है। इस बिंदु पर वह सेबों की **OS** इकाइयाँ खरीदता है। बिंदु **B** से **A** पर संचलन **(Movement)** से कीमत प्रभाव का संकेत मिलता है

अथवा माँगी गई मात्रा का **OQ** से कम होकर **OS** हो जाना कीमत प्रभाव को बतलाता है। अन्य शब्दों में, कीमत प्रभाव = **OQ – OS = SQ**। सेबों की कीमत में वृद्धि उपभोक्ता की

वास्तविक आय में कमी को बतलाती है जो तटस्थता वक्र IC के सरक कर नीची तटस्थता वक्र IC_1 हो जाने से ज्ञात होती है। यदि उपभोक्ता की मौद्रिक आय इतनी बढ़ा दी जाये कि वह प्रारंभिक तटस्थता वक्र IC पर बना रहे अर्थात् उसकी वास्तविक आय स्थिर रहे, तब नई कीमत रेखा RP होगी। यह तटस्थता वक्र IC को बिंदु C पर स्पर्श कर रही है। यह कीमत रेखा LN के समानांतर है अर्थात् जो सेबों की कीमत वृद्धि के बाद LN द्वारा प्रकट किये जाने वाले नए कीमत अनुपात के अनुरूप है।

1. **प्रतिस्थापन प्रभाव (Substitution Effect)**–प्रारंभिक संतुलन बिंदु B से C पर संचलन द्वारा प्रतिस्थापन प्रभाव प्रकट होता है, दोनों बिंदु उसी तटस्थता वक्र पर स्थित हैं। प्रतिस्थापन प्रभाव के फलस्वरूप सेबों की माँगी गई मात्रा OQ से कम हो कर OT हो जायेगी। अन्य शब्दों में

$$\text{प्रतिस्थापन प्रभाव} = OQ - OT = TQ$$

2. **आय प्रभाव (Income Effect)**–बिंदु C से बिंदु A पर संचलन द्वारा आय प्रभाव प्रकट होता है। अन्य शब्दों में, यह ST होगा।

$\therefore$ **कीमत प्रभाव** = SQ **प्रतिस्थापन प्रभाव** = TQ; **आय प्रभाव** = ST

अतः SQ (**कीमत प्रभाव**) = TQ (**प्रतिस्थापन प्रभाव**) + ST (**आय प्रभाव**)

(*b*) कीमत में कमी की स्थिति में सामान्य वस्तु के प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव का अलगाव (Separation of Substitution Effect and Income Effect in Case of a Normal Goods for a Price Fall)–कीमत के गिरने के फलस्वरूप वस्तु के प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव के अलगाव की व्याख्या निम्न प्रकार की जा सकती है।

जे. आर. हिक्स (J. R. Hicks) द्वारा प्रस्तुत प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव के अलग-अलग होने की व्याख्या चित्र 3.25 द्वारा की जा सकती है।

मान लीजिए AB प्रारंभिक बजट रेखा तथा IC प्रारंभिक तटस्थता वक्र है। उपभोक्ता बिंदु E पर संतुलन में है। जब सेबों की कीमत घटती है, तथा संतरों की कीमत और उपभोक्ता की आय स्थिर रहती है तब नई बजट रेखा AB से सरक कर AC हो जाती है। नई बजट रेखा तटस्थता वक्र IC_1 को बिंदु E_1 पर स्पर्श करती है जो कि उपभोक्ता का नया संतुलन बिंदु है। संतुलन बिंदु E से नए संतुलन बिंदु E_1 पर संचलन सेबों की कीमत में परिवर्तन के प्रभाव को व्यक्त करता है। सेबों के उपभोग के रूप में कीमत प्रभाव OT तथा OM के अंतर MT के बराबर है। सेबों की कीमत के घटने का अर्थ उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि होना है। यदि उपभोक्ता की मौद्रिक आय इस सीमा तक घटा दी जाए कि वह प्रारंभिक तटस्थता वक्र पर ही बना रहे अथवा उसकी वास्तविक आय पहले जितनी ही बनी रहे, तब नई बजट रेखा PH होगी और नया संतुलन बिंदु E_2 होगा।

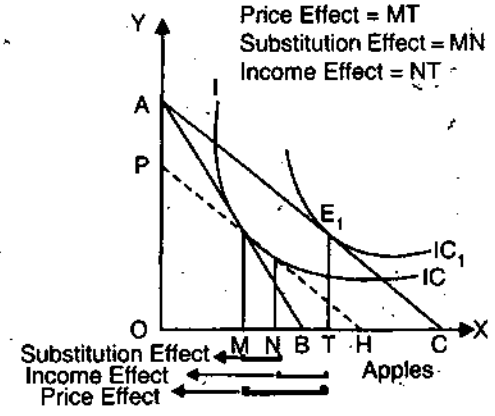

चित्र 3.25

नोट

1. **प्रतिस्थापन प्रभाव**–प्रारंभिक संतुलन बिंदु E से E_2 पर संचलन द्वारा व्यक्त होता है क्योंकि दोनों बिंदु उसी तटस्थता वक्र (IC) पर स्थित हैं।
2. **आय प्रभाव NT** (बिंदु E_1 से बिंदु E_2 तक) द्वारा प्रकट हो रहा है। बिंदु E_2 द्वारा प्रकट किये गये संयोग को खरीदने का मुख्य कारण यह है कि बेशक उपभोक्ता की वास्तविक आय स्थिर है फिर भी वह महँगे संतरों के लिए सस्ते सेबों का प्रतिस्थापन करता है। संतुलन बिंदु E से नए संतुलन बिंदु E_2 पर **संचलन (Movement)** संतरों की कीमत की तुलना में सेबों की कीमत में होने वाली कमी के प्रभाव को प्रकट करता है। सेबों की माँग पर MN के बराबर प्रभाव पड़ता है। जिसे **प्रतिस्थापन प्रभाव** कहा जाता है।

अन्य शब्दों में, सेबों की कीमत में कमी के कारण उपभोक्ता सेबों की अधिक इकाइयाँ खरीदता है, इसे **कीमत प्रभाव** कहा जाता है। चित्र में उपभोक्ता सेबों की **MT** अधिक इकाइयाँ खरीदता है। इनमें से MN अधिक इकाइयाँ प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण और NT अधिक इकाइयाँ आय प्रभाव के कारण खरीदता है। इसका अर्थ है कि सेबों की माँग के संदर्भ में :

आय प्रभाव एक तटस्थता वक्र से दूसरी तटस्थता वक्र पर खिसकाव के द्वारा प्रकट होता है। इसके द्वारा सापेक्ष कीमतों के स्थिर रहने पर आय में होने वाले परिवर्तन का प्रभाव प्रकट होता है।

कीमत प्रभाव = MT; प्रतिस्थापन प्रभाव = MT; आय प्रभाव = NT

अत: **MT (कीमत प्रभाव) = MN (प्रतिस्थापन प्रभाव) = NT (आय प्रभाव)**

संक्षेप में, ऋणात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण माँग में परिवर्तन कीमत में परिवर्तन के विपरीत हुआ है। यदि कीमत गिरती है तो प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण वस्तु की माँग बढ़ती है। दूसरी ओर, यदि कीमत बढ़ती है, तो प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण वस्तु के लिए माँग घटती है।

2. निम्नकोटि वस्तु के लिए प्रतिस्थापन प्रभाव और आय प्रभाव का अलगाव

(Separation of Substitution Effect and Income Effect for an Inferior Goods)

एक निम्नकोटि वस्तु, वह वस्तु है जिसका आय प्रभाव ऋणात्मक और प्रतिस्थापन प्रभाव भी ऋणात्मक होता है। ऋणात्मक आय प्रभाव से अभिप्राय यह है कि एक वस्तु की कीमत में गिरावट वास्तविक आय में वृद्धि लाती है, जिसके फलस्वरूप माँगी गई मात्रा में कमी आ जाती है। इसका कारण यह है कि आय के बढ़ने पर उपभोक्ता निम्नकोटि की वस्तु की कम मात्रा की माँग करता है। अतएव ऋणात्मक आय प्रभाव से प्रकट होता है कि कीमत के घटने के कारण माँगी गई मात्रा में कमी आ जाती है। इसके विपरीत ऋणात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव का अर्थ है कि कीमत में गिरावट माँगी गई मात्रा में वृद्धि लाती है। **ऋणात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव और ऋणात्मक आय प्रभाव विपरीत दिशाओं में काम करते हैं। अतएव, ऋणात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण माँगी गई मात्रा में वृद्धि होती है जबकि ऋणात्मक आय प्रभाव के कारण माँगी गई मात्रा में कमी आती है।** अधिकतर निम्नकोटि की वस्तुओं का ऋणात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव, ऋणात्मक आय प्रभाव की तुलना में अधिक शक्तिशाली होता है। ऐसी स्थिति में ऋणात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव अधिक **प्रबल (Dominant)** होगा और आय प्रभाव को **निष्क्रिय (Neutral)** कर देगा। इस प्रकार की निम्नकोटि की वस्तुओं की सामान्य वस्तुओं की तरह **माँगी गई मात्रा में कीमत के गिरने के कारण वृद्धि होती है और कीमत में वृद्धि के कारण माँगी गई मात्रा में कमी होती है।**

(a) कीमत वृद्धि के कारण एक निम्न कोटि की वस्तु के लिए प्रतिस्थापन तथा आय प्रभाव का अलगाव (Separation of Substitution and Income Effects for an Inferior Goods in Case of Price Rise)–कीमत वृद्धि के कारण किसी निम्नकोटि

की वस्तु के लिए प्रतिस्थापन तथा आय प्रभावों के अलगाव की व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती है।

नोट

चित्र 3.26 में **LM** प्रारंभिक बजट रेखा है। उपभोक्ता तटस्थता वक्र **IC** के बिंदु **B** पर संतुलन में है। वह निम्नकोटि वस्तु-**X** की **OQ** मात्रा खरीदता है। जब वस्तु-**X** की कीमत में वृद्धि होती है, बजट रेखा पीछे की ओर सरक कर **LN** हो जाती है। उपभोक्ता तटस्थता वक्र IC_1 पर बिंदु **A** पर नए संतुलन की स्थिति में होगा। इस बिंदु पर वह वस्तु-**X** की **OS** इकाइयाँ खरीदता है। संतुलन बिंदु **B** से **A** तक संचलन या माँगी गई मात्रा में **OQ** से **OS** तक की कमी कीमत प्रभाव को प्रकट करती है। अन्य शब्दों में, कीमत प्रभाव = **OQ – OS = SQ**। वस्तु-**X** की कीमत में वृद्धि उपभोक्ता की वास्तविक आय में कमी लाएगी जैसा कि तटस्थता वक्र **IC** के सरक कर IC_1 होने से प्रकट हो रहा है। यदि उपभोक्ता की मौद्रिक आय को इतना बढ़ा दिया जाए कि वह प्रारंभिक वक्र **IC** पर ही बना रहे अर्थात् वास्तविक आय पहले जितनी ही बनी रहे तो इस अवस्था में नई बजट रेखा **RP** होगी। यह तटस्थता वक्र **IC** को **C** बिंदु पर स्पर्श कर रही है और **LN** रेखा के समानांतर है। नया संतुलन बिंदु **C** होगा। इससे यह पता चलता है कि–

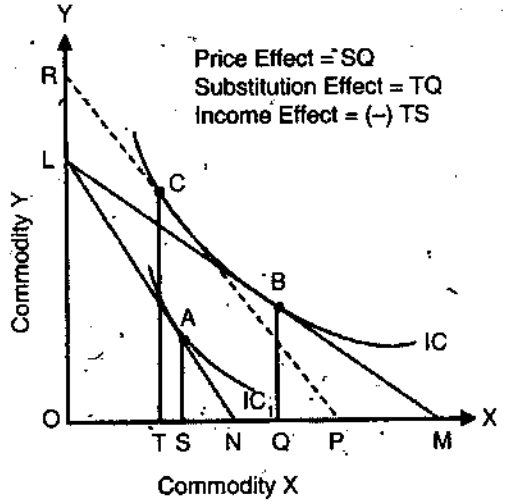

चित्र 3.26

(*i*) **प्रतिस्थापन प्रभाव** = प्रारंभिक संतुलन बिंदु **B** के **C** पर संचलन प्रतिस्थापन प्रभाव को प्रकट करता है। दोनों बिंदु उसी तटस्थता वक्र **IC** पर हैं। कीमत में वृद्धि के कारण माँगी गई मात्रा के **OQ** से घट कर **OT** होने को प्रतिस्थापन प्रभाव द्वारा प्रकट किया जा रहा है। अन्य शब्दों में–

प्रतिस्थापन प्रभाव = OQ – OT = TQ।

(*ii*) **आय प्रभाव** = बिंदु **C** से बिंदु **A** पर संचलन द्वारा आय प्रभाव प्रकट हो रहा है। निम्नकोटि की वस्तुओं के संबंध में आय प्रभाव ऋणात्मक है जो (– **ST**) द्वारा प्रकट हो रहा है। परंतु ऋणात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव ऋणात्मक आय प्रभाव से अधिक है। इसलिए कीमत बढ़ने पर माँग घटती है और माँग का नियम निम्नकोटि वाली वस्तुओं के संबंध में भी लागू होता है।

कीमत प्रभाव = SQ; प्रतिस्थापन प्रभाव = TQ; आय प्रभाव = (–) **TS**

तब **SQ (कीमत प्रभाव) = TQ (प्रतिस्थापन प्रभाव) + (–) TS (आय प्रभाव) = SQ**

(*b*) **कीमत में कमी के कारण एक निम्नकोटि वाली वस्तु के लिए प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव (Substitution Effect and Income Effect for an Inferior**

नोट

Good in Case of Price Fall)–कीमत में कमी होने के कारण एक निम्नकोटि वाली वस्तु के संबंध में प्रतिस्थापन तथा आय प्रभावों के अलगाव की निम्न प्रकार से व्याख्या की जा सकती है।

ध्यान दीजिए

प्रतिस्थापन प्रभाव सदैव अपेक्षाकृत महँगी वस्तु के स्थान पर अपेक्षाकृत सस्ती वस्तु के अधिक उपभोग को प्रकट करता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि संबंधित वस्तु सामान्य वस्तु है या घटिया वस्तु है। इसलिए प्रतिस्थापन प्रभाव के पहले (+) या (–) का चिह्न नहीं लगाया जाता।

चित्र 3.27 में **LM** प्रारंभिक बजट रेखा है। उपभोक्ता तटस्थता वक्र **IC** के बिंदु **B** पर संतुलन में है। वह निम्नकोटि वस्तु-**X** की **OQ** मात्रा खरीदता है। जब वस्तु-**X** की कीमत घटती है, बजट रेखा सरक कर **LN** हो जाती है। उपभोक्ता तटस्थता वक्र IC_1 के बिंदु **A** पर नए संतुलन की स्थिति में है। कीमत प्रभाव संतुलन बिंदु **B** से **A** तक के संचलन अथवा **OQ** से **OS** तक माँगी गई मात्रा में वृद्धि द्वारा प्रकट हो रहा है। अन्य शब्दों में **कीमत प्रभाव = OS – OQ = QS।**

वस्तु-**X** की कीमत कम होने पर उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि होगी जैसी कि तटस्थता वक्र **IC** के सरक कर IC_1 द्वारा प्रकट हो रहा है। यदि उपभोक्ता की मौद्रिक आय को इतना कम कर दिया जाए कि वह प्रारंभिक तटस्थता वक्र **IC** पर ही बना रहे अर्थात् उसकी वास्तविक आय पहले जितनी ही रहे, तो इस अवस्था में नई बजट रेखा **RP** तथा नया संतुलन बिंदु **C** होगा जहाँ नई बजट रेखा **RP** पुरानी तटस्थता वक्र **IC** को **C** बिंदु पर स्पर्श कर रही है। **RP** रेखा **LN** रेखा के समानांतर है क्योंकि यह वस्तु-**X** की कीमत कम होने के पश्चात् नए कीमत अनुपात को अनुरूप कर रहा है।

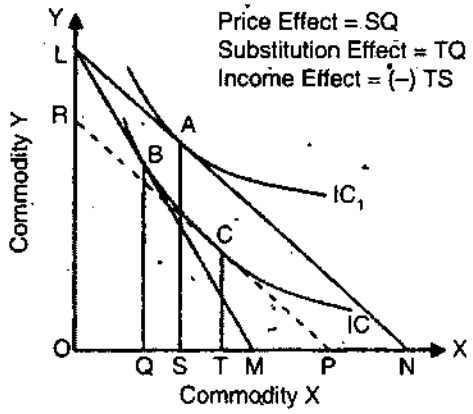

चित्र 3.27

1. **प्रतिस्थापन प्रभाव**–प्रारंभिक संतुलन बिंदु **B** से बिंदु **C** पर संचलन द्वारा प्रतिस्थापन प्रभाव प्रकट हो रहा है, दोनों बिंदु उसी तटस्थता वक्र **IC** पर स्थित हैं। कीमत गिरने के कारण प्रतिस्थापन प्रभाव माँगी गई मात्रा के **OQ** से बढ़ कर **OT** हो जाने द्वारा प्रकट हो रहा है। अन्य शब्दों में, **प्रतिस्थापन प्रभाव = OT – OQ = QT।**
2. **आय प्रभाव**–बिंदु **C** से **A** की ओर संचलन द्वारा आय प्रभाव प्रकट हो रहा है। निम्नकोटि वस्तु के संबंध में आय प्रभाव ऋणात्मक होता है, जो **(–ST)** द्वारा दिखाया गया है। परंतु ऋणात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव ऋणात्मक आय प्रभाव से अधिक है। अत: कीमत में कमी के कारण, माँग बढ़ती है और माँग का नियम निम्नकोटि वाली वस्तुओं के संबंध में भी लागू होता है। अन्य शब्दों में

कीमत प्रभाव = OS – OQ = QS।

प्रतिस्थापन प्रभाव = QT;

आय प्रभाव = (–ST)

अत: QS कीमत प्रभाव = QT (प्रतिस्थापन प्रभाव) + (–ST) आय प्रभाव = QT – ST

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सही/गलत छाँटिए

(State whether the following statements are True/False)–

8. प्रत्येक उपभोक्ता अपनी सीमित आय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करने का प्रयास करता है।
9. तटस्थता वक्र का ढलान सामान्यतया दाएँ से बाएँ नीचे की ओर होता है।
10. तटस्थता वक्र विश्लेषण की यह मान्यता है कि सीमांत प्रतिस्थापन दर घटती है।
11. तटस्थता वक्र की उन्नतोदरता घटती सीमांत प्रतिस्थापन की दर के कारण होती है।
12. प्रतिस्थापन प्रभाव सदैव धनात्मक होता है।

3.24. गिफ्फन का विरोधाभास (Giffen's Paradox)

19वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में ब्रिटेन में निम्न मजदूरी अर्जित करने वाले मजदूरों द्वारा गेहूँ की कीमत और ब्रेड की माँगी गई मात्रा के व्यवहार पर आधारित **सर फ्रांसिस गिफ्फन (Sir Francis Giffen)** ने माँग के नियम के संबंध में एक महत्त्वपूर्ण **अपवाद (Exception)** की खोज की जिसे **गिफ्फन का विरोधाभास (Giffen's Paradox)** का नाम दिया गया। **यह विरोधाभास बतलाता है कि निम्नकोटि वाली वस्तु जो निर्धन लोगों की एक महत्त्वपूर्ण खाद्य मद (Food Item) है और जिस पर वे अपनी आय का एक बड़ा प्रतिशत व्यय करते हैं। (जैसे इंग्लैंड में 19वीं शताब्दी में ब्रेड और वर्तमान दिनों में राजस्थान के मरुस्थल क्षेत्र में बाजरा) उस पर (i) कीमत परिवर्तन का आय प्रभाव ऋणात्मक होता है और (ii) ऋणात्मक आय प्रभाव प्रतिस्थापन प्रभाव की तुलना में शक्तिशाली होता है इसलिए इनके संबंध में माँग का नियम लागू नहीं होता।** ऐसी वस्तुओं को **गिफ्फन वस्तुएँ (Giffen Goods)** कहा जाता है। अन्य शब्दों में, **गिफ्फन वस्तुएँ वे वस्तुएँ हैं जिनकी कीमत कम होने से माँग कम होती है तथा कीमत बढ़ने पर माँग बढ़ती है।** अतएव **गिफ्फन पदार्थ निम्नकोटि का वह विशेष पदार्थ है जिस पर माँग का नियम लागू नहीं होता अर्थात् कीमत कम होने पर उसकी माँग कम होती है तथा कीमत बढ़ने पर माँग बढ़ती है।**

गिफ्फन के विरोधाभास से ज्ञात होता है कि माँग का नियम किस परिस्थिति में लागू नहीं होता। गिफ्फन पदार्थों की माँग वक्र का ढलान नीचे से ऊपर की ओर होता है। इससे प्रकट होता है कि वस्तु की कम कीमत पर उसकी मात्रा की अधिक माँग की जाती है तथा अत्यधिक कीमत पर कम माँग की जाती है।

3.25. गिफ्फन वस्तुओं की स्थिति में आय तथा प्रतिस्थापन प्रभाव (Income and Substitution Effects in Case of Giffen Goods)

सभी वस्तुओं–समान्य, निम्नकोटि तथा गिफ्फन के संबंध में प्रतिस्थापन प्रभाव सदा ऋणात्मक होता है। ऋणात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव का अर्थ है कि जब वस्तु-X सस्ती हो जाती है तब वस्तु-Y के स्थान पर वस्तु-X अवश्य ही अधिक खरीदी जाएगी अर्थात् वस्तु-Y के लिए वस्तु-X का प्रतिस्थापन किया जाएगा।

निम्नकोटि की वस्तुओं के लिए आय प्रभाव ऋणात्मक होता है। ऋणात्मक आय प्रभाव का अर्थ है कि वस्तु की कीमत गिरने के कारण उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि हो जाती है इसलिये वह वस्तु की कम माँग करता है।

नोट

यद्यपि वास्तविक आय में होने वाली वृद्धि उपभोक्ता को उच्चकोटि की प्रतिस्थापन वस्तुओं का अधिक उपभोग करने के लिए प्रेरित करती है। निम्नकोटि वाली वस्तुओं के लिए आय प्रभाव ऋणात्मक होता है परंतु यह आवश्यक नहीं है कि वह प्रतिस्थापन प्रभाव से अधिक शक्तिशाली हो, इसीलिए **शुद्ध प्रभाव (Net Effect)** अथवा कीमत प्रभाव (प्रतिस्थापन प्रभाव–आय प्रभाव) प्रतिस्थापन प्रभाव द्वारा अधिक प्रभावित होता है। ऐसी स्थिति में आय प्रभाव के ऋणात्मक होने पर भी माँग का नियम लागू होता है। परंतु **गिफ्फन वस्तुओं** के संबंध में;

(a) आय प्रभाव ऋणात्मक होता है और

(b) प्रतिस्थापन प्रभाव की तुलना में ऋणात्मक आय प्रभाव अधिक शक्तिशाली होता है। इसलिए शुद्ध प्रभाव (Net Effect) अर्थात् कीमत प्रभाव (प्रतिस्थापन प्रभाव–आय प्रभाव) ऋणात्मक आय प्रभाव द्वारा प्रभावित होता है। इसका अर्थ यह है कि वस्तु की कीमत और इसकी माँगी गई मात्रा के बीच धनात्मक संबंध स्थापित हो जाता है। अन्य शब्दों में, गिफ्फन पदार्थों पर माँग का नियम लागू नहीं होता।

गिफ्फन पदार्थों के संबंध में भी प्रतिस्थापन प्रभाव से यह ज्ञात होता है कि अपेक्षाकृत सस्ती वस्तु भी अधिक मात्रा में खरीदी जाती है, परंतु इस स्थिति में यह इतना अधिक ऋणात्मक होता है कि वह प्रतिस्थापन प्रभाव को निष्क्रिय कर देता है। इसलिए वस्तु की कीमत कम होने पर भी उसकी कम मात्रा खरीदी जाती है।

शुद्ध प्रभाव पर जब ऋणात्मक आय प्रभाव (ऋणात्मक प्रभाव धनात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव की तुलना में अधिक शक्तिशाली होता है) अधिक प्रभुत्व वाला **(Dominating)** होता है तब माँग का नियम अप्रभावी हो जाता है। गिफ्फन वस्तुओं के संबंध में प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव के अलगाव को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है–

चित्र 3.28 गिफ्फन वस्तुओं के संबंध में प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव को प्रकट करता है।

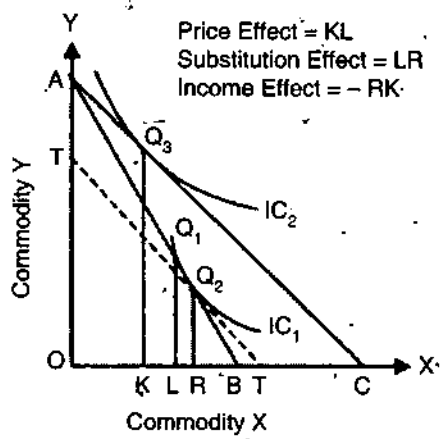

चित्र 3.28

चित्र 3.28 में **AB** प्रारंभिक बजट रेखा है और IC_1 प्रारंभिक तटस्थता वक्र है, उपभोक्ता का प्रारंभिक संतुलन बिंदु Q_1 है जहाँ वह गिफ्फन वस्तु-**X** की **OL** इकाइयों की माँग करता है। जब वस्तु-**X** की कीमत गिरती है तो बजट रेखा आगे दाईं ओर सरक कर '**AC**' हो जाती है, Q_3 उपभोक्ता का नया संतुलन बिंदु है। हम जानते हैं कि Q_1 से Q_3 तक सरकना प्रतिस्थापन प्रभाव और आय प्रभाव का शुद्ध प्रभाव है। **AC** के समानांतर **TT** रेखा खींच कर जो तटस्थता वक्र IC_1 को (Q_2 बिंदु पर) स्पर्श करती है हम प्रतिस्थापन प्रभाव ज्ञात कर सकते हैं जो **LR** के बराबर है। वस्तु-**X** की कीमत कम होने पर यह वस्तु-**Y** की तुलना में सस्ती हो जाती है, अतः वस्तु-**X** के उपभोग में **LR** मात्रा के बराबर वृद्धि होती है। चित्र से ज्ञात होता है कि आय प्रभाव ऋणात्मक है और यह **(–RK)** के बराबर है।

स्पष्ट है, (–RK) > (RL)। इसका अंतर –KL है।

शुद्ध प्रभाव अथवा कीमत प्रभाव = –KL

प्रतिस्थापन प्रभाव = LR

आय प्रभाव = (–) RK

नोट

निम्नकोटि वस्तुओं तथा गिफ्फन वस्तुओं के बीच अंतर

1. ***गिफ्फन वस्तुएँ (Giffen Goods)*** *– गिफ्फन वस्तुएँ वे निम्नकोटि वाली वस्तुएँ हैं जिन पर उपभोक्ता की आय का एक बड़ा प्रतिशत व्यय होता है। इनके संबंध में*

(i) आय प्रभाव ऋणात्मक होता है। इसलिए गिफ्फन वस्तुएँ वस्तु -X की कीमत के गिरने के कारण उपभोक्ता की वास्तविक आय में जब वृद्धि होती है, तो वस्तु की कम मात्रा में माँग की जाती है।

(ii) ऋणात्मक आय प्रभाव प्रतिस्थापन प्रभाव की तुलना में अधिक शक्तिशाली होता है। इसलिए शुद्ध प्रभाव या कीमत प्रभाव सदा धनात्मक होता है, इसका अभिप्राय यह है कि वस्तु-X की कीमत में वृद्धि होने से उसकी माँगी गई मात्रा में वृद्धि होती है।

(iii) गिफ्फन वस्तुओं के संबंध में माँग का नियम लागू नहीं होता।

2. ***निम्नकोटि वस्तुएँ (Inferior Goods)*** *गिफ्फन वस्तुओं के अतिरिक्त बाकी निम्नकोटि वस्तुएँ वे वस्तुएँ हैं जिनके संबंध में*

(i) आय प्रभाव ऋणात्मक होता है।

(ii) ऋणात्मक आय प्रभाव, प्रतिस्थापन प्रभाव की तुलना में, कम शक्तिशाली होता है इसलिए कीमत प्रभाव ऋणात्मक होता है।

(iii) माँग का नियम लागू होता है।

ऋणात्मक आय प्रभाव के प्रबल होने का अर्थ यह है कि वस्तु *q-X* की घटी हुई कीमत के फलस्वरूप वस्तु-*X* की माँग भी *OL* से कम हो कर *OK* हो जाती है। यह ही **गिफ्फन विरोधाभास** का अर्थ है। संक्षेप में, गिफ्फन वस्तुओं की कीमत कम होने पर जो प्रतिस्थापन प्रभाव होता है वह अधिक उपभोग को प्रोत्साहित करता है परंतु आय प्रभाव न केवल विपरीत दिशा (कम उपभोग) में कार्य करता है बल्कि प्रतिस्थापन प्रभाव की तुलना में अधिक प्रबल भी होता है, इसके फलस्वरूप कीमत घटने का कुल प्रभाव अर्थात् कीमत प्रभाव माँग में कमी का कारण बन जाता है। ऐसी स्थिति में माँग वक्र का ढलान **धनात्मक** *(Positive)* होगा।

3.26. आय तथा प्रतिस्थापन प्रभावों के संभव संयोग (Possible Combinations of Income and Substitution Effects)

आय तथा प्रतिस्थापन प्रभावों के संभव संयोगों का सारांश नीचे दिया गया है–

तालिका 6. सामान्य, निम्नकोटि तथा गिफ्फन वस्तुओं के संबंध में आय तथा प्रतिस्थापन प्रभाव
(Income and Substitution Effects in case of Normal, Inferior and Giffen Goods)

वस्तुओं की प्रकृति (Nature of Goods)	आय प्रभाव (Income Effect)	प्रतिस्थापन प्रभाव (Substitution Effect)	कुल प्रभाव (Total Effect)
1. सामान्य वस्तुएँ	धनात्मक	ऋणात्मक	माँग का नियम लागू होता है।

नोट

2. निम्नकोटि वस्तुएँ जो गिफ्फन वस्तुएँ नहीं हैं	ऋणात्मक	ऋणात्मक	माँग का नियम लागू होता है क्योंकि ऋणात्मक आय प्रभाव की तुलना में प्रतिस्थापन प्रभाव अधिक शक्तिशाली होता है।
3. गिफ्फन वस्तुएँ	ऋणात्मक	ऋणात्मक	माँग का नियम लागू नहीं होता क्योंकि ऋणात्मक आय प्रभाव प्रतिस्थापन प्रभाव की तुलना में अधिक शक्तिशाली होता है।

3.27. एकाधिकार क्या है? (What is Monopoly?)

अंग्रेजी भाषा का मोनोपॉली शब्द ग्रीक शब्द के मोनोपॉलियन (Monopolion) शब्द से लिया गया है। इसका अर्थ है बिक्री का एकमात्र अधिकार। अतएव शुद्ध एकाधिकार **बाजार की वह स्थिति है जिसमें केवल एक फर्म किसी वस्तु की एकमात्र उत्पादक होती है तथा उस वस्तु का कोई निकटतम स्थानापन्न नहीं होता।** चूंकि एकाधिकारी किसी वस्तु का बाजार में एकमात्र विक्रेता होता है इसलिए उसके न तो कोई प्रतिद्वंद्वी होते हैं और न ही प्रत्यक्ष प्रतियोगी होते हैं।

शुद्ध एकाधिकार क्या है?

यह बाजार का वह प्रकार है जिसमें किसी वस्तु का केवल एक ही विक्रेता होता है जिसका वस्तु की कीमत पर पूर्ण नियंत्रण होता है।

उदाहरण के लिए अपने घर या फैक्ट्री के लिए बिजली आप केवल विद्युत बोर्ड से प्राप्त कर सकते हैं। आप केवल भारत सरकार की रेलों में यात्रा कर सकते हैं। ये सभी एकाधिकार के उदाहरण हैं। एकाधिकार की स्थिति में कोई दूसरी फर्म उद्योग में प्रवेश नहीं कर सकती। एकाधिकार में फर्म तथा उद्योग में कोई अंतर नहीं होता। फर्म ही उद्योग होती है क्योंकि बाजार में वस्तु की यह ही एकमात्र उत्पादक होती है। एकाधिकारी **कीमत निर्धारक (Price Maker)** होता है। वह कीमत का निर्धारण करता है। उसके द्वारा निर्धारित कीमत पर यह निर्भर होता है कि वह कितनी मात्रा बेच सकेगा। एकाधिकारी की माँग वक्र का ढलान ऊपर से नीचे की ओर होता है।

कौतसुवंयानी के अनुसार, **"एकाधिकार वह बाजार है जिसमें किसी वस्तु का केवल एक ही विक्रेता होता है। वह जिस वस्तु का उत्पादन करता है उसके निकटतम स्थानापन्न नहीं होते तथा अन्य फर्मों के प्रवेश पर प्रतिबंध होता है।"** (Monopoly is a market situation in which there is a single seller, there are no close substitutes for commodity it produces, there are barriers to entry. **—Koutsoyiannis)**

बामोल के शब्दों में, **"एक शुद्ध एकाधिकारी की परिभाषा उस फर्म के रूप में की जाती है जो उद्योग भी है। यह किसी विशेष वस्तु जिसके निकटतम स्थानापन्न नहीं होते की एकमात्र विक्रेता होती है।"** (A pure monopoly is defined as the firm that is also an industry. It is the only supplier of some particular commodity for which there exists no close substitute. **—Baumol)**

3.28. एकाधिकार की विशेषताएँ (Features of Monopoly)

एकाधिकार की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. **एक विक्रेता तथा अधिक क्रेता (One Seller and Large Number of Buyers)** –एकाधिकार में वस्तु का एक ही उत्पादक होना चाहिए चाहे वह अकेला हो या साझेदारों का समूह हो या संयुक्त पूंजी कंपनी या राज्य हो। अतः एकाधिकार की स्थिति में केवल एक

ही फर्म होती है परंतु वस्तु के क्रेता काफी संख्या में होने चाहिए जिसके फलस्वरूप वस्तु की कीमत को क्रेता प्रभावित नहीं कर सकें परंतु विक्रेता प्रभावित करता है।

2. **एकाधिकारी फर्म उद्योग भी है (Monopoly is also an Industry)**–एकाधिकार की स्थिति में केवल एक ही फर्म होती है। अतएव फर्म तथा उद्योग का अंतर समाप्त हो जाता है अर्थात् एकाधिकारी फर्म तथा उद्योग के अध्ययन में कोई अंतर नहीं होता।

3. **नई फर्मों के प्रवेश पर प्रतिबंध (Restrictions on the Entry of the New Firms)**–एकाधिकारी क्षेत्र में नई फर्मों के बाजार में प्रवेश करने पर प्रतिबंध होता है। इन प्रतिबंधों के कई रूप होते हैं जैसे पेटेन्ट अधिकार, सरकारी नियम, पैमाने की बचतें आदि।

4. **निकटतम स्थानापन्न का अभाव (No Close Substitutes)**–एकाधिकारी जिस वस्तु का उत्पादन कर रहा है उस वस्तु के निकटतम स्थानापन्न नहीं होनी चाहिए अन्यथा एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत अपनी इच्छानुसार निर्धारित नहीं कर सकेगा। **बोल्डिंग (Boulding)** के अनुसार, **"एक विशुद्ध एकाधिकारी फर्म वह है जो ऐसी वस्तु का उत्पादन कर रही है जिसका दूसरी फर्मों के उत्पादन में कोई प्रभावशाली स्थानापन्न नहीं है।"**

5. **कीमत निर्धारक (Price Maker)**–एकाधिकारी कीमत निर्धारक होता है अर्थात् अपने उत्पादन की कीमत का निर्धारण वह स्वयं करता है। ऐसा इसलिए क्योंकि वह वस्तु का एक मात्र विक्रेता होता है, परंतु क्रेताओं की संख्या काफी अधिक होती है। एक क्रेता की माँग, कुल माँग का बहुत थोड़ा सा भाग होती है। इसलिए क्रेता कीमत को प्रभावित नहीं कर पाते उन्हें एकाधिकारी द्वारा निर्धारित कीमत का भुगतान करना पड़ता है। अन्य शब्दों में, वस्तु की कीमत पूर्ण रूप से एकाधिकारी के नियंत्रण में होती है। यदि एकाधिकारी वस्तु की पूर्ति को बढ़ा देता है तो उसकी कीमत में कमी हो सकती है। इसके विपरीत यदि वह पूर्ति को कम कर देता है तो कीमत में वृद्धि हो सकती है।

एकाधिकारी कीमत निर्धारक है

हाँ, एकाधिकारी कीमत निर्धारक है। एकाधिकारी का वस्तु की कीमत पर पूरा नियंत्रण होता है। इसका कारण यह है कि

– एकाधिकारी वस्तु का एकमात्र विक्रेता होता है, जबकि इसके बहुत से क्रेता होते हैं।

– एकाधिकारी के उत्पादन का कोई निकटतम स्थानापन्न नहीं होता।

– बाजार में नई फर्मों के प्रवेश पर कई कानूनी, प्राकृतिक तथा तकनीकी प्रतिबंध होते हैं।

6. **कीमत विभेद (Price Discrimination)**–एक एकाधिकारी एक वस्तु की विभिन्न क्रेताओं से अथवा विभिन्न उपयोगों के लिए अलग-अलग कीमतें ले सकता है। इस प्रकार एकाधिकारी कीमत विभेद कर सकता है।

7. **पूर्ति वक्र का अभाव (Absence of Supply Curve)**–एकाधिकार की स्थिति में कोई पूर्ति वक्र नहीं होता। एकाधिकारी माँग (सीमांत आय) तथा लागत (सीमांत लागत) दोनों को एक साथ ध्यान में रखकर ही यह तय करता है कि कितना उत्पादन करना है तथा उसकी क्या कीमत निर्धारित करनी है। अतः एकाधिकार में कोई पूर्ति वक्र नहीं होता।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान भरिए (Fill in the blanks)–

1. एकाधिकारी ..... निर्धारक होता है।
2. अंग्रेजी भाषा का मोनोपॉली शब्द ग्रीक शब्द के ..... शब्द से लिया गया है।
3. एकाधिकारी की माँग वक्र का ढलान ऊपर से ..... की ओर होता है।
4. एकाधिकार वह बाजार है जिसमें किसी वस्तु का केवल एक ही ..... होता है।

नोट

नोट

3.29. एकाधिकार में संतुलन (Monopoly Equilibrium)
अथवा
एकाधिकार में कीमत तथा उत्पादन का निर्धारण (Determination of Price and Output under Monopoly)

एकाधिकारी उस समय संतुलन की अवस्था में होता है जब वह वस्तु की उस मात्रा का उत्पादन करता है जिस पर उसका कुल लाभ अधिकतम होता है। एकाधिकारी अवस्था में कीमत तथा संतुलन निर्धारण का निम्नलिखित दो दृष्टिकोणों से अध्ययन किया जा सकता है–

1. **कुल आय तथा कुल लागत वक्र दृष्टिकोण (Total Revenue and Total Cost Curve Approach)**
2. **सीमांत आय तथा सीमांत लागत दृष्टिकोण (Marginal Revenue and Marginal Cost Approach)**

नोट्स

एकाधिकार बाजार की वह स्थिति है जिसमें केवल एक फर्म किसी वस्तु की एकमात्र उत्पादक होती है। उस वस्तु का कोई निकटतम स्थानापन्न नहीं होता।

3.30. कुल आय तथा कुल लागत वक्र दृष्टिकोण (Total Revenue and Total Cost Curve Approach)

एकाधिकारी वस्तु की उस मात्रा को बेचकर अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकता है जिस पर **कुल आय (Total Revenue)** तथा कुल लागत **(Total Cost)** का अंतर अधिकतम होता है। एकाधिकारी वस्तु की विभिन्न कीमतें निर्धारित करके अथवा वस्तु की पूर्ति में परिवर्तन करके यह मालूम करने की चेष्टा करता है कि उत्पादन के किस स्तर पर कुल आय **(TR)** तथा कुल लागत **(TC)** का अंतर अधिकतम है। अर्थात् कुल लाभ अधिकतम है। **उत्पादन की उस मात्रा पर जिसके उत्पादन से एकाधिकारी को अधिकतम लाभ प्राप्त होंगे, एकाधिकारी संतुलन की स्थिति में होगा।** इसे चित्र 3.29 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

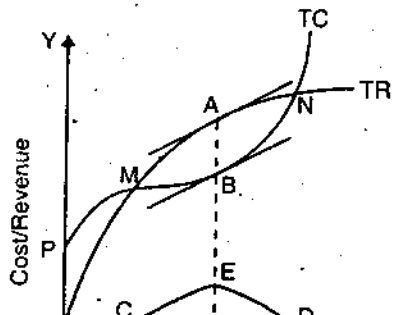

चित्र 3.29

चित्र 3.29 में **TC** कुल लागत वक्र तथा **TR** कुल आय वक्र है। **TR** वक्र मूल बिंदु **O** से शुरू हो रहा है। इसका अभिप्राय यह है कि जब कोई उत्पादन नहीं होगा तो कुल आय भी शून्य होगी। इसके विपरीत कुल लागत वक्र बिंदु **P** से आरंभ हो रही है। इसका कारण यह है कि यदि फर्म उत्पादन बंद भी कर दे तो भी उसे बंधी लागतें **OP** खर्च करनी पड़ेंगी। **TP** वक्र कुल लाभ वक्र है। यह वक्र बिंदु **R** से

आरंभ हो रहा है। इससे ज्ञात होता है कि आरंभ में फर्म को **ऋणात्मक लाभ (Negative Profits)** प्राप्त हो रहे हैं अर्थात् **हानि** हो रही है क्योंकि कुल लागत, कुल आय से अधिक है। चित्र 3.29 से ज्ञात होता है कि फर्म जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ा रही है कुल आय बढ़ती जा रही है। परंतु आरंभ में कुल आय कुल लागत से कम (**TR < TC**) है। इसलिए **TP** वक्र के **RC** भाग से ज्ञात होता है कि फर्म को हानि हो रही है। बिंदु **M** पर **TR = TC** है इसलिए जैसा कि **TP** वक्र के बिंदु **C** से ज्ञात होता है कि फर्म को न तो हानि हो रही है और न ही लाभ हो रहा है। बिंदु **M** को **सम-विच्छेद बिंदु (Break Even Point)** कहा जायेगा। फर्म जब बिंदु **M** से अधिक उत्पादन करेगी तो कुल आय कुल लागत से बढ़ती (**TR > TC**) जाएगी। **TP** वक्र भी बिंदु **C** से ऊपर की ओर उठ रही है। इससे ज्ञात होता है कि फर्म को लाभ मिल रहे हैं। जब **TP** वक्र अपने उच्चतम बिंदु **E** पर होगी तो फर्म को **अधिकतम लाभ (Maximum Profits)** प्राप्त होंगे। उत्पादन की **OQ** मात्रा जिस पर फर्म को अधिकतम लाभ मिल रहा है, संतुलन उत्पादन की मात्रा कहलाएगी।

सावधानीपूर्वक ध्यान दें

चित्र 3.29 में TC वक्र OY अक्ष से शुरू होती है, इसलिए यह अल्पकालीन लागत वक्र होनी चाहिए। दीर्घकालीन TC वक्र मूल बिंदु O से आरंभ होती है।

यदि फर्म संतुलन मात्रा **OQ** से अधिक उत्पादन करेगी तो **TR** और **TC** रेखाओं का अंतर कम होता चला जाएगा तथा बिंदु **N** पर ये रेखाएं एक-दूसरे को काटेंगी अर्थात् **TR = TC** होगा। इसका अभिप्राय यह हुआ कि फर्म के लाभ कम होते जाएंगे तथा बिंदु **N** पर भी फर्म को न कोई लाभ होगा तथा न कोई हानि होगी। जैसा कि **TP** के बिंदु **D** से ज्ञात होता है। यदि फर्म इससे अधिक उत्पादन करेगी तो **TR** के **TC** से कम (**TR < TC**) होने के फलस्वरूप फर्म को हानि होने लगेगी। संक्षेप में फर्म बिंदु **E** पर अधिकतम लाभ प्राप्त करेगी। फर्म के अधिकतम लाभ को ज्ञात करने के लिए **TR** तथा **TC** रेखा पर स्पर्शीय रेखाएँ खींची जाती हैं। जिन बिंदु पर खींची गई **स्पर्शीय रेखाएँ (Tangent Lines)** समानांतर हैं, उनका फासला अधिकतम होगा। इस चित्र से ज्ञात होता है कि **A** तथा **B** बिंदु पर **स्पर्शीय रेखाएँ (Tangent)** समानांतर हैं, अत: **TR** तथा **TC** वक्र का अधिकतम अंतर **AB** से प्रकट होगा। इस अवस्था में एकाधिकारी को अधिकतम लाभ प्राप्त होंगे जैसा कि **TP** वक्र के बिंदु **E** से ज्ञात हो रहा है। एकाधिकारी द्वारा कीमत तथा संतुलन प्राप्त करने की इस विधि को **Trial and Error Method** भी कहा जाता है क्योंकि इस विधि द्वारा एकाधिकारी को विभिन्न कीमतें निर्धारित करके यह अनुमान लगाना पड़ता है कि कीमत के कौन से स्तर पर वह संतुलन की स्थिति में होगा अर्थात् अधिकतम लाभ प्राप्त करेगा।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)–

5. एकाधिकार की स्थिति में केवल एक ही होती है
   (अ) फर्म (ब) मुद्रा (स) लागत (द) वस्तु
6. एकाधिकारी क्षेत्रों में नई फर्मों के बाजार में प्रवेश करने पर होता है–
   (अ) कर (ब) प्रतिबंध (स) निषेध (द) अनुमति
7. एकाधिकार की स्थिति में कोई ..... वक्र नहीं होता।
   (अ) पूर्ति चक्र (ब) लागत वक्र (स) वक्र (द) पूर्ति वक्र
8. एकाधिकारी के उत्पादन का कोई नहीं होता–
   (अ) निकटतम स्थानापन्न (ब) स्थानापन्न
   (स) लागत वक्र (द) इनमें से कोई नहीं।

नोट

3.31. सीमांत आय तथा सीमांत लागत दृष्टिकोण (Marginal Revenue and Marginal Cost Approach)

इस दृष्टिकोण के अनुसार एकाधिकारी उस समय संतुलन की अवस्था में होगा जब दो शर्तें पूरी होंगी।

(*i*) **सीमांत आय (MR) = सीमांत लागत (MC)** तथा

(*ii*) **सीमांत लागत (MC) वक्र की सीमांत आय (MR) वक्र को नीचे से काटना।**

इस स्थिति में एकाधिकारी को अधिकतम लाभ प्राप्त होंगे। इस विश्लेषण द्वारा एकाधिकार में कीमत तथा संतुलन निर्धारण का अध्ययन समय की दो अवधियों में किया जाएगा।

(1) अल्पकाल (**Short-Run**) तथा (2) दीर्घकाल (**Long-Run**)।

अपनी बुद्धि का परीक्षण कीजिए
(चित्र 3.29 देखिए।)

जब TR तथा TC का अंतर अधिकतम होता है तो TR का ढलान = TC का ढलान।
TR का ढलान MR तथा TC का ढलान MC होता है। इसलिए जहाँ TR तथा TC का अंतर अधिकतम होता है, वहाँ ही MR = MC होता है।

1. अल्पकालीन संतुलन (Short-Run Equilibrium)

अल्पकाल समय की वह अवधि है जिसमें समय इतना कम होता है कि एकाधिकारी बंधे साधनों जैसे मशीनरी, प्लांट आदि को बदल नहीं सकता। एकाधिकारी वस्तु की माँग बढ़ने पर केवल घटते-बढ़ते साधन की अधिक मात्रा का प्रयोग करके तथा बंधे साधनों जैसे मशीनों की पूर्ण क्षमता का प्रयोग करके वस्तु की पूर्ति को बढ़ा सकता है। इसी भाँति माँग घटने पर एकाधिकारी फर्म की घटते-बढ़ते साधन की मात्रा को कम कर देगा और बंधे साधन का भी गहन प्रयोग कम कर देगा। एक एकाधिकारी उस समय संतुलन में होगा जब वह वस्तु की उस मात्रा का उत्पादन करेगा जिस पर (1) **सीमांत लागत तथा सीमांत आय बराबर (MC = MR)** होगी तथा (2) **सीमांत लागत वक्र सीमांत आय वक्र को नीचे से काटेगी। (MC Curve cuts MR Curve from below.)** अल्पकाल में एकाधिकारी के संतुलन की अवस्था में तीन स्थितियाँ हो सकती हैं। एकाधिकारी को (1) **असामान्य लाभ (Super Normal Profits)** मिल सकते हैं। (2) **सामान्य लाभ (Normal Profits)** प्राप्त हो सकते हैं। और (3) **न्यूनतम हानि (Minimum Loss)** उठानी पड़ सकती है। इनका वर्णन हम निम्नलिखित चित्रों की सहायता से कर सकते हैं–

(1) **असामान्य लाभ (Super Normal Profits)**–यदि एकाधिकारी द्वारा संतुलन की अवस्था में निर्धारित वस्तुओं की कीमत (AR) उनकी औसत लागत (AC) से अधिक (**AR > AC**) है तो एकाधिकारी को **असामान्य लाभ (Super Normal Profits)** प्राप्त होंगे। एकाधिकारी उत्पादन तो उस सीमा तक करेगा जिस पर सीमांत लागत तथा सीमांत आय (**MC = MR**) बराबर होंगी। इसे संतुलन उत्पादन कहा जाएगा। यदि संतुलन उत्पादन की कीमत उसकी औसत लागत से अधिक होगी तो एकाधिकारी को असामान्य लाभ प्राप्त होंगे।

असामान्य लाभ (Super Normal Profit) = AR > AC

संतुलन की इस स्थिति को चित्र 3.30 द्वारा प्रकट किया जा सकता है। चित्र 3.30 से प्रकट होता है कि एकाधिकारी बिंदु **E** पर संतुलन की अवस्था में होगा। क्योंकि इस बिंदु पर **सीमांत आय (MR)** तथा सीमांत लागत (**MC**) एक दूसरे के बराबर (**MR = MC**) हैं। एकाधिकारी वस्तु की **OM** इकाई का उत्पादन करेगा; उत्पादन की इस मात्रा पर वस्तु की कीमत **BM** उसकी औसत लागत **AM** से **BA** अधिक (**BM – AM = BA**) है। अत: इस स्थिति में एकाधिकारी को **ABPC** कुल असामान्य लाभ प्राप्त होंगे।

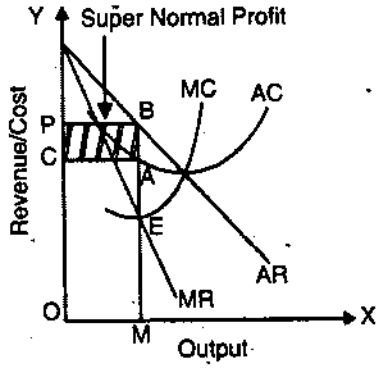

चित्र 3.30

(2) सामान्य लाभ (Normal Profits)—यदि अल्पकाल में एकाधिकारी संतुलन की स्थिति (MC = MR) में वस्तु की कीमत (AR), औसत लागत (AC) के बराबर (AC = AR) है तो फर्म को केवल सामान्य लाभ (Normal Profits) प्राप्त होंगे।

सामान्य लाभ (Normal Profits) = AR = AC

एकाधिकारी संतुलन की इस स्थिति को चित्र 3.31 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र 3.31 से ज्ञात होता है कि एकाधिकारी बिंदु E पर संतुलन में होगा क्योंकि बिंदु E पर MC = MR है। एकाधिकारी का संतुलन उत्पादन OM इकाइयाँ हैं। उत्पादन की इस मात्रा पर **औसत लागत वक्र (AC) औसत आय वक्र (AR)** को बिंदु A पर छू रहा है। अतः बिंदु A पर वस्तु की कीमत OP (AR) तथा औसत लागत AM (AC) एक दूसरे के बराबर हैं। अतएव एकाधिकारी को संतुलन उत्पादन पर केवल **सामान्य लाभ (Normal Profits)** प्राप्त होंगे क्योंकि संतुलन मात्रा पर औसत लागत तथा कीमत (औसत आय) बराबर (AC = AR) हैं।

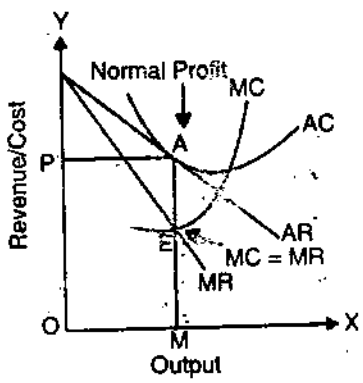

चित्र 3.31

(3) न्यूनतम हानि (Minimum Loss)—अल्पकाल में एकाधिकारी को हानि उठाकर भी उत्पादन करना पड़ सकता है, यदि अल्पकाल में मंदी के कारण वस्तु की माँग कम हो जाए और फलस्वरूप कीमत कम हो जाए तो एकाधिकारी इस कम कीमत पर भी उत्पादन करता रहेगा। यदि इस पर उसे औसत घटती बढ़ती लागत (AVC) मिल रही हो। यदि एकाधिकारी को औसत घटती बढ़ती लागत से भी कम कीमत निर्धारित करनी पड़ेगी तो वह वस्तु का उत्पादन बंद कर देगा। अतः **एकाधिकारी अल्पकाल में संतुलन की अवस्था में न्यूनतम हानि अर्थात् औसत बंधी लागत की हानि भी उठा सकता है।** संतुलन की इस स्थिति में कीमत (AR) वस्तु की औसत घटती बढ़ती लागत (AVC) के बराबर होती है। अतएव एकाधिकारी को **औसत बंधी लागतों (Fixed Costs)** की हानि उठानी पड़ती है। यह हानि तो एकाधिकारी को तब भी उठानी पड़ेगी जब वह अल्पकाल में काम बंद कर देता है। अतएव

न्यूनतम हानि (Minimum Loss) = AC – AVC = AFC

नोट

संतुलन की इस स्थिति को चित्र 3.32 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र 3.32 से ज्ञात होता है कि एकाधिकारी बिंदु **E** पर संतुलन की अवस्था में है। क्योंकि बिंदु **E** पर **MC = MR**। बिंदु **E** से ज्ञात होता है कि एकाधिकारी वस्तु की **OM** मात्रा का उत्पादन करेगा। संतुलन मात्रा **OM** की कीमत **OP (AM)** निर्धारित होगी। इस कीमत पर औसत घटती बढ़ती लागत वक्र **(AVC Curve)**, **AR** वक्र को **A** बिंदु पर छू रही है। इसका अभिप्राय यह है कि फर्म को प्रचलित कीमत से केवल औसत घटती बढ़ती लागत प्राप्त होगी। फर्म को बंधी लागतों अर्थात् **AN** प्रति इकाई की हानि उठानी पड़ेगी। फर्म को कुल $NAPP_1$ की हानि होगी। जैसा कि छायादार क्षेत्र द्वारा दिखाया गया है। यह फर्म की न्यूनतम हानि होगी। यदि एकाधिकारी को **OP** से कम कीमत निर्धारित करनी पड़ेगी तो वह वस्तु का उत्पादन बंद कर देगा।

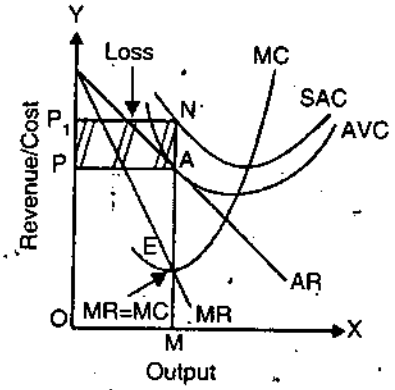

चित्र 3.32

दीर्घकालीन संतुलन (Long-Run Equilibrium)

दीर्घकाल में एकाधिकारी वहीं संतुलन प्राप्त करेगा जहाँ उसकी **दीर्घकालीन सीमांत लागत, सीमांत आय (LMC = MR)** के बराबर होगी। दीर्घकाल में समय लंबा होने के कारण एकाधिकारी सब लागतों को बदल सकता है और माँग बढ़ने पर पूर्ति माँग के अनुसार समायोजित की जा सकती है। अल्पकाल में एकाधिकारी कीमत औसत लागत से अधिक, बराबर व कम हो सकती है। **किंतु दीर्घकाल में कीमत दीर्घकालीन औसत लागत से अधिक होती है।** यदि कीमत दीर्घकालीन औसत लागत से कम होगी तो एकाधिकारी हानि उठाने के स्थान पर उत्पादन बंद कर देगा। **दीर्घकाल में एकाधिकारी असामान्य लाभ प्राप्त करता है।** ऐसा इसलिए क्योंकि, पूर्ण प्रतियोगिता के विपरीत, कोई भी फर्म बाजार में प्रवेश नहीं कर सकती। अत: जब दीर्घकाल में एकाधिकारी फर्म असामान्य लाभ प्राप्त कर रही होती है, तब कोई भी अन्य उत्पादक संभाव्य असामान्य लाभ प्राप्त करने की उम्मीद से बाजार में प्रवेश नहीं कर सकता। फलस्वरूप एकाधिकारी फर्म को दीर्घकाल में भी असामान्य लाभ मिलता रहता है।

एक पूर्ण प्रतियोगी फर्म के विपरीत एक एकाधिकारी दीर्घकाल में भी असामान्य लाभ अर्जित कर सकता है क्योंकि बाजार में नई फर्मों के प्रवेश पर प्रतिबंध होता है।

बाजार में न तो किसी फर्म का प्रवेश तथा न किसी प्रतिस्थापन के पाए जाने के कारण एकाधिकारी को दीर्घकाल में इष्टतम आकार (Optimum Size) के प्लांट लगाने अथवा इष्टतम उत्पादन क्षमता का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं होती। प्लांट का आकार तथा किसी निश्चित आकार वाले प्लांट का किस अंश तक उपयोग किया जाए यह सर्वथा बाजार माँग पर निर्भर करता है। कुछ बाजार स्थितियों में इष्टतम क्षमता प्राप्त की जाएगी, किंतु कुछ अन्य स्थितियों में एकाधिकारी इष्टतम से कम **(Sub-Optimally)** उत्पादन करेगा। कुछ स्थितियों में इष्टतम से अधिक क्षमता का उपयोग

भी हो सकता है। यह सब बाजार माँग पर निर्भर करता है। चित्र 3.33 में एकाधिकारी के न्यूनतम दीर्घकालीन संतुलन की व्याख्या की गई है, जब बाजार का आकार एकाधिकारी को न्यूनतम दीर्घकालीन औसत लागत पर उत्पादन करने से रोकता है, और यह स्थिति प्राय: देखने को मिलती है।

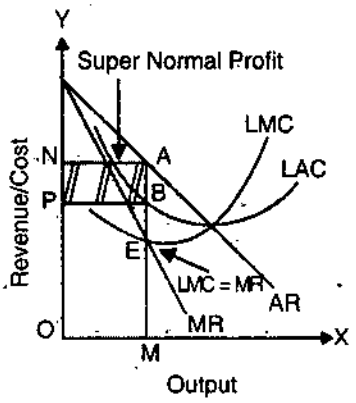

चित्र 3.33

एकाधिकारी के दीर्घकालीन संतुलन की स्थिति को चित्र 3.33 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र 3.33 से ज्ञात होता है कि एकाधिकारी बिंदु **E** पर संतुलन में होगा। बिंदु **E** पर **MR = LMC**, वह वस्तु की **OM** मात्रा का उत्पादन करेगा। यह उत्पादन की संतुलन मात्रा होगी। इस मात्रा पर कीमत **ON (= AM)** होगी तथा दीर्घकालीन औसत लागत **BM** होगी। कीमत **(AM)** के दीर्घकालीन औसत लागत **(BM)** से अधिक **(AR > AC)** होने के कारण एकाधिकारी को असामान्य लाभ प्राप्त होंगे। अतएव एकाधिकारी को **AM – MB = AB** प्रति इकाई असामान्य लाभ प्राप्त होंगे। एकाधिकारी को कुल **ABPN** असामान्य लाभ मिलेंगे। जैसा कि छायादार भाग द्वारा दिखाया गया है।

3.32. कीमत विभेद या भेदमूलक एकाधिकार (Price Discrimination or Discriminating Monopoly)

कीमत विभेद वह स्थिति है जिसमें एक वस्तु को एक से अधिक कीमत पर बेचा जाता है। एक एकाधिकारी कई बार किसी वस्तु की विभिन्न उपभोक्ताओं से या विभिन्न उपयोगों के लिए अलग-अलग कीमत ले सकता है। एकाधिकारी की इस कीमत नीति को **कीमत विभेद (Price Discrimination)** कहते हैं और जो एकाधिकारी ऐसा करता है उसे **भेदमूलक एकाधिकारी (Discriminating Monopolist)** कहते हैं।

कीमत विभेद क्या है?

कीमत विभेद वह स्थिति है जिसमें एक विक्रेता किसी एक वस्तु की विभिन्न क्रेताओं से विभिन्न कीमत लेता है। यह उस समय संभव होता है जब बाजार में कोई प्रतियोगिता नहीं होती तथा विभिन्न क्रेताओं के लिए वस्तु की माँग की लोच विभिन्न होती है।

जे.एस.बेंस. के शब्दों में, **"कीमत विभेद से अभिप्राय विक्रेता की उस क्रिया से है जिसमें कि वह एक ही प्रकार के पदार्थों के लिए विभिन्न क्रेताओं से विभिन्न कीमतें लेता है।"** (Price discrimination refers strictly to the practice by a seller to charging different prices from different buyers for the same goods **J.S. Bains)**

कौतसुयानी के अनुसार, **"कीमत विभेद वह स्थिति है जिसमें एक वस्तु विभिन्न खरीददारों को विभिन्न कीमतों पर बेची जाती है।"** (Price discrimination exists when the same product is sold at different prices to different buyers. **—Koutsoyiannis)**

नोट

3.33. कीमत विभेद के प्रकार (Types of Price Discrimination)

कीमत विभेद मुख्य रूप से चार प्रकार का होता है–

1. **व्यक्तिगत कीमत विभेद (Personal Price Discrimination)**–जब एक एकाधिकारी किसी वस्तु की विभिन्न व्यक्तियों से विभिन्न कीमत लेता है तो उसे व्यक्तिगत कीमत विभेद कहते हैं। व्यक्तिगत कीमत विभेद, उपभोक्ता की अज्ञानता के कारण, कीमत में मामूली अंतर के कारण अथवा वस्तु या सेवा की प्रकृति के कारण संभव होता है। जैसे–जब एक डॉक्टर एक ही प्रकार के ऑपरेशन के लिए धनी व निर्धन मरीजों से अलग-अलग फीस लेता है तो यह व्यक्तिगत कीमत विभेद कहलाता है।
2. **भौगोलिक कीमत विभेद (Geographical Price Discrimination)**–जब एकाधिकारी एक वस्तु की विभिन्न स्थानों पर विभिन्न कीमत लेता है तो उसे भौगोलिक कीमत विभेद कहते हैं। उदाहरण के लिए, एक निर्यातक अपनी वस्तु की कीमत विदेशी बाजार में भिन्न तथा घरेलू बाजार में कुछ और रखता है, जैसा कि राशिपातन (Dumping) अर्थात् विदेशों में वस्तु को सस्ते दामों पर बेचना।
3. **उपयोग अनुसार कीमत विभेद (Price Discrimination According to Use)**–जब एकाधिकारी एक वस्तु के विभिन्न उपयोगों के लिए विभिन्न कीमतें लेता है तो इसे **उपयोग कीमत विभेद या व्यापार विभेद (Trade Discrimination)** कहते हैं जैसे बिजली के **घरेलू उपयोग (Domestic Use)** के लिए प्रति यूनिट दर अधिक होती है जबकि कृषि संबंधी उपयोग **(Agricultural Use)** के लिए प्रति यूनिट दर कम होती है।
4. **समयानुसार कीमत विभेद (Price Discrimination According to Time)**–कई सार्वजनिक उपयोग के उद्योग **(Public Utilities)** एक ही उत्पादन को विभिन्न समय पर विभिन्न कीमतों पर बेचते हैं। उदाहरण के लिए, टेलीफोन विभाग देर रात या प्रातः काल के समय की जाने वाली टेलीफोन कॉल के लिए **कम दर (Low Rate)** लेता है परंतु दिन में की जाने वाली टेलीफोन कॉल के लिए **अधिक दर (High Rate)** ली जाती है।

3.34. कीमत विभेदीकरण की श्रेणियाँ (Degrees of Price Discrimination)

पीगू ने अपनी पुस्तक **'Economics of Welfare'** में कीमत **विभेदीकरण (Price Discrimination)** को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में बांटा है:

1. **प्रथम श्रेणी का विभेदीकरण (Discrimination of the First Degree):** प्रथम श्रेणी का विभेदीकरण वह विभेदीकरण है जिसमें एक एकाधिकारी वस्तु की प्रत्येक इकाई की विभिन्न कीमतें वसूल करता है। प्रत्येक इकाई की उतनी कीमत निर्धारित की जाती है जितनी की उपभोक्ता देने के लिए तैयार होता है, इस प्रकार उसे **कोई भी उपभोक्ता बचत** प्राप्त नहीं **(No Consumer Surplus)** होती है। अतः प्रथम श्रेणी के विभेदीकरण का अर्थ एक ऐसी स्थिति है जिसमें उपभोक्ता की बचत शून्य होती है।
2. **दूसरी श्रेणी का विभेदीकरण (Discrimination of the Second Degree):** द्वितीय श्रेणी का विभेदीकरण वह स्थिति है जिसमें एकाधिकारी किसी वस्तु की विभिन्न इकाइयों की विभिन्न कीमतें लेता है। उदाहरण के लिए, राज्यों के बिजली बोर्ड बिजली की एक सीमा तक पहली कुछ इकाइयों के उपभोग की दर कम लेती है तथा उस सीमा के बाद की इकाइयों के उपभोग की दर अधिक लेती है। इस स्थिति में उपभोक्ता को कुछ **उपभोग की बचत (Consumer's Surplus)** प्राप्त होती है।
3. **तीसरी श्रेणी का विभेदीकरण (Discrimination of the Third Degree):** तीसरी श्रेणी का विभेदीकरण वह विभेदीकरण है जिसके अंतर्गत एकाधिकारी किसी वस्तु के कुल बाजार

को दो या तीन समूहों (Groups) में बांट देता है तथा प्रत्येक समूह से विभिन्न कीमत वसूल करता है। उदाहरण के लिए, यदि एकाधिकारी घरेलू बाजार में किसी वस्तु की अधिक कीमत निर्धारित करता है तथा विदेशी-बाजार में कम कीमत निर्धारित करता है तो इसे तीसरी श्रेणी का विभेदीकरण कहा जाएगा। वास्तविक जीवन में इस श्रेणी का विभेदीकरण अधिक प्रचलित है।

नोट

3.35. कीमत विभेद की आवश्यक शर्तें (Essential Conditions for Price Discrimination)

कीमत विभेद तभी संभव हो सकता है जबकि बाजार में निम्नलिखित शर्तें पूरी होती हैं–

1. **एकाधिकारी शक्ति का अस्तित्व (Existence of Monopoly Power)**–कीमत विभेद की पहली शर्त यह है कि विक्रेता एकाधिकारी होना चाहिए अर्थात् उसके पास एकाधिकारी शक्ति होनी चाहिए। एकाधिकारी शक्ति के अभाव में विक्रेता कुछ क्रेताओं से दूसरों की तुलना में अधिक कीमत नहीं ले सकता। पूर्ण प्रतियोगी फर्में एक समरूप उत्पाद **(Homogeneous Product)** के लिए विभिन्न कीमतें नहीं ले पाएँगी क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता की परिभाषा के अनुसार बाजार में एक ही कीमत प्रचलित होने की प्रवृत्ति होती है।
2. **पृथक बाजार (Separate Markets)**–कीमत विभेद के लिए यह आवश्यक है कि वस्तु के दो या तीन बाजार होने चाहिए जिन्हें एक दूसरे से पृथक किया जा सकता है तथा एकाधिकारी उन्हें पृथक रख सकता है। **(One condition necessary for Discriminating Monopoly is that there must be two or more markets which can be separated and can be kept separate)** बाजारों को भौगोलिक दृष्टि से, या ब्रांड के द्वारा, या समय के द्वारा पृथक रखा जा सकता है। व्यक्तिगत सेवाएँ प्रदान करने वाले लोग जैसे डॉक्टर, वकील, आदि भी एक समान सेवा के लिए विभिन्न कीमतें ले सकते हैं।
3. **माँग की लोच में अंतर (Difference in the Elasticity of Demand)**–कीमत विभेद उस समय संभव होगा जब विभिन्न बाजारों में पाई जाने वाली माँग की लोच विभिन्न होगी। यदि ऐसा होता है तो एकाधिकारी बेलोचदार माँग वाले बाजार में अधिक कीमत निर्धारित करेगा और अधिक लोचदार माँग वाले बाजार में कम कीमत निर्धारित करेगा। ऐसा करने से ही वह अपनी कुल आय को बढ़ा सकता है क्योंकि माँग में परिवर्तन का कोई डर नहीं होगा। यदि भिन्न-भिन्न बाजारों में माँग की लोच एक जैसी हो तो कीमत विभेद करना संभव नहीं हो सकेगा।
4. **पुनर्बिक्री संभावना का अभाव (No Possibility of Re-sale)**–कीमत विभेद के अस्तित्व के लिए यह आवश्यक है कि उस वस्तु या सेवा का प्रारंभिक क्रेता उसकी पुनर्बिक्री नहीं कर सके। ऐसा तभी हो सकता है जब एक ओर तो, वस्तु की एक इकाई सस्ते बाजार से महंगे बाजार में हस्तांतरित न हो तथा दूसरी ओर क्रेता महंगे बाजार से सस्ते बाजार में नहीं जा सके, अर्थात् वस्तु की इकाइयों को सस्ते बाजार से महंगे बाजार में हस्तांतरित नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा हुआ तो वस्तु कम कीमत के बाजार में खरीदी जाएगी और ऊँची कीमत के बाजार में पुनः बेच दी जाएगी, इससे कीमत का वह अंतर समाप्त हो जाएगा जिसे एकाधिकारी बनाए रखना चाहता है। इसलिए कीमत विभेद के लिए यह आवश्यक है कि कम कीमत वाले बाजार से अधिक कीमत वाले बाजार में वस्तु का हस्तांतरण नहीं होना चाहिए। **लिप्सी** के अनुसार, **"कीमत विभेद करने की योग्यता की मुख्य शर्त यह है कि कम कीमत पर वस्तु प्राप्त करने वाला क्रेता उसकी पुनर्बिक्री उस क्रेता को नहीं कर सकता जिसे वह वस्तु ऊंची कीमत पर प्राप्त होती है।"** (The key to being able to discriminate among buyers is that discrimination among buyers requires that the goods cannot be re-sold by the buyer who faces the low price to the buyer who faces the high price. **—Lipsey**)

संक्षेप में, कीमत विभेद तब संभव हो सकता है जब वस्तु की एक इकाई का सस्ते बाजार से महंगे बाजार में हस्तांतरण नहीं किया जा सके तथा विभिन्न बाजारों में माँग की लोच विभिन्न हो।

3.36. कीमत विभेद कब लाभदायक होता है? (When Price Discrimination is Profitable)

नोट

कीमत विभेद एकाधिकारी के लिए उस समय लाभदायक होता है जब माँग की कीमत लोच एक बाजार से दूसरे बाजार में विभिन्न होती है। (Price discrimination is profitable when the price elasticity of demand is different in different markets.)

यदि दो बाजारों में माँग की कीमत लोच बराबर है तो एकाधिकारी को इन दोनों बाजारों में कीमत विभेदीकरण से कोई लाभ नहीं होगा। इसका कारण यह है कि जब दो बाजारों की कीमत लोच समान होती है तो इन दोनों में **सीमांत आय** (Marginal Revenue) भी समान होगी। इसके विपरीत यदि दो बाजारों में माँग की कीमत लोच भिन्न-भिन्न होती है तो इन दोनों में वस्तु की सीमांत आय भी अलग-अलग होगी। एक बाजार में सीमांत आय अधिक होगी तो दूसरे बाजार में कम होगी। इस अवस्था में वस्तु को कम सीमांत आय वाले बाजार से निकाल कर अधिक सीमांत आय वाले बाजार में भिन्न कीमत पर बेचने से लाभ होगा। इस प्रकार दो बाजारों में वस्तु की माँग की कीमत लोच में अंतर होने से कीमत विभेदीकरण लाभदायक हो सकता है। इस तथ्य को हम निम्नलिखित सूत्र की सहायता से स्पष्ट कर सकते हैं:

$$MR = AR\left(\frac{E-1}{E}\right)$$

मान लीजिए बाजार **A** तथा बाजार **B** में एकाधिकारी कीमत समान अर्थात् ₹ 10 है, यदि इस समान एकाधिकारी कीमत पर बाजार **A** तथा **B** में माँग की लोच क्रमशः 2 और 5 है तब उपरोक्त सूत्र के आधार पर इन बाजारों से प्राप्त सीमांत आय का अनुमान निम्नलिखित ढंग से लगाया जा सकता है:

$$\text{बाजार A में सीमांत आय } (MR_A) = AR\left(\frac{E-1}{E}\right) = 10\left[\frac{2-1}{2}\right] = 10\left[\frac{1}{2}\right] = ₹\ 5$$

$$\text{बाजार B में सीमांत आय } (MR_B) = AR\left(\frac{E-1}{E}\right) = 10\left[\frac{5-1}{5}\right] = 10\left[\frac{4}{5}\right] = ₹\ 8$$

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि बाजार **A** तथा बाजार **B** में कीमत लोच विभिन्न होने पर दोनों में सीमान्त आय भी विभिन्न है। बाजार **A** में माँग की लोच कम अर्थात् 2 है इसलिए सीमांत आय **(MR)** कम अर्थात् ₹ 5 है। इसके विपरीत बाजार **B** में माँग की लोच अधिक अर्थात् 5 है इसलिए सीमांत आय **(MR)** भी अधिक अर्थात् ₹ 8 है। इसलिए एकाधिकारी बाजार **A**, जिसमें सीमांत आय ₹ 5 है, से वस्तु की कुछ मात्रा बाजार **B** में जिसमें सीमांत आय ₹ 8 है, बेचेगा। बाजार **A** में वस्तु की एक इकाई कम बेचने से एकाधिकारी को ₹ 5 की हानि होगी। परंतु बाजार **B** में एक इकाई अधिक बेचने से ₹ 8 की आय होगी। इस प्रकार एकाधिकारी को ₹ 3 अधिक आय प्राप्त होगी। एकाधिकारी बाजार **A** से वस्तु को हटाकर बाजार **B** में तब तक बेचता रहेगा, जब तक दोनों बाजारों में वस्तु का सीमांत आगम बराबर नहीं हो जाता अर्थात् $MR_A = MR_B$।

क्या आप जानते हैं? कीमत विभेद वह स्थिति है जिसमें एक वसतु विभिन्न खरीददारों को विभिन्न कीमतों पर बेची जाती है।

3.37. भेदमूलक एकाधिकार में कीमत एवम् उत्पादन का निर्धारण (Price and Output Determination under Discriminating Monopoly)

एकाधिकारी द्वारा कीमत विभेद की नीति अपनाने का उद्देश्य कुल आय तथा लाभ में वृद्धि करना है। कीमत विभेद की स्थिति में कीमत निर्धारण के विश्लेषण को हम दो या दो से अधिक बाजार की दशाओं

द्वारा व्यक्त कर सकते हैं। हम यहाँ कीमत विभेद की एक ऐसी स्थिति का अध्ययन करेंगे जिसमें एकाधिकारी वस्तु को दो विभिन्न कीमतों पर बेचकर **उपभोक्ताओं की बचत (Consumer's Surplus)** का कुछ भाग स्वयं प्राप्त कर लेता है। **पीगू (Pigou)** ने इसे तीसरी श्रेणी की कीमत विभेद **(Price Descrimination of Third Degree)** कहा है। प्रत्येक भेद मूलक एकाधिकारी अपने लाभों को अधिकतम करने के लिए उत्पादन वहाँ तक ही करेगा जहाँ पर कि उसकी सीमांत आय **(MR)** सीमांत लागत **(MC)** के बराबर हो जाती है। एकाधिकारी अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए सीमांत आय और सीमांत लागत की समानता वाली शर्त को प्रत्येक बाजार में अपनाएगा। एकाधिकारी तब तक उत्पादन करता रहेगा जब तक सीमांत आय सीमांत लागत से अधिक **(MR > MC)** है। हमारी मान्यता यह है कि एकाधिकारी अपने उत्पादन को दो विभिन्न बाजारों **'A'** तथा **'B'** में बेचेगा जिनमें माँग की लोच विभिन्न है। भेदमूलक एकाधिकारी को तय करना पड़ता है कि उसे (1) कुल उत्पादन कितना करना है तथा (2) अलग-अलग बाजारों में कितना उत्पादन बेचना है तथा किस कीमत पर बेचना है, जिससे कि उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके। अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए एकाधिकारी को दो निर्णय लेने होंगे।

1. उत्पादन कितना करना है? (How Much to Produce?)

चूँकि हम मान लेते हैं कि एकाधिकारी का उत्पादन समरूप है, इसलिए वह समस्त उत्पादन की **सीमांत लागत** को ध्यान में रखता है चाहे उसकी बिक्री किसी भी बाजार में की जाए। वह उस बिंदु तक उत्पादन करेगा जिस पर सीमांत लागत दोनों बाजारों की **संयुक्त सीमांत आय (Combined Marginal Revenue-CMR)** के बराबर हो जाए। संयुक्त सीमांत आय वक्र ज्ञात करने के लिए बाजार **A** तथा बाजार **B** की सीमांत आय वक्रों MR_A तथा MR_B को जोड़ लिया जाता है। एकाधिकारी वस्तु की उतनी मात्रा का उत्पादन करेगा जिस पर सीमांत लागत तथा संयुक्त सीमांत आय बराबर हो जाए। अर्थात्

$$MC = MR_A + MR_B = MR_{A+B}$$

2. विभिन्न बाजारों में कितनी मात्रा किस कीमत पर बेची जाए? (How Much to Sell in Different Markets and at What Price?)

एकाधिकारी अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए समस्त उत्पादन की सीमांत लागत **(MC)** को बाजार **A** की सीमांत आय (MR_A) तथा बाजार **'B'** के सीमांत आय (MR_B) के बराबर करेगा। चित्र 3.34 से ज्ञात होता है कि बाजार **'A'** में बाजार माँग कम लोचदार है तथा बाजार **'B'** में बाजार माँग अधिक लोचदार है। इसका अभिप्राय यह है एकाधिकारी बाज़ार **'A'** में वस्तु की कम मात्रा अर्थात् **'OA'** इकाइयों की अधिक कीमत OP_1 पर बिक्री करेगा। इसके विपरीत वह बाजार **'B'** में अधिक मात्रा **'OB'** इकाइयों की कम कीमत OP_2 पर बिक्री करेगा। संयुक्त उत्पादन **OQ** इकाइयों (जहाँ संयुक्त सीमांत आय, सीमांत लागत के बराबर है) की सीमांत आय दोनों बाजारों में समान होनी चाहिए क्योंकि उसे कुल उत्पादन की सीमांत लागत **MC** के बराबर होना चाहिए अर्थात्

एकाधिकारी बाजार में वस्तु की अधिक मात्रा (कम कीमत पर) उस समय बेचेगा जब उसकी माँग की लोच अधिक होगी तथा वस्तु की कम मात्रा (अधिक कीमत पर) उस समय बेचेगा जब उसकी माँग की लोच कम होगी। इसका कारण यह है कि माँग जितनी अधिक लोचदार होती है उतनी की कीमत के बढ़ने पर क्रेताओं के कम होने की संभावना होती है। इसलिए एकाधिकारी कम कीमत निर्धारित करके वस्तु की अधिक मात्रा बेचना पसंद करता है।

$$MRA = MR_B = MR_{A+B} = MC$$

मान लीजिए यदि यह शर्त पूरी नहीं होती। बाजार **A** में, बाजार **B** की अपेक्षा, **MR** कम है तो भेदमूलक के एकाधिकारी के लिए यह लाभदायक होगा कि वह वस्तु की कुछ इकाइयाँ बाजार **A** से हटाकर बाजार **B** में बेचे, जहाँ उसे अधिक सीमांत आय **(MR)** प्राप्त हो सकेगी। यह क्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक दोनों बाजारों में सीमांत आय **(MR)** एक दूसरे के बराबर नहीं हो जाती।

नोट

3. कीमत निर्धारण (Price Determination)

विभेदीकृत एकाधिकारी की स्थिति में कीमत निर्धारण को चित्र 3.34 द्वारा स्पष्ट किया गया है। चित्र 3.34 विभेदीकृत एकाधिकार की स्थिति में संतुलन की स्थिति को स्पष्ट करता है।

चित्र 3.34 में भेदमूलक एकाधिकारी के संतुलन की स्थिति को प्रकट किया गया है। मान लीजिए बाजार को दो भागों A तथा B में बाँट दिया गया है। जैसा कि AR_A तथा AR_B वक्रों की ढलान से स्पष्ट है कि A बाजार की माँग B बाजार की माँग की अपेक्षा कम लोचदार (Less Elastic) है। इस चित्र में AR_A वक्र बाजार A और AR_B वक्र बाजार B के माँग वक्र है, दोनों बाजारों की सामूहिक स्थिति को चित्र 3.34 (A + B) में दिखाया गया है। स्पष्ट है कि एकाधिकारी का संतुलन E बिंदु पर होगा जहाँ संयुक्त सीमांत आय वक्र (Combined MR Curve) सीमांत लागत वक्र (MC Curve) के बराबर है। एकाधिकारी की कुल उत्पादन मात्रा OQ है। वह इस उत्पादन को दो बाजारों में इस प्रकार बाँटेगा कि प्रत्येक बाजार में सीमांत आय (MR) समान हो जाएँ। यदि एक बाजार में उसकी सीमांत आय कम है और दूसरे बाजार में अधिक है, तो ऐसी दशा में कम सीमांत आय वाले बाजार से उत्पादन को अधिक सीमांत आय वाले बाजार में स्थानांतरण करना लाभदायक होगा। इस सीमांत आय को प्राप्त करने के लिए एकाधिकारी बाजार A में OA मात्रा तथा बाजार B में OB मात्रा बेचेगा। वह बाजार A में, वस्तु की OP_1 कीमत पर, कम मात्रा तथा बाजार B में वस्तु की कम कीमत अर्थात् OP_2 कीमत पर अधिक मात्रा बेचेगा तथा उत्पादन की कुल मात्रा OA + OB एकाधिकारी के कुल उत्पादन OQ के बराबर होगी।

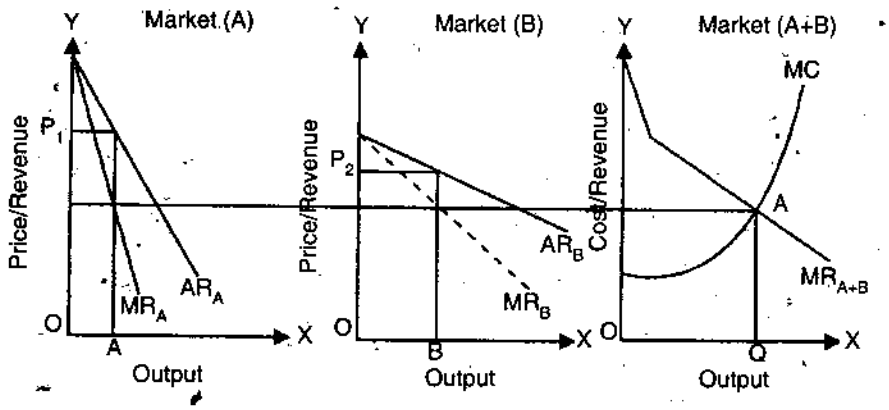

चित्र 3.34

चित्र 3.34 से स्पष्ट है कि **(*i*) कुल उत्पाद की सीमांत लागत, संयुक्त सीमांत आय के बराबर है। (*ii*) दोनों बाजारों की सीमांत आय बराबर है। (*iii*) दोनों बाजारों की सीमांत आय कुल उत्पाद की सीमांत लागत के बराबर है।**

चित्र 3.34 से ज्ञात होता है कि बाजार A में बाजार B की अपेक्षा माँग की लोच कम है। अतः बाजार A में, बाजार B की तुलना में, कीमत ऊँची तथा बिक्री की मात्रा कम होगी।

संक्षेप में, **फर्गुसन** के अनुसार, **"यदि एकाधिकारी उत्पादन के कुल बाजार को विभिन्न लोच वाले उप-बाजारों में बाँटा जा सकता है तो एकाधिकारी लाभप्रद ढंग से कीमत विभेद कर सकता है। सीमांत आय तथा सीमांत लागत को बराबर करके कुल उत्पादन का निर्धारण किया जाता है। कुल उत्पादन को उपबाजारों में इस प्रकार बाँटा जाता है कि प्रत्येक उप बाजार में सीमांत आय संयुक्त सीमांत आय के बराबर हो जाए क्योंकि $MC = MR_{A+B}$ होती है। अंत में, उप-बाजारों में बिक्री की मात्रा के दिए हुए होने पर प्रत्येक उप-बाजार में कीमत प्रत्यक्ष रूप में उपबाजार माँग वक्र द्वारा ज्ञात होती है।"** (If the aggregate market for a monopolist product can be divided into sub-markets with different price elasticities, the monopolist can profitably practice price discrimination.

Total product is determind by equating marginal cost with combined monopoly marginal revenue. The output is allocated among the sub-markets so as to equate marginal revenue in each sub-market with combined marginal revenue as $MC = MR_{A+B}$. Finally, price in each sub-market is determined directly from the sub-market demand curve given the sub-market allocation of sales.)

—Ferguson

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सही/गलत छाँटिए

(State whether the following statements are True/False)–

9. सीमांत आय (MR) = सीमांत लागत (MC)
10. न्यूनतम हानि = AC – AVC = AEC
11. एकाधिकारी को औसत बँधी लागतों की हानि उठानी पड़ती है।
12. दीर्घकाल में कीमत दीर्घकालीन औसत लागत से कम होती है।

3.38. क्या एकाधिकारी कीमत सदैव पूर्ण प्रतियोगी कीमत से अधिक होती है? (Is Monopoly Price always Higher than the Perfectly Competitive Price?)

साधारणतया प्रतियोगिता की अपेक्षा एकाधिकारी की अवस्था में वस्तु की कीमत ऊँची होती है। उसका कारण यह है कि एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत स्वयं निर्धारण करने की शक्ति रखता है, जबकि प्रतियोगिता में कीमत का निर्धारण कुल माँग और कुल पूर्ति की शक्तियों द्वारा होता है। परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि एकाधिकारी कीमत सदा तथा अवश्य ही ऊँची होगी। कई एक बातें ऐसी हैं जो एकाधिकारी कीमत को ऊँचा नहीं होने देती। कई दशाओं में तो एकाधिकारी कीमतें पूर्ण प्रतियोगी फर्म द्वारा निर्धारित कीमतों से भी नीची होती हैं, उदारहण के लिए

(1) एकाधिकारी बड़े पैमाने पर उत्पादन कर सकता है। इसलिए बड़े पैमाने की बचतें तथा लाभ उसको प्राप्त हो सकते हैं। इसके विपरीत छोटी-छोटी प्रतियोगी फर्में पैमाने के विस्तार की बचतें प्राप्त नहीं कर सकतीं।

(2) एकाधिकारी अपना उत्पादन योग्यता तथा साहस के साथ कर सकता है और उसे पर्याप्त मात्रा में पूंजी ब्याज की कम दर पर प्राप्त हो सकती है। एकाधिकारी को अपने निवेश (Investment) में जोखिम भी कम उठाना पड़ता है।

(3) कभी-कभी एकाधिकारी जनहित को सामने रखकर भी कीमत को कम कर देते हैं। एकाधिकारी को समाज में सम्मान पाने की आकांक्षा होती है। अत: वह ऐसे काम से दूर रहता है जो कि नैतिक रूप से गलत होता है।

(4) एकाधिकारी को इस बात का भी भय रहता है कि उसका कभी न कभी कोई प्रतिद्वंद्वी न उत्पन्न हो जाए। यह भय भी उसे ऊँची कीमत लेने से रोकता है।

संक्षेप में, **साधारणतया एकाधिकारी कीमत, पूर्ण प्रतियोगिता की कीमत से अधिक होती है, परंतु कई परिस्थितियों में यह कम भी हो सकती है।**

3.39. अपूर्ण व एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता (Imperfect and Monopolistic Competition)

नोट

वास्तविक रूप से अर्थव्यवस्था में ने तो पूर्ण प्रतियोगिता और न एकाधिकार की स्थिति होती है। अपितु इनके बीच की स्थिति एकाधिकरात्मक की पायी जाती है।

जिसे सर्वप्रामि प्रो. एडवर्ड एच. चैम्बरलिन ने "एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता" की स्थिति की संज्ञा दी है, जिसे श्रीमती जॉन राबिन्सन ने अपूर्ण प्रतियोगिता कहा है। प्रो. चैम्बरलिन ने वर्ष 1933 में प्रकाशित पुस्तक (The Theory of Monopolistic Competition) मे एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का विचार प्रस्तुत किया है।

अपूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ है प्रतियोगिता का सीमित होना अर्थात् न तो प्रतियोगिता का अभाव हो और न ही प्रतियोगिता पूर्णता लिये हुए हो। दूसरे शब्दों में जब पूर्ण प्रतियोगिता की विभिन्न दशाओं में से किसी भी एक दशा का अभाव होता है तब अपूर्ण प्रतियोगिता जन्म लेती है। स्पष्ट है कि अपूर्ण प्रतियोगिता के लिए विशुद्ध प्रतियोगिता में अपूर्णता होना जरूरी है।

फेयर चाइल्ड ने कहा है, "यदि बाजार उचित प्रकार से संगठित न हो, यदि क्रेता और विक्रेताओं के पारस्परिक संपर्क में कठिनाई उत्पन्न होती हो तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा खरीदी गई वस्तुओं और दिए गए मूल्यों के ज्ञात करने में समर्थन (??) तो ऐसी स्थिति को हम अपूर्ण प्रतियोगिता कहते हैं।

अपूर्ण प्रतियोगिता के कारण एवं विशेषताएँ (Causes and Characteristics of Imperfect Competition)

अपूर्ण प्रतियोगिता को जन्म देने वाले प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं, जिन्हें विशेषता भी कहा जाता है–

1. **अल्प संख्या में क्रेता व विक्रेता**–अपूर्ण प्रतियोगिता में क्रेता और विक्रेता की संख्या कम होती है और व्यक्तिगत क्रेता या विक्रेता वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकते हैं।
2. **वस्तु की इकाइयों में अंतर**–अपूर्ण प्रतियोगिता में विभिन्न विक्रेताओं द्वारा निर्मित वस्तुएँ बिल्कुल एक जैसी नहीं होती बल्कि उनमें कुछ अंतर होता है। यह अंतर आकार, रंग, रूप, किस्म, पैकिंग, ब्रान्ड, ट्रेडमार्क, विक्रेता के व्यवहार अथवा दुकान की स्थिति के कारण हो सकता है। इस अंतर के कारण विभिन्न विक्रेताओं की वस्तुएँ एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न तो नहीं होती है परंतु निकट स्थापनापन्न होती हैं।
3. **क्रेताओं और विक्रेताओं में अज्ञानता**–क्रेताओं और विक्रेताओं की अज्ञानता के कारण अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उन्हें बाजार का पूर्ण ज्ञान न होने के कारण अलग-अलग मूल्यों पर वस्तु का क्रय विक्रय करते हैं।
4. **क्रेताओं में आलस्य**–यह संभव है कि क्रेताओं को इस बात की जानकारी हो कि कौन सी वस्तु किस स्थान पर सस्ती मिल रही है, फिर भी वे आलस्य के कारण अपने आस-पास से ही महँगी वस्तु का क्रय कर लेते हों।
5. **अधिक यातायात व्यय**–अपूर्ण प्रतियोगिता का एक महत्त्वपूर्ण कारण यातायात व्यय है। एक ही वस्तु की विभिन्न स्थानों पर लाने ले जाने में ऊँची यातायात व्यय आती है अत: एक ही वस्तु के विभिन्न स्थानों पर अनेक मूल्य प्रचलित होते हैं।

अपूर्ण प्रतियोगिता के प्रकार (Types of Imperfect Competition)

अपूर्ण प्रतियोगिता के कई रूप हो सकते हैं जो मुख्य रूप से विक्रेताओं की संख्या तथा वस्तु विभेद के अंश पर निर्भर करते हैं। इस दृष्टि से अपूर्ण प्रतियोगिता की निम्न तीन बाजार स्थितियाँ बतायी जाती हैं–

(*i*) एकाधिकृत या एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता (Monopolistic Competition)

(*ii*) द्वि-अल्पाधिकार या द्वयाधिकार प्रतियोगिता (Duopoly Competition)

(*iii*) अल्पाधिकार या अल्प विक्रेताधिकार प्रतियोगिता (Oligopoly Competition)

1. **एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का अर्थ व परिभाषा (meaning and Definitions of Monopolistic Competition)**

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता से अभिप्राय उस अवस्था से है जिसमें विक्रेता वस्तुओं में इतना विभेद पाया जाता है कि वे एक-दूसरे की पूण्र स्थानापन्न नहीं होती। प्रत्येक उत्पादक या विक्रेता का अपनी वस्तु पर पूण्र एकाधिकार तो होता हैं, परंतु चूँकि उसे बाजार में अपूर्ण स्थानापन्न वस्तुओं के साथ प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है, इसलिए ऐसी अवस्था को एकाधिकारात्मक अवस्था कहते हैं. उदाहरण के लिए भारत में सिगरेट के कुछ उत्पादक है, जो अलग-अलग प्रकार के सिगरेट (कोई पनामा, कोई चारमीनार इत्यादि) का उत्पादन करते हैं। इन विभिन्न प्रकार के सिगरेटों के गुणों में कोई विशेष अंतर नहीं है, केवल इनके अलग-अलग ट्रेड मार्क हैं और अलग-अलग नाम से ये बेचे जाते हैं। दूसरे शब्दों में, विभिन्न प्राकर के सिगरेटों के ब्रांडों के बीच प्रतियोगिता तो है किंतु पूर्ण नहीं। इसका कारण यह है कि सिगरेटों के उत्पादक तो बहुत है, परंतु इनके उत्पादन में विभिन्नता पायी जाती है। अर्थात् वे अलग-अलग ब्रांड की सिगरेटों का उत्पादन करते हैं।

चैम्बरलिन के शब्दों में–"एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता बाजार का वह रूप है जिसमें बहुत सी छोटे फर्में होतीं हैं और उनमें से प्रत्येक मिलती-जुलती वस्तुएँ बेचती हैं, परंतु वस्तुएँ एकरूप नहीं होती है और वस्तुओं में थोड़ा अंतर होता है।"

प्रो. रिचार्ड एच. लेफ्टविच के शब्दों में–"एकाधिकारात्मक प्रतिस्पर्धा के बाजार में एक विशेष किस्म की वस्तु के अनेक विक्रेता होते हैं तथा एक विक्रेता की वस्तु किसी न किसी रूप में दूसरे विक्रेता से भिन्न होती है जब विक्रेताओं की संख्या इतनी अधिक होती है कि एक विक्रेता के कार्यों का दूसरे विक्रेता के कार्यों पर कोई स्पष्ट प्रभाव न पड़े तो यह उद्योग एकाधिकारात्मक प्रतिस्पर्धा का उद्योग बन जाता है।"

उपर्युक्त परिभाषओं के आधार कहा जा सकता है कि एकाधिकारात्मक प्रतिस्पर्धा का अभिप्राय बाजार की एक ऐसी मिश्रित स्थिति से है जिसके अंतर्गत पूर्ण प्रतिस्पर्धा तथा एकाधिकार दोनों वे गुण पाये जाते हैं।

2. **एकाधिक प्रतियोगिता की विशेषताएँ (Characteristics of Monopolistic Competition)**

एकाधिकरात्मक प्रतियोगि बाजार में निम्न विशेषताएँ पायी जाती हैं–

1. स्वतंत्र विक्रेताओं की अधिक संख्या।
2. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत वस्तुओं में विभेद पाया जाता है।
3. बाजार में गैर मूल्य प्रतियोगिता विद्यमान है।
4. नयी फर्मो का प्रवेश एवं बर्हिगमन।
5. दीर्घकाल में इस प्रतियोगिता में सामान्य लाभ प्राप्त होता है। क्योंकि फर्मों का प्रवेश स्वतंत्र एवं बर्हिगमन आसान हो जाता है।
6. विज्ञापन एवं विक्रय लागतों की उपस्थिति।
7. क्रेताओं को बाजार का पूर्ण ज्ञान का अभाव होता है।
8. प्रत्येक फर्म की अपनी नीति होती है पूण्र प्रतियोगिता की भांति एकाधिकारात्मक प्रतियोगी फर्म कीमत प्राप्तकर्ता नहीं होता।

3. **एकाधिकरात्मक प्रतियोगिता में मूल्य एवं उत्पादन का निर्धारण (Price and Output Determination Under Monopolistic Competition)**

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में मूल्य का निर्धारण उस बिंदु पर होता है जहाँ उसकी MR और MC बराबर होती है।

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत अल्पकाल तथा दीर्घकाल में उत्पादन एवं मूल्य का निर्धारण अलग-अलग होता है–

नोट

(*i*)- अल्पकाल में उत्पादन व मूल्य का निर्धारण (Price and Output Determination Under Short Period)

(*ii*) दीर्घकाल में उत्पादन व मूल्य का निर्धारण (price and Output Determination Under Long period)

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत दीर्घकाल में फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त क्योंकि नीय फर्मों के आ जाने के कारण अतिरिक्त लाभ बढ़ जाता है, और सामान्य लाभग का फर्मों को प्रापत होता है। दीर्घकाल में फर्म की सीमांत आगम (MR) और सीमांत लागत (MC) और औसत आगम (AR) व औसत लागत (AC) बराबर होनी आवश्यक है। दीर्घकाल में फर्म के संतुलन को चित्र 3.35 में दर्शाया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि फर्म को दीर्घकाल में सामान्य लाभ प्राप्त होता है।

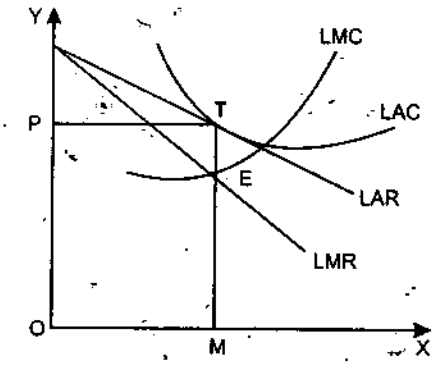

चित्र 3.35

दीर्घकाल में फर्म का साम्य बिंदु = E

कुल उत्पादन की मात्रा = OM

प्रति इकाई औसत लागत = MT

प्रति इकाई औसत आगम = MT

अर्थात् LAR = LAC

इसलिए फर्म को दीर्घकाल में सामान्य लाभ प्राप्त होगा।

द्वयाधिकार प्रतियोगिता (Doupoly Competition)

द्वयाधिकार से अभिप्राय, बाजार की उस स्थिति से है, जिसमें किसी एक ही सर्वथा समान अथवा लगभग समान वस्तु के दो उत्पादक होते हैं। दोनों की अपने उत्पादन कार्य में स्वतंत्र होते हैं एवं दोनों की वस्तुएँ एक-दूसरे से प्रतियोगिता करती हैं। यदि एक विक्रेता अपनी उपज अथवा कीमत संबंधी नीति में परिवर्तन करता है, तो दूसरे की ओर से इसकी बलशाली प्रतिक्रिया होती है।

इस प्रकार दोनों विक्रेताओं में से कोई भी बिना दूसरे की प्रतिक्रिया को ध्यान में रखे उत्पादन की मात्रा अथवा कीमत को निश्चित नहीं कर सकता।

डॉ. जोन (Dr. John) के शब्दों में "द्वि-विक्रेता एकाधिकार बाजार की वह स्थिति है, जिसमें किसी एक-ही सर्वथा समान अथवा लगभग समान वस्तु के दो उत्पादक होते हैं, जो अपने बीच कीमत अथवा

उत्पादन मात्रा के विषय में किसी भी प्रकार के समझौते से बाध्य नहीं होते।"

अल्पाधिकार की भाँति द्वयाधिकार में भी दोनों विक्रेताओं के बीच पारस्परिक निर्भरता पायी जाती है लेकिन फिर भी इन दोनों के बीच "कीमत युद्ध" की संभावना बहुत कम होती है। इसका कारण यह है कि केवल मात्र दो विक्रेता होने से इन दोनों के बीच समझौता आसानी से हो जाता है और दोनों ही ऊँची कीमत का लाभ आपस में मिलकर बाँट लेते हैं। हाँ, भेदित द्वयाधिकार की स्थिति में दोनों विक्रेता का बाजार अलग-अलग होता है और दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र में एकाधिकारी की भाँति कार्य करते हैं और वस्तु की कीमत भी एकाधिकारी की तरह निर्धारित करते हैं।

नोट

द्वयाधिकार की विशेषताएँ (Characteristic of Duopoly)

द्वयाधिकार बाजार की निम्न विशेषताएँ होती हैं–

1. यह एक ऐसी स्थिति का द्योतक है जिनमें केवल दो ही उत्पादक होते हैं।
2. दोनों सर्वथा समान अथवा लगभग समान वस्तु का विक्रय करते हैं।
3. दोनों की अपने उत्पादन कार्य में स्वतंत्र होते हैं तथा दोनों की वस्तुएँ एक दूसरे से प्रतियोगिता करती हैं।
4. अत: प्रत्येक प्रतिस्पर्धा को स्वयं अपनी नीति का निर्धारण करने में दूसरे प्रतिस्पर्धा की नीति को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। अर्थात् दोनों विक्रेताओं के बीच पारस्परिक निर्भरता पायी जाती है।
5. द्वयाधिकार नामक बाजार स्थिति एकाधिकार के अधिक निकट मानी जाती है, क्योंकि कुछ विशेषताएँ एकाधिकार जैसी होती हैं।
6. जब दो विक्रेता एक रूप एवं एक गुण जैसी वस्तु बेचते हैं तब उसे विशुद्ध द्वयाधिकार कहते हैं।

फ्रांस के अर्थशास्त्री कूर्नो (Cournot) तथा इंग्लैण्ड के अर्थशास्त्री एजवर्थ (Edgeworth) ने सर्वप्रथम द्वयाधिकार के अंतर्गत कीमत निर्धारण की समस्या का अध्ययन किया और उस समस्या के समाधन के लिए सुनियोजित मॉडल प्रस्तुत किए। इन अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत समाधान की परंपरावादी सिद्धांत के नाम से जाना जाता है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों में जिन्होंने द्वयाधिकार के अंतर्गत कीमत निर्धारण की समस्या का अध्ययन किया उनमें चैम्बरलिन (Chemberline), बॉमोल (Banumol), स्वीजी (Sweazy) आदि अर्थशास्त्रियों के नाम उल्लेखनीय है।

एकाधिकार और एकाधिकृत प्रतियोगिता में अंतर (Distinction between Monopoly and Monopolistic Competition)

एकाधिकार और एकाधिकृत प्रतियोगिता वाले बाजार में निम्नलिखित समानताएँ और असमानताएँ हैं–

समानताएँ :

1. दोनों बाजारों में साम्य वहाँ स्थापित होता है जहाँ सीमांत लागत सीमांत आय के बराबर होती है।
2. दोनों में ही मांग-वक्र मांग-वक्र के नीचे स्थित होता है।
3. दोनों बाजार अवस्थाओं में सांय बिंदु औसत आय रेखा अथवा मांग रेखा अथवा कीमत रेखा से नीचे स्थित होता है।
4. दोनों अवस्थाओं में अतिरिक्त क्षमता पायी जाती है अर्थात् दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र को मांग-वक्र इसके न्यूनतम बिंदु पर स्पर्श नहीं करता।
5. दोनों बाजारों में ही उत्पादक कीमत-निर्माता होते हैं अर्थात् वे अपनी इच्छानुसार कीमत में परिवर्तन कर सकते हैं।

नोट

असमानताएँ:

1. एकाधिकार के अंतर्गत एक वस्तु का केवल एक ही उत्पादक होता है जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में उत्पादकों की संख्या बहुत होती हैं।
2. एकाधिकार में उद्योग और फर्म में कोई अंतर नहीं पाया जाता जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में अनेक फर्में होती हैं तथा इसमें उद्योग को समूह कहते हैं।
3. एकाधिकार में वस्तु-विभेद नहीं पाया जाता क्योंकि इसमें एक ही वस्तु का उत्पादन किया जाता है। इसके विपरीत एकाधिकृत प्रतियोगिता में वस्तुएँ आकार, डिजाइन, रंग, पैकिंग, सुगंध आदि के कारण एक-दूसरे से भिन्न रहती हैं जिससे वस्तु-विभेद पाया जाता है।
4. एकाधिकार में सामान्यतया विक्रय लागतों का अभाव रहता है परंतु एकाधिकृत प्रतियोगिता में फर्मों की संख्या अधिक होने पर प्रतियोगिता के कारण विक्रय लागतों पर व्यय करना अनिवार्य होता है।
5. एकाधिकार में वस्तुएँ निकट स्थानापन्न नहीं होतीं जिनके कारण वस्तु की मांग कम लोचदार होती है। इसके विपरीत एकाधिकृत प्रतियोगिता में वस्तुएँ निकट स्थानापन्न होती हैं। जिससे हर फर्म की वस्तु की मांग अधिक लोचदार होती है।
6. वस्तु की कीमत निश्चित करने में जितनी स्वतंत्रता एकाधिकारी को होती है, उतनी एकाधिकृत प्रतियोगी फर्म को नहीं होती। एकाधिकारी वस्तु की कीमत भी सामान्यतया एकाधिकृत प्रतियोगिता में वस्तु की कीमत से अधिक होती हैं।
7. एकाधिकार में एकाधिकारी का वस्तु की कीमत अथवा पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण होने के कारण कोई भी फर्म एकाधिकारी उद्योग में प्रवेश नहीं कर सकती इसके विपरीत एकाधिकृत प्रतियोगिता में दीर्घकाल में फर्में समूह में प्रवेश कर सकती हैं और उससे बाहर भी जा सकती हैं, क्योंकि इस बाजार अवस्था में प्रतियोगिता का अंश भी पाया जाता है।
8. एकाधिकार में फर्मों के प्रवेश का भय न होने के कारण एकाधिकारी दीर्घकाल में भी असामान्य लाभ कमाता है जबकि फर्में एकाधिकृत प्रतियोगिता में दीर्घकाल में सामान्य लाभ ही अर्जित करती है क्योंकि फर्मों का बहिर्गमन और प्रवेश समूह में होता रहता है।

पूर्ण प्रतियोगिता और अपूर्ण अथवा एकाधिकृत प्रतियोगिता में अंतर (Difference between Perfect and Imperfect or Monopolistic Competition)

1. **क्रेता और विक्रेताओं की संख्या**–पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेता और विक्रेता बहुत अधिक संख्या में होते हैं, जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है।
2. **वस्तु**–पूर्ण प्रतियोगिता में निर्मित व बिक्रीत वस्तुएँ एकरूप होती हैं, जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में वस्तु विभेद होता है अर्थात् वस्तु में गुण, रूप, पैकिंग, ट्रेडमार्क, वजन आदि में अंतर होता है।
3. **बाजार ज्ञान**–पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेताओं और विक्रेताओं को बाजार की पूर्ण जानकारी होती है, जबकि अपूर्ण अथवा एकाधिकृत प्रतियोगिता में क्रेता और विक्रेता को बाजार का पूर्ण ज्ञान नहीं होती है।
4. **फर्मों का प्रवेश व बहिर्गमन**–पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग में नयी फर्मों का प्रवेश व पुरानी फर्मों का बहिगर्मन बहुत सरल होता है, जबकि अपूर्ण अथवा एकाधिकृत प्रतियोगिता में फर्मों का प्रवेश व बहिर्गमन हो सकता है लेकिन पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति बहुत सरल नहीं होता है।
5. **मूल्य निर्धारण**–पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग मूल्य निर्धारित करती है और प्रत्येक फर्म मूल्य ग्रहण करने वाली (Price Taker) होती है और प्रत्येक फर्म द्वारा स्वीकृत होती है, जबकि एकाधिकृत

प्रतियोगिता में प्रत्येक फर्म एक सीमा तक मूल्य को प्रभावित और निर्धारित करती है।

6. **मूल्यों में समानता**–पूर्ण प्रतियोगिता में संपूर्ण बाजार में एक समान मूल्य पाया जाता है और यह मूल्य सभी क्षेत्रों के बाजारों में एक समान होता है, जबकि अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में मूल्य अलग-अलग होता है।
7. **माँग रेखा का स्वरूप**–पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म के लिए माँग रेखा (अर्थात् औसत आगम रेखा) एक समानांतर पड़ी रेखा होती है, जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में माँग रेखा बायें से दायें नीचे की और झुकती हुई होती है।
8. **सीमांत और औसत आगम**–पूर्ण प्रतियोगिता मे औसत आगम (AR) और सीमांत आगम (MR) दोनों बराबर होते हैं और एक ही रेखा द्वारा दोनों दिखायें जाते हैं, जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में औसत आगम (AR) सीमांत आगम (MR) से अधिक होती है।
9. **परिवहन एवं विक्रय लागत**–पूर्ण प्रतियोगी बाजार की इस दशा में परिवहन एवं विक्रय लागतें नहीं होती हैं, जबकि अपूर्ण बाजार में परिवहन एवं विक्रय लागतें होती हैं।
10. **गैर मूल्य प्रतियोगिता**–पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में फर्मों के बीच गैर मूल्य प्रतियोगिता नहीं होती है, जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता बाजार में गैर मूल्य प्रतियोगिता जैसे–आकर्षक पैकिंग, आसान उधार, विज्ञापन, घर पर माल पहुँचाने आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान होती है।
11. **वास्तविकता**–पूर्ण प्रतियोगी बाजार एक काल्पनिक स्थिति है जो व्यावहारिक जीवन में नहीं पायी जाती है; जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता बाजार एक वास्तविक स्थिति है जो बाजार में पायी जाती है।

नोट

3.40. अविश्वास नीति और एकाधिकार (Monopoly and Antitrust)

अविश्वास नीति का तात्पर्य एकाधिकार के प्रभुत्व वाले बाजारों में सरकारी हस्तक्षेप और एकाधिकार शक्ति के दुरुपयोग से है। यूके में, एंटीट्रस्ट नीति को केवल प्रतिस्पर्धा नीति के रूप में जाना जाता है, जिसमें ओएफटी और प्रतियोगिता और बाजार प्राधिकरण विलय और एकाधिकार शक्ति के दुरुपयोग की जाँच करते हैं।

अविश्वास नीति के कारण

जब कंपनियों के पास एकाधिकार शक्ति होती है, तो वे अपने बाजार की शक्ति का दोहन करने में सक्षम होते हैं, जिससे परिणाम ऐसे होंगे–

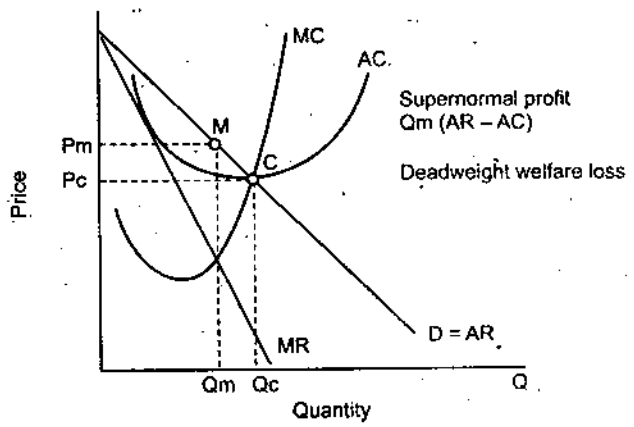

चित्र 3.36

- प्रतिस्पर्धी संतुलन की तुलना में अधिक कीमत निर्धारित करें। इससे उपभोक्ता अधिशेष में गिरावट और आवंटन क्षमता में वृद्धि होती है।

नोट

- उपभोक्ताओं की कीमत पर 'अधिक' लाभ कमाएँ। शक्तिशाली एकाधिकार श्रमिकों और उपभोक्ताओं की कीमत पर लाभ प्राप्त करने में सक्षम हैं। यह पूरी अर्थव्यवस्था में धन के बदलाव का प्रतिनिधित्व करता है।
- नवाचार और निवेश को रोकता है। शक्तिशाली एकाधिकार उद्योग में नए प्रवेशकों को आज़माने और अवरूद्ध करने के लिए अपने बाजार की शक्ति का उपयोग करो हैं। इससे उपभोक्ताओं के लिए कम विकल्प और नए विचारों में गिराट आती है। उद्योग पर हावी होने वाली एक फर्म को रोकने से अधिक नवाचार होता है।
- शक्तिशाली ट्रस्टों में अक्सर एकाधिकारी शक्ति होती है। यह श्रमिकों को रोजगार देने या आपूर्ति खरीदने में बाजार की शक्ति है। यह समाज में हितधारकों की कीमत पर मुनाफा बढ़ाने का एक और तरीका हो सकता है।
- बहुत अधिक बाजार हिस्सेदारी के साथ एक बड़े एकाधिकार को तोड़ना। उदाहरण के लिए, सरकार विभिन्न शाखाओं के बीच प्रतिस्पर्धा पैदा करने के लिए उद्योग को विभिन्न कंपनियों में तोड़ सकती है।
- विलय को रोकना जो एक मौजूदा एकाधिकार की शक्ति को बढ़ाएगा। सभी विलय जो 25% से अधिक बाजार हिस्सेदारी के साथ एक फर्म की ओर ले जाते हैं उन्हें प्रतिस्पर्धा और बाजार प्राधिकरण के लिए भेजा जाता है।
- अनुचित मूल्य निर्धारण रणनीतियों के खिलाफ विधान। उदाहरण के लिए, यदि एकाधिकार बाजार में प्रवेश करने वाली नई फर्मों को हतोत्साहित करने के लिए ऊर्ध्वाधर मूल्य प्रतिबंधों का उपयोग करता है, तब सरकार जुर्माना लगा सकती है।
- मिलीभगत के खिलाफ कानून।
- प्रवेश के लिए बाधाओं को रोकना। प्रतिस्पर्धा के लिए बाजार खोलना। उदाहरण के लिए, बिजली और गैस बाजार को समाप्त कर दिया गया है, जिससे नई फर्मों को मौजूदा बुनियादी ढांचे का उपयोग करने की अनुमति मिलती है।

अविश्वास नीति और प्रतियोगिता

अक्सर अविश्वास नीति अग्रणी कंपनियों के बाजार हिस्सेदारी पर आधारित थी। उदाहरण के लिए, यदि किसी फर्म के पास 25% से अधिक है तो उसे बाजार की शक्ति माना जाता है। हालाँकि, हाल ही में प्रतियोगिता को अधिक महत्व दिया गया है। यह बाजार में प्रवेश और निकास की आसानी को देखता है। यदि प्रवेश में आसानी है तो प्रतिस्पर्धा का खतरा कीमतों को प्रतिस्पर्धी बनाए रखने के लिए पर्याप्त हो सकता है, बाजार की हिस्सेदारी चाहे जो भी हो।

3.41. अपूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ (Imperfect Competition)

वास्तविक जीवन में न तो पूर्ण प्रतियोगिता की दशाएँ पायी जाती हैं और न एकाधिकार की। प्राय: इन दोनों के बीच की अवस्थाएँ मिलती हैं, जिसे अपूर्ण प्रतियोगिता कहते हैं। अपूर्ण प्रतियोगिता से अभिप्राय पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के बीच की किसी अवस्था से होता है। अपूर्ण प्रतियोगिता का स्वरूप अंशत: प्रतियोगिता तथा अंशत: एकाधिकारी होता है।

फेयर चाइल्ड के शब्दों में, "यदि बाज़ार उचित प्रकार से संगठित नहीं होता, यदि क्रेता और विक्रेता एक-दूसरे के सम्पर्क में आने में कठिनाई का अनुभव करते हैं और वे दूसरे के द्वारा क्रय की गयी वस्तुओं और उनके द्वारा दिये गये मूल्यों की तुलना करने में असमर्थ रहते हैं तोऐसी स्थिति को अपूर्ण प्रतियोगिता कहते हैं।

जे० के० मेहता के शब्दों में, "यह बात भली-भाँति स्पष्ट हो गयी है कि विनमय की प्रत्येक

स्थिति वह स्थिति है जिसको आंशिक एकाधिकार की स्थिति कहते हैं और यदि आंशिक एकाधिकार को दूसरी ओर से देखा जाए तो यह अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति है। प्रत्येक स्थिति में प्रतियोगिता तत्त्व तथा एकाधिकार तत्त्व दोनों का मिश्रण है।"

नोट

अपूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताएँ

1. अपूर्ण प्रतियोगिता में क्रेताओं, विक्रेताओं एवं फर्मों की संख्या पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा कम होती है।
2. अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रतियोगिता तो होता है, किंतु वह इतनी अपूर्ण तथा दुर्बल होती है कि माँग और पूर्ति की शक्तियों को कार्य करने का पूर्ण अवसर नहीं मिलता।
3. क्रेताओं और विक्रेताओं को बाजार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान नहीं होता है। परिणामस्वरूप बाज़ार में कीमतें भिन्न-भिन्न होती हैं।
4. प्रत्येक विक्रेता को कुछ सीमा तक अपनी वस्तु की मनचाही कीमत वसूल करने की स्वतन्त्रता रहती है।
5. अपूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु-विभेद होता है। प्रत्येक फर्म अपनी वस्तु की बाजार माँग में अलग पहचान बनाने का प्रयत्न करती है।
6. अपूर्ण प्रतियोगिता में फर्मों को बाजार में प्रवेश करने व छोड़ने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। अर्थात् बाजार में फर्मों का स्वतंत्र प्रवेश व बहिर्गमन होता है।
7. फर्म के माँग वक्र या औसत आगम वक्र (AR) का ढाल ऋणात्मक होता है और फर्म का सीमान्त आगम वक्र (MR) इसके औसत आगम वक्र से नीचा होता है।
8. दीर्घकाल में वस्तु का मूल्य सीमान्त आगम (MR) तथा ओसत आगम (AR) के बराबर होता है।
9. अपूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु की बिक्री बढ़ाने हेतु विज्ञापन में प्रचार आदि का आश्रय लिया जाता है।
10. व्यावहारिक जीवन में बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की ही स्थिति पायी जाती है।
11. अपूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु का बाजार संगठित नहीं होता।

अपूर्ण प्रतियोगिता में फर्म द्वारा कीमत व उत्पादन का निर्धारण : अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत निर्धारण में माँग और पूर्ति की शक्तियों का समुचित ध्यान रखा जाता है। इनमें कीमत-निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ पर सीमान्त लागत तथा सीमान्त आय दोनों ही बराबर होती हैं।

अपूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक फर्म अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए उत्पादन में तब तक परिवर्तन करती रहेगी जब तक MC = MR नहीं हो जाता। यदि सीमान्त आय सीमान्त लागत से अधिक है तो फर्म अपने उत्पादन को बढ़ाकर लाभ को अधिकतम करेगी और यदि सीमान्त आय सीमान्त लागत से कम है तो फर्म अपने उत्पादन को कम करके लाभ को अधिकतम करेगी। अतः फर्म का संतुलन बिन्दु वहाँ निश्चित होगा जहाँ सीमान्त आय और सीमान्त लागत बराबर होती हैं। इस बिन्दु पर फर्म का लाभ अधिकतम होता है और उसमें विस्तार व संकुचन की प्रवृत्ति नहीं होती है।

अपूर्ण प्रतियोगिता में फर्म की औसत आय व सीमान्त आय रेखाएँ एक माँग के रूप में बाएँ से दाएँ नीचे की ओर गिरती हुई होती हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि फर्म द्वारा एक रूप वस्तु का उत्पादन नहीं किया जाता। प्रत्येक फर्म यद्यपि एकाधिकारी नहीं होती, परंतु एकाधिकारी प्रवृत्ति रखती है। प्रत्येक फर्म वस्तु की कीमत अपने ढंग से निर्धारित करती है। अपूर्ण प्रतियोगिता में फर्म उद्योग से कीमत ग्रहण नहीं करती है। अपूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त आय औसत आय से कम होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि एक अतिरिक्त इकाई को बेचने के लिए फर्म को वस्तु की कीमत में थोड़ी-सी कमी करनी पड़ती है। इसलिए फर्म की औसत आय सीमान्त आय से अधिक होती है।

1. **अपूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत अल्पकाल में मूल्य व उत्पादन-निर्धारण**—अल्पकाल में यह

नोट

सम्भव हो सकता है कि फर्म अपने उत्पादन का समायोजन माँग के अनुसार न कर सके। इसलिए अल्पकाल में फर्म की कीमत-निर्धारण की स्थिति माँग के अनुरूप होती है। यदि वस्तु की माँग अधिक होती है और वस्तु का निकट-स्थानापन्न नहीं होता तो फर्म वस्तु की कीमत ऊँची निर्धारित करने की स्थिति में होगी। इसके विपरीत, यदि वस्तु की माँग कम होती है तो मुल्य-निर्धारण नीची कीमत पर होगा। यदि माँग अत्यधिक कमजोर है तो कीमत और भी अधिक नीची निर्धारित होगी। इस प्रकार फर्म तीन स्थितियों में पायी जा सकती है–

(अ) असामान्य लाभ या लाभ अर्जित करने की स्थिति,

(ब) शून्य लाभ या सामान्य लाभ प्राप्त करने की स्थिति तथा

(स) हानि की स्थिति।

उपर्युक्त तीनों स्थितियों की हम निम्नलिखित व्याख्या कर सकते हैं–

(अ) **असामान्य लाभ:** यदि किसी फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग बाजारों में अधिक है और उसकी स्थानपन्न वस्तुएँ नहीं है तो फर्म वस्तु की ऊँची कीमत निर्धारित करेगी। अल्पकाल में अपूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म असामान्य लाभ प्राप्त करने की स्थिति में होता है ऐसी स्थिति में फर्म की औसत आय उसकी औसत लागत से अधिक होती है। कोई भी फर्म ऐसे बिन्दु पर संतुलन की स्थिति में होती हैं जहाँ सीमान्त लागते तथा सीमान्त आय बराबर होती हैं।

रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन–संलग्न चित्र में, OX-अक्ष पर उत्पादन MR की मात्रा तथा OY-अक्ष पर कीमत और लागत दिखायी गयी है। फर्म E बिन्दु पर संतुलन की स्थिति में है, क्योंकि इस बिन्दु पर फर्म की उत्पादन की मात्रा फर्म द्वारा असामान्य लाभ या सीमान्त आय और सीमान्त लागत (MR = MC) बराबर हैं। संतुलन लाभ की स्थिति उत्पादन OS तथा कीमत PO है।

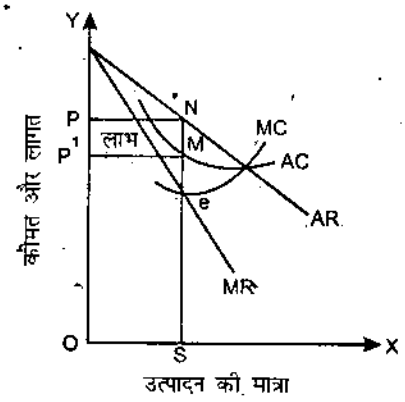

चित्र 3.37 फर्म द्वारा असामान्य लाभ या लाभ की स्थिति

(ब) **शून्य या सामान्य लाभ प्राप्त करने की स्थिति**–फर्म में सामान्य लाभ की स्थिति उस समय होती है जब वस्तु की माँग कम होती है तथा फर्म ऊँची कीमत निश्चित करने की स्थिति में नहीं होती। ऐसी स्थिति में फर्म को औसत आय (AR) उसकी औसत लागत (AC) के बराबर होती है, जिसके कारण फर्म न तो लाभ प्राप्त करती है और न हानि ही अर्थात् फर्म संतुलन की स्थिति औसत आय में होती है।

रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन–संलग्न चित्र में, OX-अक्ष पर उत्पादन की मात्रा तथा OY-अक्ष पर कीमत व लागत दिखायी गयी है। फर्म E बिन्दु पर सन्तुलन की स्थिति में है, क्योंकि यहाँ पर उसकी सामान्य आय और सीमान्त लागत (MR = MC) बराबर हैं। फर्म को औसत आय: और औसत लागत भी बराबर (AR = AC) हैं। इसलिए फर्म केवल सामान्य लाभ अथवा शून्य लाभ प्राप्त कर रही है।

नोट

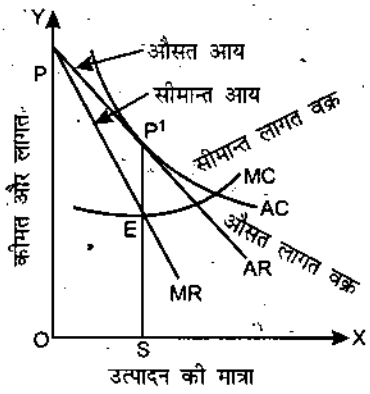

चित्र 3.38 फर्म की शून्य लाभ या सामान्य लाभ की स्थिति

(स) **हानि की स्थिति**–जब वस्तु की माँग इतनी अधिक कम हो लाभ की स्थिति कि फर्म को अपनी वस्त को विवश होकर कम कीमत पर बेचना पड़े हैं। तब फर्म हानि की स्थिति में होती है। इस स्थिति में फ़र्म की औसत आय औसत लागत से कम होती है। इसलिए फर्म हानि उठाती है।

रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन–संलग्न चित्र में, OX-अक्ष पर उत्पादन तथा OY-अक्ष पर कीमत और लागत दिखायी गयी हैं। फर्म E बिन्दु पर सन्तुलन की स्थिति में है क्यों की यहाँ पर उसकी सीमान्त आय और सीमान्त लागत (MR = MC) बराबर है। क्यों कि फर्म की औसत लागत उसकी औसत आय से अधिक है। इसलिए फर्म को हानि हो रही है।

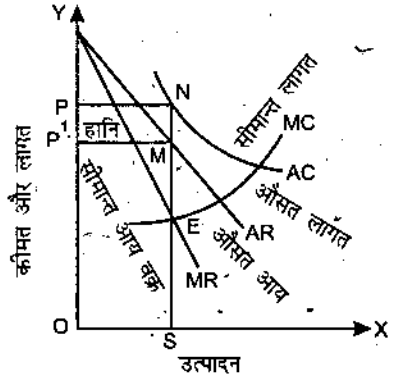

चित्र 3.39 फर्म की हानि की स्थिति

2. **अपूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकाल में कीमत व उत्पादन-निर्धारण**–दीर्घकाल में फर्म स्थिति संतुलन की स्थिति में होती है। अत: दीर्घकाल में फर्म केवल सामान्य लाभ अर्जित करती है। यदि दीर्घकाल में कुछ फर्में अथवा उद्योग असामान्य लाभ अर्जित करते हैं तो ऊँचे लाभ से आकर्षित होकर अन्य फर्में उद्योग में प्रवेश करने लगती हैं, जिसके कारण उस वस्तु के निकट-स्थानापन्न का उत्पादन प्रारंभ हो जाता है। लाभ गिरकर सामान्य स्तर पर आ जाता है। प्रतियोगिता के कारण असामान्य लाभ समाप्त हो जाएगा और प्रत्येक फर्म केवल सामान्य लाभ ही अर्जित करेगी।

रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन–संलग्न चित्र में, OX-अक्ष पर उत्पादन की मात्रा तथा OY-अक्ष पर कीमत दिखायी गयी है। इस चित्र में AR तथा MR क्रमश: औसत आय तथा सीमान्त आय वक्र हैं तथा AC और MC क्रमश: औसत लागत व सीमान्त लागत वक्र हैं। E फर्म का संतुलन बिन्दु है जिस पर सीमान्त आय और सीमान्त लागत है (MR = MC) बराबर हैं। है संतुलन उत्पादन तथा ON कीमत है। फर्म की औसत आय व सीमान्त लागत भी बराबर हैं। अत: फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त हो रहा है।

नोट

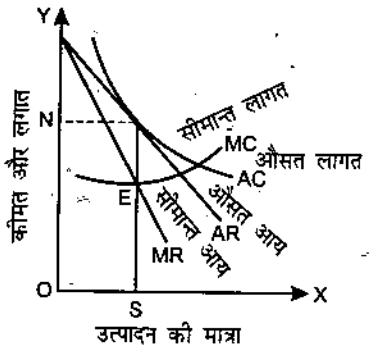

चित्र 3.40 दीर्घकाल में फर्म की कीमत व उत्पादन-निर्धारण (साधारण)

पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता में अंतर (भेद)

क्र०स०	पूर्ण प्रतियोगिता	अपूर्ण प्रतियोगिता
1.	पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेताओं व विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है।	अपूर्ण प्रतियोगिता में क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा कम होती है। इसमें एकाधिकारी प्रतियोगिता, अल्पाधिकार तथा द्वैधाधिकारी की स्थितियाँ सम्मिलित होती है।
2.	पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के द्वारा उत्पादित तथा बेची जाने वाली वस्तुओं में एकरूपता होती है।	अपूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत वस्तु-विभेद पाया जाता है। प्रत्येक फर्म बाजार में अपनी वस्तु की अलग पहचान बनाने का प्रयास करती है।
3.	पूर्ण प्रतियोगिता में फर्मों का स्वतंत्र प्रवेश व बहिर्गमन होता है।	अपूर्ण प्रतियोगिता में भी फर्मों का स्वतंत्र प्रवेश व बहिर्गमन होता है।
4.	पूर्ण प्रतियोगिताओं में क्रेताओं और विक्रेताओं का बाजार का पूर्ण ज्ञान होता है तथा उनमें परस्पर संपर्क होता है।	अपूर्ण प्रतियोगिता में क्रेताओं और विक्रेताओं को बाजार का संपूर्ण ज्ञान नहीं होता है।
5.	पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में वस्तु की कीमत का निर्धारण उद्योग द्वारा माँग और पूर्ति की शक्तियों के संतुलन से होता है। इस कीमत को उद्योग में कार्य कर रही फर्म दिया हुआ मान लेती हैं।	अपूर्ण प्रतियोगिता में विक्रेता कीमत निर्धारित करते समय माँग व पूर्ति की शक्तियों का ध्यान रखता है, परंतु प्रत्येक फर्म या विक्रेता का अपना अलग स्वतंत्र क्षेत्र होता है।
6.	पूर्ण प्रतियोगिता में औसत आय तथा सीमान्त आय बराबर होती हैं। औसत आय तथा सीमान्त आय वक्र एक सीधी पड़ी रेखा होती है।	अपूर्ण प्रतियोगिता में औसत आय सीमान्त आय से अधिक होती है। औसत आय वक्र तथा सीमान्त आय वक्र बाएँ से दाएँ नीचे को गिरता हुए होती है।
7.	पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म अल्पकाल में लाभ, सामान्य लाभ व हानि अर्जित करती है तथा दीर्घकाल में फर्म को मात्र सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है।	अपूर्ण प्रतियोगिता में फर्म अल्पकाल में लाभ, सामान्य लाभ व हानि की स्थिति में हो सकती है। तथा दीर्घकाल में फर्म को केवल सामान्य लाभ ही अर्जित हो पाता है।

8.	पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म विज्ञापन व प्रचार आदि में प्रायः बिक्री लागते वहन नहीं करती हैं।	अपूर्ण प्रतियोगिता में फर्म वस्तु की बिक्री बढ़ाने के लिए विज्ञापन व प्रचार पर व्यय करती है।
9.	पूर्ण प्रतियोगिता एक काल्पनिक दशा है। वास्तविक जीवन में यह नहीं पायी जाती है। अतः पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति केवल सैद्धान्तिक है।	अपूर्ण प्रतियोगिता व्यावहारिक जीवन में पायी जाती है। अतः यह सैद्धान्तिक न होकर व्यावहारिक है।

अपूर्ण प्रतिस्पर्धा में औसत आय वक्र तथा सीमान्त आय वक्र का रूप: अपूर्ण प्रतिस्पर्धा बाजार में औसत आय और सीमान्त आय रेखाएँ अलग-अलग होती हैं। तथा बाएँ से दाएँ नीचे की ओर गिरती हुई होती है। अतः स्पष्ट है। कि फर्म का उत्पादन बढ़ाने पर औसत आय (AR) और सीमान्त आय (MR) दोनों ही गिरती हैं। किन्तु सीमान्त आय औसत आय की अपेक्षा तेजी से गिरती है। इसका कारण यह होता है। कि विक्रेताओं की संख्या पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में अपेक्षा कृत कम होने से विक्रेता कीमत को प्रभावित कर सकने की स्थिति में होता है। अर्थात् वे कीमत में कमी करके वस्तु की बिक्री बढ़ा सकते हैं।

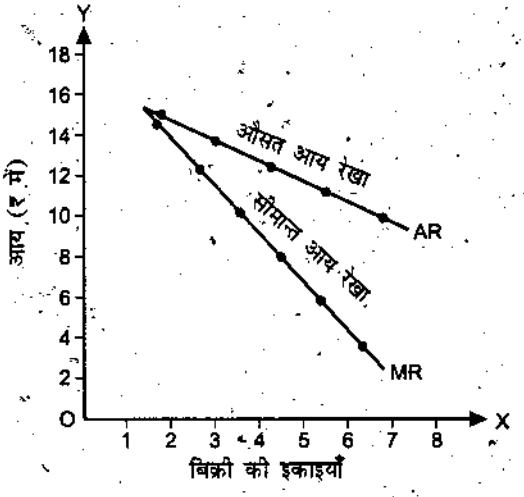

चित्र 3.41 अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में आय वक्र

अपूर्ण प्रतिस्पर्धा में सन्तुलन बिन्दु का निर्धारण: अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में आय वक्र अपूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत कीमत-निर्धारण में माँग और पूर्ति की शक्तियों का समुचित ध्यान रखा जाता है। इनमें कीमत-निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ पर सीमान्त लागत तथा सीमान्त आय दोनों ही बराबर होता हैं।

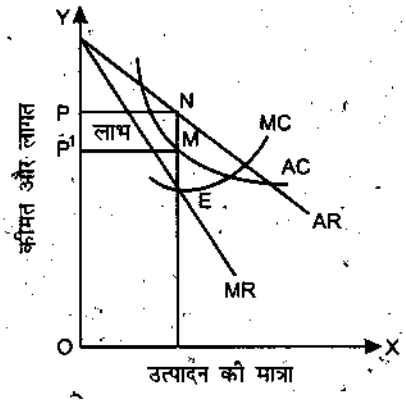

चित्र 3.42 फर्म द्वारा असामान्य लाभ की स्थिति

नोट

अपूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक फर्म अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए उत्पादन में जब तक परिवर्तन करती रहेगी तब तक MR = MC अर्थात् सीमान्त आय = सीमान्त लागत नहीं हो जाता। यदि सीमान्त आय, सीमान्त लागत से अधिक है तो फर्म अपने उत्पादन को बढाकर लाभ को अधिकतम करेगी और यदि सीमान्त आय, सीमान्त लागत से कम है तो फर्म अपने उत्पादन को कम करके लाभ की स्थिति अधिकतम करेगी। अत: फर्म को सन्तुलन बिन्दु वहाँ निश्चित होगा जहाँ सीमान्त आय और सीमान्त लागत बराबर होती हैं। इस बिन्दु पर फर्म का लाभ अधिकतम होता है और उससे विस्तार व संकुचन की प्रवृत्ति नहीं होती है।

3.42. सारांश (Summary)

- पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वह स्थिति है, जिसमें क्रेता और विक्रेता अधिक संख्या में होते हैं; उनमें पूर्ण एवं स्वतंत्र प्रतियोगिता पाई जाती है और कोई भी कोई भी क्रेता अथवा विक्रेता वस्तु विशेष की कीमत को अपने क्रय-विक्रय द्वारा प्रभावित करने की स्थिति में नहीं होता।
- एकाधिकार पूर्ण प्रतियोगिता के बिल्कुल विपरीत होता है। एकाधिकार शब्द का उदगम दो ग्रीक शब्द 'MONOS' तथा 'POLUS' से हुआ है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'अकेला' (Single) और 'विक्रेता' (Seller) है। अत: एकाधिकार बाजार की वह अवस्था है, जिसमें वस्तु का केवल एक ही विक्रेता होता है, तथा उस वस्तु की उत्पादन एवं पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण होता है।
- मूल्य विभेद से तात्पर्य है कि एक ही समय पर एक ही वस्तु को विभिन्न-विभिन्न क्रेताओं को अलग-अलग मूल्य पर बेचना। इसे विवेचनात्मक एकाधिकार, भेदपूर्ण एकाधिकार तथा विभेदकारी एकाधिकार आदि नामों से भी जाना जाता है। एकाधिकारी अधिक लाभ अर्जित करने के लिए वस्तुओं के मूल्य में विभेद करता है जिससे वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियंतत्रण किया जा सके।
- अपूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ है प्रतियोगिता का सीमित होना अर्थात् न तो प्रतियोगिता का अभाव हो और न ही प्रतियोगिता पूर्णता लिए हुए हो। दूसरे शब्दों में जब पूर्ण प्रतियोगिता की विभिन्न दशाओं में से किसी भी एक दशा का अभाव होता है तब अपूर्ण प्रतियोगिता जन्म लेता है। स्पष्ट है कि अपूर्ण प्रतियोगिता के लिए विशुद्ध प्रतियोगिता में अपूर्णता होना जरूरी है।
- अंग्रेजी भाषा का मोनोपॉली शब्द ग्रीक शब्द के मोनोपॉलियन **(Monopolion)** शब्द से लिया गया है। इसका अर्थ है बिक्री का एकमात्र अधिकार। अतएव शुद्ध एकाधिकार बाजार की वह स्थिति है जिसमें केवल एक फर्म किसी वस्तु की एकमात्र उत्पादक होती है तथा उस वस्तु का कोई निकटतम स्थानापन्न नहीं होता। चूंकि एकाधिकारी किसी वस्तु का बाजार में एकमात्र विक्रेता होता है इसलिए उसके न तो कोई प्रतिद्वंद्वी होते हैं और न ही प्रत्यक्ष प्रतियोगी होते हैं।

3.43. अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. उपभोग आप क्या समझते हैं?
2. तटस्थता वक्र क्या है?
3. तटस्थता वक्र की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
4. सीमान्त प्रतिस्थापन की दर घटती क्यों है।
5. सीमांत आगम व सीमांत लागत की रीतियों का सचित्र वर्णन कीजिए।
6. पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के संतुलन की प्रमुख विधियों का वर्णन कीजिए।
7. पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत दीर्घकाल में फर्म की संस्थिति की विवेचना कीजिए।
8. अल्पाधिकार बाजार में मूल्य व उत्पादन के निर्धारण की मूल्य विधियों की विवेचना कीजिए।
9. पूर्ण प्रतियोगिता और अपूर्ण प्रतियोगिता में भेद कीजिए। पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म के संतुलन की विवेचना कीजिए।

10. एकाधिकार क्या है? समझाइए।
11. कुल आय तथा कुल लागत वक्र दृष्टिकोण से आप क्या समझते हैं?
12. सीमांत आय तथा सीमांत लागत दृष्टिकोण से क्या तात्पर्य है?
13. कीमत विभेद की आवश्यक शर्तों का उल्लेख कीजिए।
14. अविश्वास नीति और एकाधिकार को समझाइये है।
15. अपूर्ण प्रतियोगिता में एकाधिकार फर्म में कीमत का निर्धारण होता है?

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers : Self Assessment)

1. कीमत	2. मोनोपॉलियन	3. नीचे	4. विक्रेता
5. (अ)	6. (ब)	7. (द)	8. (अ)
9. सही	10. गलत	11. सही	12. गलत।

नोट

ईकाई-4
(Unit-4)

अर्थव्यवस्था का घरेलू बाजार
(Input Markets of Economy)

संरचना

4.1 श्रम बाजार क्या है? (What is Labour Market)
4.2 श्रम बाजार की परिभाषा (Definition of Labour Market)
4.3 श्रम बाजार की विशेषताएँ (Characteristics of Labour Market)
4.4 श्रम बाजार के प्रकार (Types of Labour Market)
4.5 श्रम बाजार की माँग और आपूर्ति (Demand and Supply in Labor)
4.6 व्युत्पन्न माँग (Derived Demand)
4.7 सिद्धांत की भूमिका (Introduction to Ricardian Theory
4.8 भूमि (Land)
4.9 सीमांत उतपादकता का आशय तथा उसकी माप
4.10 प्रतियोगिता बाजार में सरकार की भूमिका
4.10.1 नियंत्रित कीमत
4.10.2 समर्थन कीमत
4.10.3 सांकेतिक कीमत
4.10.4 दोहरी कीमत
4.10.5 बाजार कीमत पर, करों और आर्थिक सहायता का प्रभाव
4.10.6 सार्वजनिक वितरण प्रणाली (सा.वि.प्र.)
4.11 सारांश (Summary)
4.12 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

4.1. श्रम बाजार क्या है? (What is labour market)

श्रम बाजार जिसे नौकरी बाजार के नाम से भी जाना जाता है, श्रम की मांग और पूर्ति की ओर संकेत करता है। यहाँ कर्मचारी या श्रमिक पूर्ति प्रदान करते हैं एवं नियोक्ता (काम देने वाला) श्रम की मांग करता है। श्रम अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग है क्योंकि हर आर्थिक गतिविधि में श्रम का एक अहम योगदान होता है।

4.2. श्रम बाजार की परिभाषा (Definition of labour market)

श्रम बाजार एक ऐसी जगह है जहाँ श्रम की माँग एवं पूर्ति द्वारा श्रम की मात्रा एवं श्रम के मूल्य (वेतन) का निर्धारण किया जाता है।

अत: इस बाजार में श्रमिक नियोक्ता द्वारा दिया गया काम करके अपना योगदान देते हैं। एवं इसके बदले उन्हें वेतन के रूप में प्रतिफल दिया जाता है। बता दें की श्रमिक की काम करने की रूचि को बरकरार रखने के लिए उन्हें नियमित तौर पर वेतन देने की आवश्यकता होती है।

4.3. श्रम बाजार की विशेषताएँ: (Characteristics of labour market)

नोट

श्रम बाजार की मुख्य विशेषताएँ निम्न है:

1. कठोर एवं अनम्य
2. विनियमितता
3. अपूर्ण प्रतियोगिता

1. तीन स्तरीय बाजार: (Three level market)

बड़े अर्थशास्त्रियों के अनुसार श्रम बाजार खंडित होता है। इसके तीन मुख्य भाग होते हैं। इन तीन में विभिन्न श्रमिक वर्गीकृत होते हैं। सबसे पहले स्तर में वे श्रमिक आते हैं जिनके पास उच्च स्तरीय कौशल होता है। इन श्रमिकों का वेतन सबसे अधिक होता है एवं ये बहुराष्ट्रीय कंपनियों में काम करते हैं।

दूसरा स्तर होता है उन श्रमिकों का जिनके पास उच्च स्तरीय शिक्षा एवं कौशल नहीं होता है। ये पहले स्तर के श्रमिकों के नीचे काम करते हैं एवं उनसे कम वेतन पाते हैं।

तीसरे स्तर के श्रमिक वे होते हैं जोकि मुख्यत: ऐसे श्रमिक होते हैं जोकि दैनिक वेतन पर काम करते हैं।

2. कठोर एवं अनम्य:

श्रम बाजार के कठोर एवं अनम्य होने से अभिप्राय है कि अलग-अलग स्थानों पर समान काम के लिए अलग वेतन होता है। ऐसा मुख्यत: भौगोलिक अलगाव के कारण होता हैं। हम जानते हैं श्रम की अलग माँग एमंव आपूर्ति होती है जिसके कारण लोगों का अलग वेतन होता है।

3. विनियमितता: (Regulatory)

एक श्रम बाजार का विनियमित होने से अभिप्राय है की विभिन्न श्रमिकों के विभिन्न संगठन होते हैं जो यह निर्णय करते हैं। की श्रमिकों को काम के लिए कितना न्यूनतम वेतन मिलना चाहिए। यदि ये शर्त नहीं मानी जाती हैं तो ये संगठन अपने हिसाब से इसके खिलाफ कार्यवाही करते हैं एवं श्रमिकों के हक के लिए लड़ते हैं।

4. अपूर्ण प्रतियोगिता: (Imperfect competition)

श्रम बाजार के अपूर्ण प्रतियोगी होने से अभिप्राय है की श्रम कि कीमत यानी वेतन हर बार माँग एवं आपूर्ति से ही निर्धारित नहीं होता है यह कई बार राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय संस्थान जैसे मजदूर संगठनों से भी प्रभावित होकर निर्धारित होता है। जब कंपनियाँ नियमों का पालन नहीं करती हैं तो ये संगठन कार्यवहन में हस्तक्षेप करते हैं एवं वेतन का निर्धारण करते हैं। अत: श्रम बाजार को पूर्ण प्रतियोगी बाजार नहीं कहा जा सकता है।

4.4. श्रम बाजार के प्रकार: (Types of labour market)

श्रम बाजार मुख्यत: तीन प्रकार का होता है:

1. प्राथमिक,
2. द्वितीयक
3. तृतीयक

नोट

ये बाजार के मुख्य स्तर होते हैं जिनके आधार पर बाजार का वर्गीकृत किया जाता है।

1. **प्राथमिक श्रम बाजार : (Primary labour market)**

   यह बाजार का पहला वर्ग होता है। इस वर्ग में ऐसे श्रमिक आते हैं जिनके पास अत्यधिक उन्नत कौशल होता है एवं इन्हें उच्च स्तरीय शिक्षा प्राप्त होती है। इनका काम मुख्यत: कंपनियों के विभिन्न निर्णय लेना होता हैं एवं ये बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बड़े ओहदा पर काम करते हैं। इनका वेतन सबसे अधिक होता है एवं समय पर इन्हें पदोन्नती भी मिलती है।

2. **द्वितीयक श्रम बाजार : (Secondary labor market)**

   द्वितीयक श्रम बाजार वह बाजार होता है जहाँ ऐसे स्श्रमिक होते हैं जिनके पास ज्यादा उच्च स्तरीय शिक्षा नहीं होती है। इनके पास प्राथमिक श्रमिक जितना उन्नत कौशल भी नहीं होता है एवं इनका उनसे कम वेतन होता हैं।

3. **तृतीयक श्रम बाजार : (Tertiary labor market)**

   तृतीयक श्रम बाजार में ऐसे श्रमिक आते हैं जिनके पास सबसे कम शिक्षा होती है या ना के बराबर शिक्षा होती है। इनका वेतन सबसे कम होता है क्योंकि ये किसी भी काम में कुशल नहीं होते हैं एवं ऐसे लोग मुख्यत: दैनिक वेतन पर काम करते हैं जोकि बहुत कम होता है।

4.5. श्रम बाजार की माँग और आपूर्ति: (Demand and supply in labor)

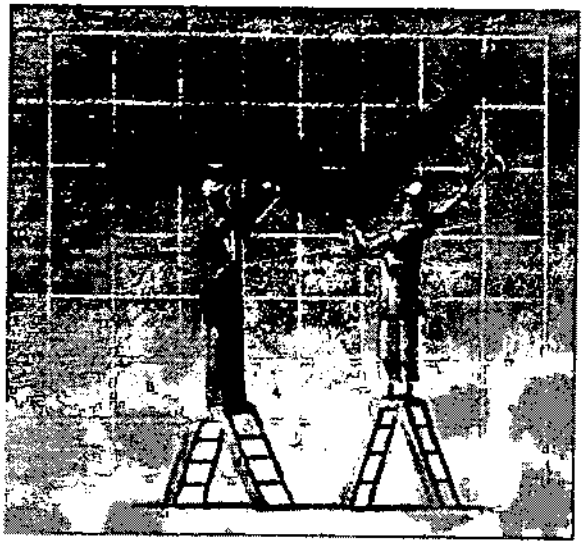

चित्र 4.1

जैसा की हम ऊपर पढ़ चुके हैं कि श्रम बाजार में वेतन एवं श्रम की मात्र का निर्धारण माँग और आपूर्ति की वजह से होता है। हम यहाँ जानेंगे की माँग और आपूर्ति श्रम बाजार को किस तरह प्रभावित करते हैं।

श्रम बाजार की माँग से अभिप्राय है कंपनियों द्वारा किसी कार्य को करवाने के लिए जब श्रमिक की जरुरत होती है या उनके द्वारा माँग होती है। वे विभिन्न कार्यों के लिए विभिन्न वेतन देते हैं।

श्रम बाजार की आपूर्ति से अभिप्राय है वे सभी लोग जोकि वर्तमान समय में एवं वेतन दर पर काम करने के लिए तैयार हैं एवं अपने कौशल का प्रयोग करके नियोक्ता के प्रति अपना योगदान देना चाहते हैं।

नोट

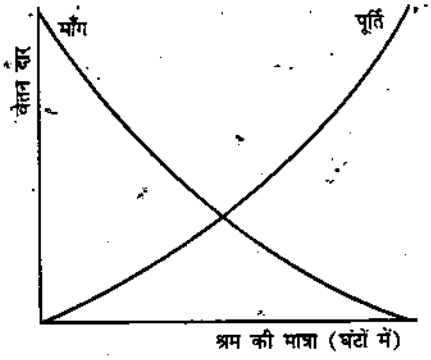

चित्र 4.2

ऊपर चित्र में जैसा की आप देख सकते हैं माँग एवं पूर्ति की शक्तियाँ किस प्रकार श्रम बाजार में वेतन एवं मात्रा को प्रभावित करती हैं। यदि श्रम की माँग अधिक बढ़ जाती है एवं पूर्ति कम होती है तो इससे वेतन में बढ़ोतरी हो जाती है लेकिन यदि पूर्ति की मात्रा अधिक होती है एवं जरूरत या माँग कम होती है तो इससे वेतन घट जाता है।

व्युत्पन्न माँग : अर्थशास्त्र में एक वस्तु की माँग से दूसरी वस्तु की माँग का उत्पन्न होना व्युत्पन्न माँग कहलाती है। दूसरी शब्दों में, जब किसी वस्तु की माँग, कुछ मूल वस्तुओं की खरीद से जुड़ी होती है। तो उसकी माँग व्युत्पन्न माँग कहलाती है। उदाहरण के लिए जब गेहूँ की माँग बढ़ती है तो इससे श्रम की माँग में वृद्धि होती है। साथ-ही-साथ उत्पादन के अन्य कारकों जैसे उर्वरक की माँग बढ़ जाती है।

व्युत्पन्न माँग किसी भी वस्तु के संबंध में हो सकती है। जैसे मकान बनाना होता है तब उसे बनाने के लिए विभिन्न वस्तुओं की माँग स्वत: ही उत्पन्न हो जाती है। जैसे सीमेंट, रोडी, बदरपुर आदि।

4.6. व्युत्पन्न माँग (Derived demand)

वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में संसाधनों का उपयोग किया जाता है। संसाधन की माँग उस वस्तु या सेवा की माँग से प्राप्त होती है। जो संसाधन का उपयोग करती है। उपभोक्ता सीधे और अपने आप में स्टील को महत्त्व नहीं देते हैं, लेकिन जब से हम कारों की माँग करते हैं, हम अप्रत्यक्ष रूप से स्टील की माँग करते हैं। यदि कारों की माँग बढ़ जाती है, तो कारों को बनाने के लिए उपयोग होने वाले स्टील की माँग में वृद्धि होगी।

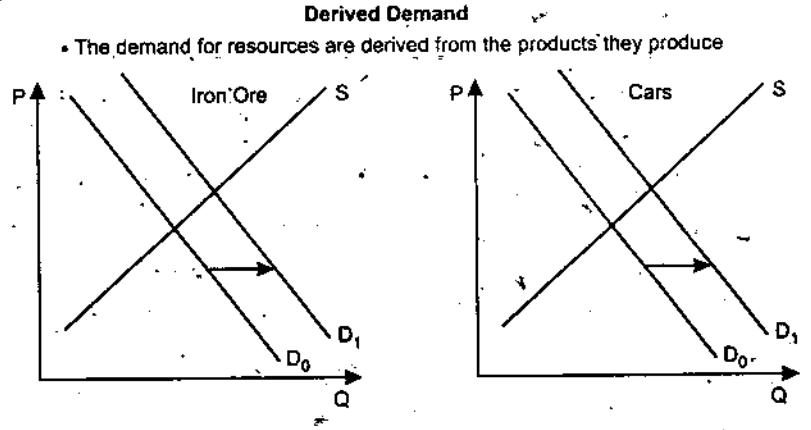

चित्र 4.3

नोट

व्युत्पन्न माँग और आपूर्ति को समझने से हमें यह समझने में मदद मिल सकती है कि आदानों के लिए बाजार कैसे काम करते हैं, और बदले में, ये बाजार अंतिम सामानों के लिए बाजारों से कैसे संबंधित होते हैं (अर्थात् माल उपभोक्ताओं को वास्तव में खरीदता है।) इन अवधारणाओं को समझना हमें यह निर्धारित करने में सक्षम बनाता है कि कितने लोगों पर स्टील के लिए एक फर्म कितना भुगतान करने के लिए तैयार होगी। यहाँ साधन की उस अतिरिक्त राशि को नियोजित करने की लागत (यानी मजदूरी दर)। सीमांत राजस्व और सीमांत लागत की अवधारणा के समान है, जो उत्पादन की एक और इकाई के उत्पादन के अतिरिक्त लाभों और लागतों को मापता है, हम सीमांत राजस्व उत्पाद और सीमांत संसाधन लागत की अवधारणा का उपयोग करते हैं जो एक अतिरिक्त इनपुट का उपयोग करने से अतिरिक्त राजस्व और अतिरिक्त लागं को मापता है।

4.7. रिकार्डो के सिद्धांत की भूमिका (Introduction to Ricardian Theory)

रिकार्डो के लगान सिद्धांत को 'लगान का प्रतिष्ठित सिद्धांत' भी कहा जाता है। रिकार्डो से पूर्व प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियों (Physiocrats) ने लगान संबंधी अपने विचार प्रस्तुत किये थे। प्रकृतिवादियों के अनुसार कृषि ही एकमात्र क्षेत्र है जहाँ अतिरेक (Surplus) उत्पन्न होता है। प्रकृतिवादियों ने कृषि क्षेत्र की अतिरेक क्षमता का कारण प्राकृतिक तत्वों का योगदान बताया था।

उनके अनुसार मानव पर प्रकृति का दयालु होना लगान का मुख्य कारण है। डेविड रिकार्डो पहले अर्थशास्त्री थे जिनका यह विश्वास था कि प्रकृति मानव पर दयालु नहीं बल्कि कृपण होती है। उनके अनुसार भी प्रकृति की उदारता के कारण नहीं बल्कि कृपा के कारण उत्पन्न होता है।

4.8. भूमि (Land)

19वीं शताब्दी में रिकार्डो ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Principles of Political Economy and Taxation' में लगान सिद्धांत का प्रतिपादन किया। रिकार्डो के अनुसार, "लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो मौलिक तथा अविनाशी शक्तियों के उपयोग के लिए भू-स्वामी को दिया जाता है।"

रिकार्डो के सिद्धांत की मान्यताएँ (Assumptions of the Ricardian Theory)

1. विभिन्न भू-खंडों की उर्वरता में अंतर होता है।
2. भूमि की पूर्ति निश्चित होती है तथा भूमि का कोई वैकल्पिक प्रयोग (Alternative Use) नहीं होता। रिकार्डो की मान्यतानुसार भूमि का प्रयोग केवल अनाज (Corn) का उत्पादन करने के लिए ही किया जाता है। दूसरे शब्दों में, भूमि की हस्तान्तरण आय (Transfer Earning) शून्य होती है।
3. भूमि पर खेती उसकी उपजाऊ शक्ति (Fertility) के क्रम में की जाती है अर्थात् सर्वप्रथम सबसे पहले अधिकतम उर्वरकता वाली भूमि पर खेती की जाती है तथा उसका संपूर्ण प्रयोग होने पर ही उससे कम उर्वरकता वाली भूमि को खेती के प्रयोग में लिया जाता है।
4. भूमि की उर्वरकता शक्ति मौलिक तथा अविनाशी है जो कभी नष्ट नहीं होती।
5. जनसंख्या वृद्धि होने पर अनाज की माँग बढ़ती है।
6. कृषि में घटते प्रतिफल का नियम (Law of Diminishing Returns) लागू होता है।
7. वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है जिसके कारण संपूर्ण बाजार में अनाज की कीमत एकसमान है।

रिकार्डो के सिद्धांत की व्याख्या *(Explanation of the Ricardian Theory)*

नोट

रिकार्डो के लगान सिद्धांत की व्याख्या तीन शीर्षकों के अंतर्गत की जा सकती है:

(*i*) विस्तृत खेती में लगान (Rent under Extensive Cultivation),

(*ii*) गहरी खेती में लगान (Rent under Intensive Cultivation),

(*iii*) स्थिति लगान (Situation Rent)।

(*i*) विस्तृत खेती में लगान (Rent under Extensive Cultivation):

रिकार्डो के अनुसार विस्तृत खेती में भेदात्मक लगान उत्पन्न होता है। भेदात्मक लगान की इस धारणा में रिकार्डो इस पूर्व मान्यता को लेकर चलते हैं कि एक द्वीप में अनेक ऐसे भू-खंड है जिनकी उर्वरता (Fertility), गुण (Quality), स्थिति (Location) आदि में एक समानता न होकर भिन्नता होती है।

दूसरे शब्दों में, एक द्वीप में विभिन्न श्रेणियों वाले भू-खंड हैं। सर्वोत्तम श्रेणी की भूमि की उर्वरकता सर्वाधिक होती है जहाँ श्रम एवं पूँजी की एक निश्चित मात्रा से अधिकतम उत्पादन किया जा सकता है। इस प्रकार उर्वरकता के आधार पर भू-खंडों का सर्वोत्तम श्रेणी से लेकर निम्नतम श्रेणी तक विभाजन किया जाता है।

रिकार्डो ने निम्नतम उर्वरकता वाली भूमि को सीमांत भूमि (Marginal Land) के रूप में परिभाषित किया है। इस निम्नतम उर्वरता वाली भूमि से श्रेष्ठ भूमियों को रिकार्डो ने अधि-सीमांत भूमि (Intra-Margianl Land) का नाम दिया। सीमांत भूमि पर कोई अतिरेक (Surplus) उत्पन्न नहीं होता क्योंकि इस भूमि पर प्राप्त आगम खेती की लागत के बराबर होता है।

रिकार्डो के अनुसार,

भेदात्मक लगान = अधिसीमांत भूमि की उत्पादकता – सीमांत भूमि की उत्पादकता

विस्तृत खेती में भेदात्मक लगान की व्याख्या के लिए हम मानकर चलते हैं कि द्वीप में तीन श्रेणी की भूमि - श्रेणी A सर्वोत्तम, श्रेणी B मध्यम तथा श्रेणी C निम्नतम उत्पादकता वाली भूमियाँ उपलब्ध हैं। जब द्वीप पर कुछ लोग आकर बसते हैं तब मानव अपनी उपभोग प्रकृति के अनुसार सबसे पहले सर्वोत्तम उत्पादकता वाली A श्रेणी की भूमि पर खेती आरंभ करता है।

अब यदि जनसंख्या के आकार में निरंतर वृद्धि होने पर अनाज की माँग में भी वृद्धि होगी। अनाज उत्पादन के लिए B श्रेणी की भूमि का प्रयोग तब तक नहीं होगा जब तक A श्रेणी की समस्त भूमि अनाज उत्पादन में प्रयोग न कर ली जाये।

जब तक B श्रेणी की भूमि प्रयोग नहीं की जाती तब तक कोई लगान उपस्थित नहीं होगा किंतु B श्रेणी की भूमि के प्रयोग में आने पर A श्रेणी की भूमि अधि-सीमांत भूमि बनकर सीमांत भूमि B की तुलना में कुछ अतिरेक उत्पन्न करेगी। रिकार्डो के अनुसार सीमांत भूमि की तुलना में अधि-सीमांत भूमि का यही अतिरेक लगान (Rent) है।

रिकार्डो के उपर्युक्त विचार को एक काल्पनिक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है:

तालिका 4.1 से स्पष्ट है कि यदि द्वीप पर अनाज की माँग 100 कुन्तल से अधिक होती है तब विस्तृत खेती में B श्रेणी की भूमि प्रयोग की जायेगी। इसी प्रकार 180 कुन्तल से अधिक अनाज की माँग होने पर श्रेणी C की भूमि प्रयोग की जायेगी।

जैसे-जैसे निम्न उत्पादकता स्तर वाली भूमियों पर खेती आरंभ होती है वैसे-वैसे ऊँची उत्पादकता वाली भूमियों पर अतिरेक (Surplus) उत्पन्न होता जाता है जिसे रिकार्डो ने लगान कहा। भेदात्मक प्रदर्शित करने वाली तालिका 4.1 को चित्र 4.4 में प्रदर्शित किया गया है।

नोट

तालिका 4.1		
भूमि	कुल उत्पादन (किवंटल में)	लगान
A श्रेणी	100	100 – 20 = 80
B	80	80 – 30 = 50
C	50	50 – 20 = 30
D	30	30 – 20 = 10
E	20	10 – 10 = 0

चित्र 4.4 में A, B श्रेणी की भूमियाँ अधि-सीमांत भूमियाँ बनकर लगान उत्पन्न कर रही हैं जिसे छायादार क्षेत्रफल से दिखाया गया है।

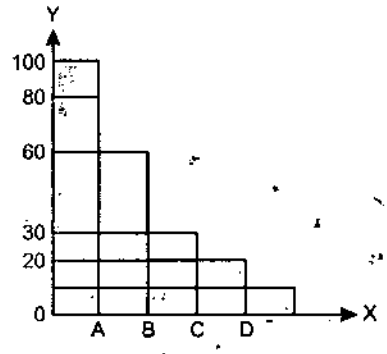

चित्र 4.4 भूमि की विभिन्न श्रेणी

(ii) गहरी खेती में लगान (Rent under Intensive Cultivation):

रिकार्डो के विचार में लगान केवल विस्तृत खेती में ही उत्पन्न नहीं होता बल्कि गहरी खेती में भी उत्पन्न होता है। भूमि की पूर्ति सीमित होने के कारण जब जनसंख्या बढ़ने पर एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जबकि निम्न कोटि की भूमि का भी अभाव उपस्थित हो जाता है और अनाज की बढ़ी माँग को विस्तृत खेती द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता।

ऐसी दशा में जब भूमि के निश्चित और सीमित क्षेत्रफल पर श्रम तथा पूँजी की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग करके उत्पादन वृद्धि का प्रयास किया जाता है तब इसे गहन खेती (Intensive Cultivation) कहते हैं।

रिकार्डो का विचार था कि जैसे-जैसे भूमि के निश्चित क्षेत्रफल पर श्रम तथा पूँजी की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग बढ़ाया जाता है, ह्रासमान प्रतिफल का नियम (Law of Diminshing Returns) लागू हो जाता है।

इस नियम के लागू होने की दशा में एक भू-स्वामी अपनी भूमि के निश्चित क्षेत्रफल पर श्रम एवं पूँजी की अतिरिक्त इकाइयाँ तब तक लगाता जायेगा जब तक सीमांत उत्पादन का मूल्य और उत्पादन की लागत समान न हो जाएं

श्रम और पूँजी की इस मात्रा को सीमांत मात्रा (Marginal Quantity) कहा जाता है। इसी सीमांत मात्रा के द्वारा अधिसीमांत मात्राओं (Intra-Marginal Quantity) का लगान एवं वस्तु (अर्थात् अनाज) का मूल्य निर्धारित होता है।

इस प्रकार गहरी खेती में 'सीमांत भूमि' के स्थान पर 'सीमांत मात्रा' का प्रयोग किया जाता है। सीमांत मात्रा पर कोई लगान उत्पन्न नहीं होगा क्योंकि सीमांत मात्रा की लागत उसके उत्पादकता मूल्य के बराबर होती है किंतु अधि-सीमांत मात्राओं (अर्थात् सीमांत मात्रा से पूर्व

की श्रम व पूँजी इकाइयाँ) पर लगान उत्पन्न होता है क्योंकि ये अधि-सीमांत मात्राएँ अपनी लागत से अधिक उत्पादकता उत्पन्न करती हैं।

सीमांत मात्रा के ऊपर अधि-सीमांत मात्राओं को जो भी अतिरेक प्राप्त होता है उसका लगान कहा जाता है।

नोट

उदाहरण व रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण:

तालिका 4.2.

भूमि की किस्म	उपज की मात्रा क्विनटल में	लगान क्विनटल में
A पूर्ण सीमांत	10	10 − 4 = 6
B इकाईयां	8	8 − 4 = 4
C	6	6 − 4 = 2
D सीमांत ईकाई	4	4 − 4 = 0

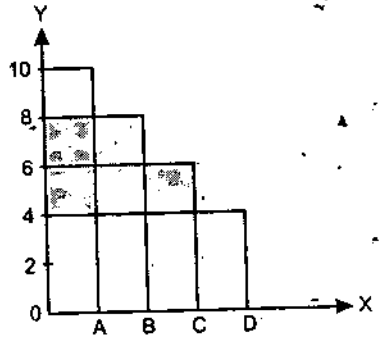

चित्र 4.5

तालिका 4.2 से स्पष्ट है कि श्रम तथा पूँजी की चौथी मात्रा सीमांत मात्रा है जिस पर कोई अतिरेक अथवा लगान उत्पन्न नहीं होता।

तालिका 4.2 को चित्र 4.5 के रूप में व्यक्त करके भी समझा जा सकता हैं श्रम और पूँजी की पहली और दूसरी एवं तीसरी मात्राएँ अधि-सीमांत मात्राएँ बनकर सीमांत मात्रा (अर्थात् चौथी मात्रा) की तुलना में अतिरेक उत्पन्न कर रही हैं जो लगान को सूचित करता है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि गहरी खेती का लगान सीमितता के लगान (Scarcity Rent) का द्योतक है क्योंकि लगान भूमि की सीमितता के कारण उत्पन्न हो रहा है।

***(iii)* स्थिति लगान (Situation Rent):**

रिकार्डो के विचार में यदि भूमि के विभिन्न टुकड़ों की उर्वरता एकसमान भी है तब भी उनकी स्थिति में अंतर होने के कारण लगान उत्पन्न हो सकता है। यदि कोई भूमि का टुकड़ा अच्छे स्थान पर बाजार के निकट तथा यातायात सुविधाओं से संपन्न है तब ऐसी दशा में भी लगान उत्पन्न होगा।

उदाहरण के लिए, तीन भू-खंड A, B तथा C में से A सर्वश्रेष्ठ स्थिति में, B मध्यम स्थिति में तथा C निम्नतम स्थिति में है। यातायात लागत इन भू-खंडों पर क्रमशः 1 क्विं. 2 क्विं. तथा 4 क्विं. है।

ऐसी दशा में जब तीनों भू-खंडों का उत्पादित अनाज बाजार आकर एक ही कीमत पर बिकता है तब भू-खंड C की तुलना में भू-खंड A तथा B को क्रमशः 3 क्विं. तथा 2 क्विं. अतिरेक अथवा बचत प्राप्त होती है जबकि भू-खंड C पर कोई बचत प्राप्त नहीं होती।

नोट

भूमि C अपनी निम्नतम स्थिति के कारण सीमांत भूमि बन जाती है तथा भूमि A तथा भूमि B अपनी बेहतर स्थिति के कारण अधि-सीमांत भूमि बनकर लगान उत्पन्न करती हैं।

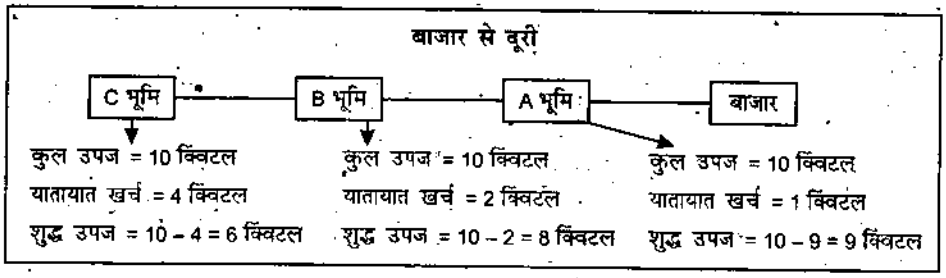

रिकार्डो के सिद्धांत की आलोचना (Criticisms of Ricardian Theory)

अनेक अर्थशास्त्रियों ने निम्नलिखित बिंदुओं पर रिकार्डो के सिद्धांत की आलोचना की है।

1. **मौलिक तथा अविनाशी शक्तियों का न होना (No Original and Indestructible Powers of Soil):**

   स्टोनियर एवं हेग अर्थशास्त्रियों ने रिकार्डो की इस मान्यता को गलत बताया है कि भूमि की उर्वरा शक्ति मौलिक और अविनाशी होती है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में इस प्रकार की मान्यता का कोई अर्थ नहीं है क्योंकि कृषि में विज्ञान एवं तकनीकी का प्रयोग करके उर्वरकता को बढ़ाया जा सकता है। साथ ही आधुनिक युग में कोई वस्तु अविनाशी नहीं है; भू-स्खलन (Landscape) इसका उदाहरण है।

2. **भूमि जोतने का गलत क्रम (Wrong Order Cultivation of Land):**

   रिकार्डो की मान्यतानुसार सबसे अधिक उर्वरकता वाली भूमि से आरंभ करके क्रमशः अंत में सबसे निम्न कोटि की भूमि को जोता जाता है आर्थिक इतिहास में इस संदर्भ का कोई प्रमाण नहीं मिलता। विभिन्न भू-खंडों पर खेती करने के बाद ही यह पता लगता है कि उनमें उर्वरता की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ कौन है? खेती के पहले यह कहना गलत है कि अमुक भू-खंड सर्वोत्तम उर्वरकता वाला भू-खंड है।

3. **लगान का संबंध केवल भूमि से नहीं (Rent has no Relation only with the Land):**

   रिकार्डो के विचार में लगान का संबंध केवल भूमि से है अन्य साधनों से नहीं। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान उत्पन्न होने का कारण साधन की दुर्लभता है तथा यह सीमितता का तत्व उत्पादन के प्रत्येक साधन के साथ हो सकता है अतः सभी साधनों पर लगान उत्पन्न हो सकता है।

4. **सीमांत भूमि अथवा लगान-रहित भूमि (Marginal Land or No-Rent Land):**

   रिकार्डो की यह मान्यता है कि प्रत्येक देश में एक भू-खंड ऐसा अवश्य पाया जाता है जिस पर कोई लगान प्राप्त नहीं होता। ऐसी भूमि को रिकार्डो ने सीमांत भूमि का नाम दिया। वास्तविकता में सीमांत भूमि अथवा लगान रहित भूमि नहीं पायी जाती।

5. **कीमत एवं लगान (Price and Rent):**

   रिकार्डो के अनुसार कीमत लगान को निर्धारित करती है न कि लगान कीमत को। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान कारण है तथा कीमत परिणाम (Rent is the Cause and Price is the Result)। लगान उत्पत्ति साधनों में भूमि की सेवाओं के बदले पुरस्कार है और यह उत्पादन लागत को निर्धारित करता है। दूसरे शब्दों में, आधुनिक अर्थशास्त्रियों के विचार में लगान कीमत में सम्मिलित होता है।

6. अवास्तविक मान्यताएँ (Unrealistic Assumptions):

रिकार्डो का सिद्धांत अनेक अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है। पूर्ण प्रतियोगिता, कृषि में घटते प्रतिफल नियम का क्रियान्वयन, माल्थस के जनसंख्या संबंधी सिद्धांत आदि मान्यताएँ वास्तविक जीवन में नहीं पायी जातीं। रिकार्डो का सिद्धांत दीर्घकालीन है जबकि दीर्घकाल व्यवहार में कभी नहीं आता।

नोट

इसमें कोई संदेह नहीं कि रिकार्डो के सिद्धांत की अनेक सीमाएँ हैं जिन्हें विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रकाश में लाया जाता है। परंतु इनके रहते हुए भी रिकार्डो ने कई महत्वपूर्ण तथ्यों को सामने रखा है जैसे लगान एक अनार्जित आय (Unearned Income) है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने भी लगान सिद्धांत रिकार्डो के लगान सिद्धांत को ही आधार मानकर दिया है। विभेदात्मक लगान के स्थान पर आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने हस्तान्तरण आय का विचार देकर रिकार्डो के सिद्धांत का विस्तार एवं सुधार किया है।

प्रो. रॉबर्टसन का यह कथन ठीक ही है, "रिकार्डो के लगान सिद्धांत ने अपनी मान्यता एवं सत्यता किसी भी मापदण्ड पर नहीं खोयी है।"

4.9. सीमांत उत्पादकता का आशय तथा उसकी माप

किसी साधन की सीमांत उत्पादकता से आशय उस साधन की एक अतिरिक्त इकाई के रोजगार या उत्पादन-क्रिया में आने के कारण कुल उत्पादन में वृद्धि से है। सीमांत उत्पादकता को तीन रूपों में व्यक्त किया जा सकता है–

(क) सीमांत भौतिक उत्पादन (Marginal Physical Product-MPP)

किसी साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग के कारण, अन्य साधनों की स्थिर मात्रा के साथ कुल उत्पादन में वृद्धि ही उस साधन का सीमांत भौतिक उत्पादन है।

इस प्रकार सीमांत भौतिक उत्पादन = (साधन की एक अतिरिक्त इकाई के बाद कुल उत्पादन)–(साधन की उस अतिरिक्त इकाई के पहले का कुल उत्पादन)

$MPP = TP_n - TP_{n-1}$, जिसमें TP कुल उत्पादन का प्रतीक है।

(ख) सीमांत मूल्य उत्पादन (Marginal Value Product-MVP)

जब सीमांत भौतिक उत्पादन को मूल्य या औसत आय से गुणा कर दिया जाए तो जो गुणनफल प्राप्त होगा उसे सीमांत मूल्य उत्पादन कहेंगे। इस प्रकार

सीमांत मूल्य उत्पादन = सीमांत भौतिक उत्पादन × मूल्य

$MVP = MPP \times Price\ (AR)$

(ग) सीमांत आय (राजस्व) उत्पादन (Marginal Revenue Product-MRP)

उत्पादन के किसी साधन की एक अतिरिक्त इकाई के फलस्वरूप 'कुल मूल्य उत्पादन' अथवा कुल आय में होने वाली वृद्धि ही सीमांत आय उत्पादन है। उदाहरण के लिए कोई फर्म 10 श्रमिकों को उत्पादन क्रिया में लगाती है तथा उनसे 100 कलम का उत्पादन प्राप्त करती है। यदि कलम का मूल्य प्रति कलम 5 रुपया हो तो फर्म की कुल आय या कुल मूल्य उतपादन $100 \times 5 = 500$ रुपया होगा पर यदि फर्म एक और श्रमिक को उत्पादन-क्रिया में लगाये और यदि उसके बाद कुल उत्पादन 108 कलम का हो जाय तथा यदि हम यह मान लें कि अब भी वह फर्म कलम की प्रति इकाई की कीमत 5 ही रुपया लेती है तो 108 कलमों के बेचने से $108 \times 5 = 540$ रुपया कुल आय प्राप्त होगी। सीमांत मूल्य उत्पादन 540 – 500 = 40 रूपया होगा। चूँकि अन्तिम इकाई से जो आय प्राप्त होगी वह सीमांत आय होगी, इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि सीमांत आय उत्पादन उस उत्पादन के साधन के सीमांत भौतिक उत्पादन तथा सीमांत आय का गुणनफल है। अर्थात्

$$MRP = MPP \times MR$$

ऊपर दिए गए उदाहरण में सीमांत भौतिक उत्पादन 8 कलम का है तथा सीमांत आय 5 रुपया है इसलिए सीमांत आय उत्पादन $8 \times 5 = 40$ रुपया होगा।

पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत सीमांत मूल्य उत्पादन तथा सीमांत आय उत्पादन में अंतर नहीं होता है:

नोट

इसके पूर्व हम लोगों ने सीमांत मूल्य उत्पादन तथा सीमांत आय उत्पादन की जो व्याख्या की उससे स्पष्ट है कि दोनों के ऊपर बाजार में प्रचलित मूल्य का प्रभाव पड़ता है। हम जानते हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य एक ही रहता है, उत्पादन में परिवर्तन का मूल्य के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, औसत आय तथा सीमांत आय बराबर होती है, फलस्वरूप सीमांत मूल्य उत्पादन तथा सीमांत आय उत्पादन एक ही होंगे। जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता में हम जानते हैं कि औसत तथा सीमांत आय वस्तु की बेची गयी मात्रा के साथ क्रमशः गिरते हुए होते हैं तथा सीमांत मूल्य औसत मूल्य से आवश्यक रूप से कम रहता है। ऐसी स्थिति में सीमांत आय के आधार पर सीमांत आय उत्पादन तथा औसत आय या मूल्य के आधार पर गणना किये गये सीमांत मूल्य उत्पादन में अंतर होगा। चूँकि पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य या औसत आय एक ही बना रहता है जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता में यह गिरता हुआ होता है, इसलिए पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता में इन दोनों धारणाओं में अंतर होगा। स्पष्ट है चूँकि पूर्ण प्रतियोगिता में $AR = MR$ है इसलिए $MVP = MRP$ पर अपूर्ण प्रतियोगिता $AR > MR$ इसलिए अब हम सारिणी तथा रेखाचित्र के माध्यम से इन दोनों धारणाओं में अंतर को प्रदर्शित करेंगे। पहले हम सारिणी सं. 4.3 तथा 4.4 पीर विचार करेंगे।

तालिका सं. 4.3: पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत सीमांत मूल्य उत्पादन तथा सीमांत आय उत्पादन

श्रमिकों की इकाईयाँ	कुल उत्पादन	सीमांत भौतिक उत्पादन (MPP)	मूल्य	सीमांत मूल्य उत्पादन (MVP) (3 × 4)	कुल आय (2 × 4)	सीमांत आय उत्पादन (MRP)	उत्पादन का नियम
1	2	3	4	5	6	7	8
1	10	10	4	40	40	40	वृद्धिमान
2	30	20	4	80	120	80	नियम
3	60	30	4	120	240	120	
4	100	40	4	160	400	160	समता
5	140	40	4	160	560	160	नियम
6	175	35	4	140	700	140	
7	200	25	4	100	800	100	ह्रासमान
8	215	15	4	60	860	60	नियम
9	225	10	4	40	900	40	
10	230	5	4	20	920	20	

सारिणी 4.3 के स्पष्टीकरण के पूर्व दो महत्त्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख आवश्यक है--प्रथम, उत्पादन क्रिया में उत्पादन के तीनों नियम क्रियाशील हैं जैसा सीमांत भौतिक उत्पादन से स्पष्ट है। चौथी इकाई तक उत्पादन-वृद्धि, चौथी से पाँचवी के बीच उत्पादन--समता तथा पाँचवी के बाद उत्पादन-ह्रास-नियम प्रदर्शित है। दूसरे चूँकि वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता हैं इसलिए उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर मूल्य 4 रुपया ही प्रदर्शित है। अब हम सीमांत मूल्य उत्पादन तथा सीमांत आय उत्पादन की गणना पर विचार करेंगे। हम इसके पूर्व देख चुके हैं कि $MVP = MPP \times AR$। इसलिए सीमांत भौतिक उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर मूल्य अर्थात् 4 रुपये से गुणा करके खाना नं. 5 में सीमांत मूल्य उत्पादन प्रदर्शित किया गया है, जैसे साधन की दूसरी इकाई से प्राप्त होने वाले सीमांत मूल्य उत्पादन की गणना इस प्रकार की गयी है--सीमांत भौतिक उत्पादन 20, मूल्य

4 रु. इसलिए सीमांत मूल्य उत्पादन 20 × 4 = 80 रु.। चूँकि वस्तु-बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है इसलिए औसत आय तथा सीमांत आय में कोई अंतर नहीं होता इसलिए इस स्थिति में सीमांत आय उत्पादन की गणना सीमांत भौतिक उत्पादन में मूल्य के ही गुणा द्वारा की जा सकती है अर्थात् (MRP = MPP × MR (MR = AR))। यही कारण है कि पाँचवें खाने में प्रदर्शित मूल्य उत्पादन तथा सातवें में प्रदर्शित सीमांत आय उत्पादन में कोई अंतर नहीं है।

नोट

अपूर्ण प्रतियोगिता (एकाधिकार) के अंतर्गत सीमांत मूल्य उत्पादन तथा सीमांत आय उत्पादन में अंतर होता है:

अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार की स्थिति में सीमांत मूल्य उत्पादन के बीच अंतर होगा क्योंकि अपूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य (औसत आय) तथा सीमांत आय में अंतर पाया जाता है। अपूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत सीमांत आय उत्पादन तथा सीमांत मूल्य उत्पादन की गणना सारिणी नं. 4.4 में प्रदर्शित है।

तालिक सं. 4.4: अपूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत सीमांत मूल्य उत्पादन तथा सीमांत आय उत्पादन

श्रमिकों की इकाइयां	कुल उत्पादन	सीमांत भौतिक उत्पादन (MPP)	मूल्य	सीमांत मूल्य उत्पादन (MVP) (3 × 4)	कुल आय (2 × 4)	सीमांत आय उत्पादन MRP
1	2	3	4	5	6	7
1	10	10	4.00	40.00	40.00	40.00
2	30	20	3.60	72.00	108.00	68.00
3	60	30	3.00	90.00	180.00	72.00
4	100	40	2.60	104.00	260.00	80.00
5	140	40	2.40	96.00	336.00	76.00
6	175	35	2.30	80.50	402.50	66.50
7	200	25	2.24	56.00	448.00	45.50
8	215	15	2.20	33.00	473.00	25.00
9	225	10	2.16	21.60	486.00	13.00
10	230	5	2.14	10.70	492.20	6.20

अपूर्ण प्रतियोगिता में पूर्ण प्रतियोगिता की तरह औसत आय वक्र आधार के समानांतर नहीं होता या दूसरे शब्दों में मूल्य स्थिर नहीं होता है बल्कि नीचे गिरता हुआ होता है जैसा तालिका नं. 4.4 के खाना नं. 4 में प्रदर्शित है। जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता जायेगा प्रति इकाई मूल्य कम होता जायेगा। हम औसत आय तथा सीमांत आय के बीच के संबंध की व्याख्या करते हुए यह देख चुके हैं कि अपूर्ण प्रतियोगिता में सीमांत आय औसत आय से कम होती है इसलिए सीमांत मूल्य उत्पादन तथा सीमांत आय उत्पादन के बीच अंतर होगा, वस्तुस्थिति तो यह है कि सीमांत आय उत्पादन सीमांत मूल्य उत्पादन से कम होगा, क्योंकि–

$$MVP = MPP \times AR$$

तथा

$$MRP = MPP \times MR$$

पर AR का मूल्य MR से अधिक होगा (AR > MR) इसलिए MVP = MRP

सारिणी नं. 4.4 के खाना नं. 5 में सीमांत मूल्य की गणना सीमांत भौतिक उत्पादन के प्रत्येक स्तर से

नोट

संबंधित मूल्य से गुणा करके की गयी है जैसे श्रम की तीसरी इकाई पर यदि सीमांत मूल्य की गणना करनी हो तो इस इकाई के सीमांत भौतिक उत्पादन 30 में मूल्य 3.00 का गुणा करना होगा अर्थात् 30 × 3.00 = 90 जैसा खाना नं. 5 में प्रदर्शित है। पर पूर्ण प्रतियोगिता की तरह मूल्य के द्वारा गुणा करके ही सीमांत आय उत्पादन की गणना नहीं की जा सकती है। इसको ज्ञात करने के लिए पहले कुल आय या (मूल्य X कुल उत्पादन) को खाना नं. 6 में प्रदर्शित किया गया है और तब श्रम की एक अतिरिक्त इकाई की वृद्धि के कारण कुल आय में होने वाली वृद्धि के आधार पर सीमांत आय उत्पादन की गणना की गई है।

सीमांत मूल्य उत्पादन तथा सीमांत आय उत्पादन को प्रदर्शित करने वाले वक्रों के स्वरूप: तालिका नं. 4.3 तथा-4.4 के संबंधित खानों से ही स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता में इन दोनों वक्रों के स्वरूप में भिन्नता होगी। चूँकि प्रत्येक में इन वक्रों का आधार सीमांत भौतिक उत्पादन है

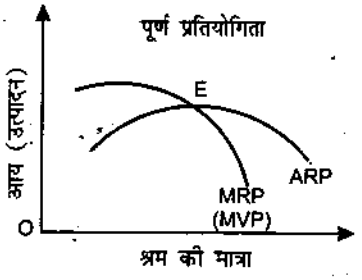

चित्र 4.6

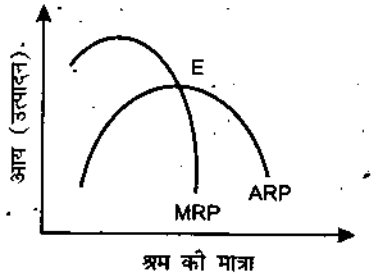

चित्र 4.7

इसलिए इतना तो निश्चित है कि इनका स्वरूप सीमांत भौतिक उत्पादन को प्रदर्शित करने वाले वक्र के समान होगा और चूँकि सीमांत भौतिक उत्पादन वक्र का स्वरूप उत्पादन के तीनों नियमों के क्रियाशीलन के कारण अंग्रेजी के U अक्षर उलटे आकार का होगा। इसलिए इस पर आधारित ये वक्र भी इसी के आकार के होंगे। जहाँ तक पूर्ण प्रतियोगिता का प्रश्न हैं इसमें सीमांत मूल्य उत्पादन तथा सीमांत आय उत्पादन वक्र एक ही होंगे और दोनों सीमांत भौतिक उत्पादन के वक्र से समान दूरी पर होंगे क्योंकि इन्हें ज्ञात करने के लिए सीमांत भौतिक उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर एक स्थिर मूल्य का ही गुणा करना पड़ता है। दूसरी बात यह है कि पूर्ण प्रतियोगिता में प्रदर्शित सीमांत मूल्य तथा सीमांत आय उत्पादन वक्र सीमांत भौतिक उत्पादन वक्र से अधिक चपटे होंगे। जहाँ तक अपूर्ण प्रतियोगिता में प्रदर्शित इन दोनों वक्रों का प्रश्न है इनका स्वरूप तो सीमांत भौतिक उत्पादन वक्र की ही तरह होगा पर जहाँ पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में ये दोनों वक्र सीमांत भौतिक उत्पादन वक्र से समान दूरी पर स्थित होंगे, अपूर्ण प्रतियोगिता में ये दोनों ही सीमांत भौतिक उत्पादन वक्र के अधिक नजदीक पहुँचते जायेंगे (जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता जायेगा)। इसमें भी सीमांत आय उत्पादन वक्र अधिक करीब होगा।

पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता में प्रदर्शित वक्रों में अंतर:

1. पूर्ण प्रतियोगिता में 'सीमांत मूल्य उत्पादन वक्र' तथा 'सीमांत आय उत्पादन वक्र' में भेद नहीं होता पर अपूर्ण प्रतियोगिता में होता है क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता में AR = MR परंतु अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार में AR की मात्रा MR से अधिक होती है AR > MR।
2. पूर्ण प्रतियोगिता में ये वक्र सीमांत भौतिक उत्पादन वक्र से समान दूरी पर होंगे जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता में ये दोनों ही MRP तथा ARP करीब आते जायेंगे।
3. पूर्ण प्रतियोगिता में प्रदर्शित सीमांत आय उत्पादन = सीमांत मूल्य उत्पादन वक्र, अपूर्ण प्रतियोगिता में प्रदर्शित इन्हीं वक्रों की अपेक्षा अधिक चपटा होगा।
4. अपूर्ण प्रतियोगिता में प्रदर्शित सीमांत आय उत्पादन वक्र सीमांत मूल्य उत्पादन वक्र की अपेक्षा अधिक ढालू होगा।

सामान्यता सीमांत आय (MRP) को ही सीमांत उत्पादन या सीमांत उत्पादकता के रूप में स्वीकार किया जाता है। हम अपने अगले विश्लेषण में इसी का प्रयोग करेंगे। पूर्ण-प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थितियों में सीमांत आय उत्पादन तथा उससे संबंधित औसत आय उत्पादन वक्र का प्रदर्शन रेखाचित्र नं. 4.6 तथा 4.7 में किया गया है।

नोट

रेखाचित्र नं. 4.6 में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति तथा नं. 4.7 में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में सीमांत आय उत्पादन वक्र प्रदर्शित है। स्पष्ट है कि रेखाचित्र नं. 4.7 में प्रदर्शित MRP, रेखाचित्र नं. 4.6 में प्रदर्शित MRP की उपेक्षा अधिक ढालू है। इनसे संबंधित औसत आय उत्पादन वक्र (ARP) भी प्रदर्शित है। सीमांत तथा औसत मूल्यों के बीच संबंधों की जो व्याख्या इसके पूर्व की जा चुकी है उससे यह स्पष्ट है कि MRP वक्र ARP वक्र के शीर्ष बिंदु से होकर जायेगा।

निष्कर्ष

यदि बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता हो तो ऐसी स्थिति में नियोक्ता द्वारा जो मजदूरी या मूल्य चुकाना होगा वह पूर्व निश्चित है जिसका निर्धारण बाजार में क्रियाशील होने वाली शक्तियों के द्वारा उद्योग ने निर्धारित किया है, ठीक उसी प्रकार से जैसे वस्तु के मूल्य निर्धारण के संबंध में हम लोगों ने देखा कि फर्म के लिए मूल्य पूर्वनिश्चित है। नियोक्ता अपने व्यवहार द्वारा बाजार की माँग को प्रभावित नहीं कर सकता है, वह दिये हुए मूल्य या पारिश्रमिक की दर पर जितने भी श्रमिक चाहे उतने खरीद सकता है। ऐसी स्थिति में अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए वह अधिक से अधिक यह कर सकता है कि वह उत्पादन के साधानों का प्रयोग उस सीमा तक बढ़ाये जहाँ कि प्रत्येक साधन की सीमांत उत्पादकता बाजार की शक्तियों द्वारा निर्धारित दर के बराबर हो जाए। यहीं संस्थिति होगी। इस प्रकार संस्थिति की स्थिति में–

1. प्रत्येक रोजगार में एक साधन की सीमांत उत्पादकता समान हो।
2. एक रोजगार में प्रत्येक साधन की सीमांत उत्पादकता उसी रोजगार में लगे अन्य साधनों की सीमांत उत्पादकता के बराबर हो।

इसी प्रकार की संस्थिति का चित्रण रेखाचित्र नं. 4.8 से स्पष्ट है।

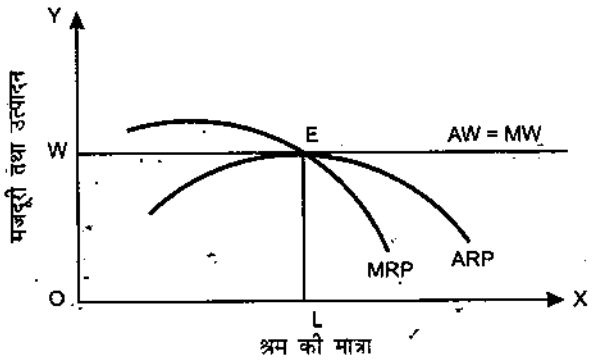

चित्र 4.8

इस चित्र में Y अक्ष पर मजदूरी तथा उत्पादकता प्रदर्शित किया गया है तथा दोनों वक्रों के माध्यम से औसत आय उत्पादन (ARP) तथा सीमांत आय उत्पादन (MRP) प्रदर्शित किया गया है। बाँयें से E बिंदु तक औसत आय उत्पादन बढ़ता है जो उत्पादन वृद्धि नियम का पारिचायक है तथा E बिंदु से दाहिनी ओर यह नीचे की ओर गिरता है जो उत्पादन ह्रास नियम का प्रतीक है, E बिंदु पर उत्पादन-समता-नियम लागू है। इसी बिंदु पर दीर्घकालीन संतुलन की स्थिति होगी। उत्पादक श्रमिकों की OL मात्रा लगायेगा तथा OW मजदूरी देगा। इस बिंदु पर मजदूरी सीमांत आय उत्पादन तथा औसत आय उत्पादन के बराबर होगी।

नोट

सीमांत उत्पादकता सिद्धांत की आलोचनाएँ

1. इस सिद्धांत के अनुसार उत्पादन-साधन की सभी इकाइयाँ सजातीय होती है जबकि वास्तविक व्यवहार में उत्पादन-साधन की इकाइयाँ विजातीय होती हैं।
2. इस सिद्धांत के अनुसार विभिन्न उपयोगों के बीच उत्पादन-साधनों की गतिशीलता पूर्ण होती है। जबकि यह मान्यता सही नहीं हैं भूमि में तो गतिशीलता का पूर्ण अभाव होता ही है, पूँजी व श्रम भी पूर्णत: गतिशील नहीं होते। जिससे उनकी सीमांत उत्पादकता समान नहीं हो सकती।
3. इस सिद्धांत के अनुसार उत्पादन साधन पूर्णतया विभाज्य होते हैं परिणामत: उनकी मात्राओं में अनंतसूक्ष्म परिवर्तन किये जा सकते हैं सत्य तो यह है कि एक निश्चित सीमा से आगे उत्पादन-साधन अविभाज्य हो जाते हैं
4. इस सिद्धांत के अनुसार उत्पादन-प्रक्रिया में साधन के अनुपातों को बदला जा सकता है। जबकि प्रावैधिक अन्य कारणों से सामान्यतया ऐसा संभव नहीं होता।
5. आलोचकों के अनुसार बड़े उद्योगों तथा कुछ विशेष परिस्थितियों में किसी एक साधन की सीमांत उत्पादकता को मापना ही संभव नहीं होता।
6. कुछ आलोचक इसे वास्तविक नहीं मानते। क्योंकि सिद्धांत सामान्यत: साधन के पारिश्रमिक को दिया हुआ तथा स्थिर मानता है।
7. इस सिद्धांत के अनुसार किसी उत्पादन-साधन की सीमांत उत्पादकता उसके पारिश्रमिक को प्रभावित करती है,
8. यह सिद्धांत स्थिर अथवा आनुपातिक प्रतिफल नियम की मान्यता पर आधारित है। जबकि वास्तविक जीवन में वर्धमान अथवा ह्रासमान प्रतिफल नियम भी कार्यशील होता है।
9. यह सिद्धांत साधन के कीमत-निर्धारण की केवल दीर्घकालीन व्याख्या ही हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है।
10. यह सिद्धांत पूर्ण प्रतियोगिता की गलत एवं अवास्तविक धारणा पर निर्मित किया गया है।
11. कुछ अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धांत को इस आधार पर स्वीकार करने से इंकार कर दिया है कि यह पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के वर्तमान आय-वितरण को उचित बताता है जबकि इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार यह वितरण अन्यायपूर्ण ही नहीं, बल्कि असमतायुक्त भी है।
12. कुछ अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धांत की इस आधार पर आलोचना की है कि सीमांत उत्पादकता आय-वितरण के लिए कोई वास्तविक आधार प्रस्तुत नहीं करती और न ही किसी उत्पादन-साधन के पारिश्रमिक तथा उसकी सीमांत उत्पादकता के बीच कोई घनिष्ठ संबंध होता है।
13. यह सिद्धांत उत्पादन-साधन की पूर्ति को स्थिर मानकर चलता है। लेकिन वास्तविकता यह है कि भूमि को छोड़कर किसी भी साधन की पूर्ति स्थिर नहीं है, विशेषकर दीर्घकाल में तो किसी भी साधन की पूर्ति स्थित नहीं होती।
14. यह सिद्धांत केवल माँग पक्ष पर बल देने के कारण एकपक्षीय है।

4.10. प्रतियोगिता बाजार में सरकार की भूमिका

किसी वस्तु की संतुलन कीमत का निर्धारण, सरकार के किसी हस्तक्षेप के बिना, माँग और पूर्ति की शक्तियों के स्वतंत्र प्रभाव द्वारा होता है। किन्तु कभी-कभी जब बाजार में किसी वस्तु की कमी होती है तो इस स्थिति में निर्धारित कीमत बहुत ऊँची होती है। ऐसी स्थिति में कुछ उपभोक्ता, ऊँची कीमत होने के कारण, वस्तु को खरीदने में समर्थ नहीं होते। इसलिए उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करने के लिए सरकार को वस्तु की कीमत निश्चित करनी पड़ती है जो प्राय: संतुलन कीमत से कम होती है। इसी प्रकार जब खाद्यान्नों की फसल बहुत अच्छी होती है तो खाद्यान्नों की कीमत नीचे स्तर पर निर्धारित होती है। इस कीमत पर किसानों

को उनकी उत्पादन लागत भी नहीं मिल पाती। इसलिए कीमतों में अधिक कमी होने के कारण किसानों पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। ऐसी स्थिति में सरकार खाद्यान्नों की कीमत निश्चित करती है, जो कि संतुलन कीमत से अधिक होती है, जिससे उत्पादकों, विशेष रूप से किसानों के हितों की रक्षा हो सके। इसलिए कभी-कभी उपभोक्ताओं और उत्पादकों के हितों की रक्षा के लिए सरकार, कुछ वस्तुओं की कीमत निर्धारण में माँग और पूर्ति की शक्तियों की स्वतंत्र भूमिका नहीं चलने देती। सरकार वस्तु की कीमत या तो संतुलन कीमत से कम या अधिक निश्चित कर सकती है। इस प्रकार की कीमत को निर्देशित कीमत (सरकार द्वारा निर्धारित कीमत) कहते हैं। निर्देशित कीमत निम्न रूपों में हो सकती है–

नोट

(*i*) नियंत्रित कीमत (*ii*) समर्थन कीमत

(*iii*) सांकेतिक कीमत (*iv*) दोहरी कीमत

4.10.1 नियंत्रित कीमत

उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करने के लिए सरकार वस्तु की अधिकतम कीमत निश्चित करती है। यह अधिकतम कीमत प्राय: संतुलन कीमत से कम होती है। इसे नियंत्रित कीमत अथवा उच्चतम कीमत कहते हैं। सरकार द्वारा यह कीमत इसलिए निश्चित की जाती है क्योंकि गरीब लोग संतुलन कीमत पर वस्तु को खरीदने में समर्थ नहीं होते। यह स्थिति तब पैदा होती है जब किसी वस्तु का उत्पादन उसकी माँग से कम होता है। क्योंकि सरकार द्वारा निश्चित कीमत संतुलन कीमत से कम होती है, इससे वस्तु की आधिक्य माँग उत्पन्न हो सकती हैं जिसका अर्थ है कि क्रेता उससे अधिक खरीदने को तत्पर होते हैं जितना विक्रेता बेचने के इच्छुक होते हैं। भारत में सरकार नियंत्रित कीमत अथवा उच्चतम कीमत उन वस्तुओं के लिये निर्धारित करती है जिन्हें वह आम जनता के लिए अनिवार्य समझती है। उदाहरण के लिए कुछ वस्तुएँ जैसे गेहूँ, चावल, चीनी, मिट्टी का तेल आदि की नियंत्रित कीमतें हैं। उच्चतम कीमत पर वस्तु की आधिक्य माँग होने के कारण सरकार राशनिंग प्रणाली अपनाती है। राशनिंग से अभिप्राय प्रति व्यक्ति प्रति इकाई समय में कोटा नियत करने से है। उच्चतम कीमत पर वस्तु की आधिक्य माँग होने के कारण काला बाज़ारी की समस्या भी उत्पन्न हो सकती है। काला बाजारी वह स्थिति है जिसमें विक्रेता गैर कानूनी तौर पर वस्तु की ऐसी कीमत वसूले करता है जो नियंत्रित कीमत से बहुत अधिक होती है। काला बाजारी की समस्या को दोहरी कीमत नीति द्वारा हल किया जा सकता है जिसकी व्याख्या इस पाठ के अंतिम भाग में की जायेगी।

4.10.2 समर्थन कीमत

कभी-कभी, उत्पादकों, मुख्य रूप से किसानों के हितों की रक्षा करने के लिए सरकार वस्तु की न्यूनतम कीमत निर्धारित करती है जिसका भुगतान उत्पादकों को करना होता है। यह कीमत प्राय: संतुलन कीमत से अधिक होती है। यह समस्या तब उत्पन्न होती है जबकि उत्पादकों को संतुलन कीमत पर उनकी पूरी उत्पादन लागत नहीं मिलती। सरकार द्वारा उत्पादकों के हितों की रक्षा करने के लिए निश्चित की गई यह कीमत समर्थन कीमत कहलाती है। इससे वस्तु की पूर्ति आधिक्य की समस्या उत्पन्न हो सकती है। इसका तात्पर्य यह है कि क्रेता जितनी वस्तु खरीदना चाहते हैं विक्रेता उससे वस्तु बेचना चाहते हैं।

भारत में, खाद्यान्न जैसे गेहूँ और चावल आदि की नीची कीमत का किसानों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। उनकी खाद्यान्न उत्पादन में रूचि समाप्त हो सकती है। इससे खाद्यान्न की बहुत अधिक कमी हो सकती है। इसलिए, कृषि उत्पादों के लिए, समर्थन कीमत की व्यवस्था अपनायी जाती है। समर्थन कीमत की यह व्यवस्था किसानों के लिए यह सुनिश्चित करती है कि वे अपने उत्पादों को कम से कम इस कीमत पर बेच सकेंगे।

समर्थन कीमत पर वस्तु की पूर्ति आधिक्य की स्थिति में, सरकार वस्तु की कितनी भी मात्रा, वस्तु का बफर स्टॉक करने के लिए, खरीदने के लिए तैयार रहती है।

4.10.3 सांकेतिक कीमत

कुछ वस्तुएँ और सेवाएँ ऐसी होती है जिन्हें जीवन के अस्तित्व के लिए अनिवार्य समझा जाता है, जैसे चिकित्सा सेवाएँ, स्वास्थ्य सेवाएँ, शिक्षा सेवाएँ आदि। गरीब लोग प्रचलित बाजार कीमत पर इन सेवाओं का

उपयोग करने में असमर्थ रहते हैं इसलिए सरकार और कुछ निजी धमार्थ संस्थाएँ इन सेवाओं को ऐसी कीमत पर उपलब्ध कराती हैं जो इनकी प्रति इकाई उत्पादन लागत से भी बहुत कम होती है। यह कीमत इन वस्तुओं और सेवाओं की सांकेतिक कीमत कहलाती है। सरकारी स्कूलों में ली जाने वाली ट्यूशन फीस, सरकार द्वारा प्रति विद्यार्थी लागत व्यय से बहुत कम होती है।

नोट

सांकेतिक कीमत इन सेवाओं का दुरूपयोग रोकने के लिए वसूल की जाती है, अन्यथा इन वस्तुओं को नि:शुल्क भी उपलब्ध कराया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि इन सेवाओं को नि:शुल्क उपलब्ध कराया जाय तो कुछ लोग नि:शुल्क आवास और भोजन प्राप्त करने के लिए अस्पतालों में अधिक समय तक ठहरने का प्रयत्न कर सकते हैं।

4.10.4 दोहरी कीमत

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि कीमत नियंत्रण के कारण वस्तु की कमी उत्पन्न हो सकती है क्योंकि विक्रेता सरकार द्वारा नियंत्रित कीमत पर वस्तु की काफी मात्रा की पूर्ति करने के इच्छुक नहीं होते क्योंकि यह कीमत संतुलन कीमत से कम होती है। इससे वस्तु की काला बाजारी की स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है। इस स्थिति से बचने के लिए सरकार दोहरी कीमत नीति अपनाती है। इस नीति के अंतर्गत वस्तु के कुल उत्पादन का एक भाग नियंत्रित कीमत पर उचित दर की दुकानों के माध्यम से बेचा जाता है और शेष भाग प्रचलित बाजार कीमत पर बेचा जाता है जिसका निर्धारण माँग और आपूर्ति की शक्तियों द्वारा होता है। इस कीमत पर वस्तु की कितनी भी मात्रा खरीदी जा सकती है। उदाहरण के लिए, बी.पी.एल. (गरीबी रेखा से नीचे) राशन कार्ड वाले व्यक्तियों को सरकार, उचित दर दुकानों के माध्यम से गेहूँ, चावल और चीनी नियंत्रित कीमत पर बेचती है और उत्पादकों को उत्पादन का शेष भाग खुले बाजार में संतुलन कीमत पर बेचने की अनुमति भी देती है।

4.10.5 बाजार कीमत पर, करों और आर्थिक सहायता का प्रभाव

सरकार, वस्तुओं के उत्पादन तथा उनकी बिक्री तथा कच्चे माल आदि के आयात पर विभिन्न प्रकार के कर लगाती है जो क्रमश: उत्पादन शुल्क, बिक्री कर और आयात शुल्क के रूप में होते हैं। ये कर सरकार को, उत्पादकों, विक्रेताओं तथा इन वस्तुओं के आयात करने वालों द्वारा भुगतान किए जाते हैं। इन वस्तुओं के उत्पादक, विक्रेता और आयात करने वाले उन्हें इन वस्तुओं के क्रेताओं से वसूल कर लेते हैं। इसलिए ये कर इन वस्तुओं की बाजार कीमत में वृद्धि करते हैं। यदि सरकार इन करों की दर बढ़ा देती है तो इन वस्तुओं की बाजार कीमत भी बढ़ जायेगी।

दूसरी ओर, वस्तुओं को आम आदमियों को उचित मूल्य पर उपलब्ध कराने के लिए, सरकार कुछ वस्तुओं के उत्पादकों को आर्थिक सहायता भी देती है। इसलिए, आर्थिक सहायता में वृद्धि करने से वस्तु की बाजार कीमत में कमी हो जाती है। उदाहरण के लिए सरकार मिट्टी का तेल, खाना पकाने की गैस आदि पर आर्थिक सहायता देती है।

4.10.6 सार्वजनिक वितरण प्रणाली (सा.वि.प्र.)

गरीब लोग अनिवार्य वस्तुओं को भी उनकी बाजार कीमत पर खरीदने में समर्थ नहीं होते। ऐसे लोगों की सहायता करने के लिए भारत में अपनायी जाने वाली विधियों में से, एक सार्वजनिक वितरण प्रणाली है। इस पद्धति के अंतर्गत, अनिवार्य वस्तुएँ जैसे गेहूँ, चावल, चीनी आदि को राशन की दुकान के नाम से लोकप्रिय उचित दर दुकानों के माध्यम से आम आदमियों को सस्ती दर पर उपलब्ध कराया जाता है। इन वस्तुओं को, राशन कार्ड नामक पहचान पत्र द्वारा बेचा जाता है। भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अनिवार्य तत्व निम्नलिखित हैं:

1. **आर्थिक सहायता:** सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से बेची जाने वाली वस्तुओं पर सरकार आर्थिक सहायता देती है। इसलिए इस प्रणाली के माध्यम से बेची जाने वाली वस्तुओं की कीमत अपेक्षाकृत कम होती है।

2. **निश्चित मात्रा (राशनिंग):** सरकार एक व्यक्ति की न्यूनतम आवश्यकता के आधार पर प्रति समय इकाई प्रति व्यक्ति की मात्रा निश्चित कर देती है। प्रत्येक परिवार को परिवार में सदस्यों की संख्या का उल्लेख करते हुए एक राशन कार्ड दे दिया जाता है। प्रत्येक परिवार अपने परिवार में सदस्यों की संख्या के अनुसार उचित दर दुकान से वस्तु की निश्चित मात्रा खरीद सकता है।

3. **उचित दर दुकान (उ.द.दु.):** सरकार राशन की दुकान के नाम लोकप्रिय उचित दर दुकानों के माध्यम से इन वस्तुओं सको बेचती है। ये दुकाने देश के सभी भागों में खोली जाती हैं। सरकार ये वस्तुएँ इन दुकान मालिकों को प्रत्येक दुकान पर पंजीकृत राशन कार्डों की संख्या के अनुसार उपलब्ध कराती है। इन दुकानों के मालिकों को उनकी कुल बिक्री पर कमीशन का भुगतान किया जाता है।

नोट

4.11. सारांश (Summary)

- श्रम बाजार एक ऐसी जगह है जहाँ श्रम की माँग एवं पूर्ति द्वारा श्रम की मात्रा एवं श्रम के मूल्य (वेतन) का निर्धारण किया जाता है।
- **श्रम बाजार की माँग** से अभिप्राय है कंपनियों द्वारा किसी कार्य को करवाने के लिए जब श्रमिक की जरुरत होती है या उनके द्वारा माँग होती है। वे विभिन्न कार्यों के लिए विभिन्न वेतन देते हैं।
- **श्रम बाजार की आपूर्ति** से अभिप्राय है वे सभी लोग जोकि वर्तमान समय में विभिन्न वेतन दर पर काम करने के लिए तैयार हैं एवं अपने कौशल का प्रयोग करके नियोक्ता के प्रति अपना योगदान देना चाहते हैं।
- रिकार्डो के अनुसार विस्तृत खेती में भेदात्मक लगान उत्पन्न होता है। भेदात्मक लगान की इस धारणा में रिकार्डो इस पूर्व मान्यता को लेकर चलते हैं कि एक द्वीप में अनेक ऐसे भू-खंड है जिनकी उर्वरता (Fertility), गुण (Quality), स्थिति (Location) आदि में एक समानता न होकर भिन्नता होती है।
- रिकार्डो के विचार में यदि भूमि के विभिन्न टुकड़ों की उर्वरता एकसमान भी है तब भी उनकी स्थिति में अंतर होने के कारण लगान उत्पन्न हो सकता है।
- सीमांत संसाधन लागत इनपुट की एक और इकाई को नियोजित करके अतिरिक्त लागत है इसकी गणना इनपुट की संख्या में परिवर्तन से विभाजित कुल लागत में परिवर्तन से होती है।
- निर्देशित कीमतें वे कीमतें होती हैं, जो सरकार द्वारा उपभोक्ताओं या उत्पाकों के हितों की रक्षा करने के लिए, संतुलन कीमत से कम या अधिक निश्चित की जाती है।
- नियंत्रित कीमत वह कीमत होती है, जो सरकार द्वारा, उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करने के लिए संतुलन कीमत से कम निश्चित की जाती है।
- समर्थन कीमत वह कीमत होती है जो सरकार द्वारा, उत्पादकों विशेष रूप से किसानों के हितों की रक्षा करने के लिए, संतुलन कीमत से अधिक निश्चित की जाती है।
- सांकेतिक कीमत वह कीमत होती है जो सरकार/निजी धर्मार्थ संस्थाओं द्वारा वस्तु की प्रति इकाई उत्पादन लागत से बहुत कम निश्चित की जाती है।
- दोहरी कीमत पद्धति के अंतर्गत, कुल उत्पादन का एक भाग, नियंत्रित कीमत पर उचित दर दुकानों के माध्यम से बेचा जाता है और शेष उत्पादन सरकार के बिना हस्तक्षेप के माँग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित कीमत पर खुले बाजार में प्रचलित कीमत पर बेचा जाता है।
- किसी वस्तु पर कर में वृद्धि, वस्तु की बाजार कीमत में वृद्धि करती है।
- किसी वस्तु पर दी गई आर्थिक सहायता वस्तु की बाजार कीमत को घटाती है।
- वस्तुएँ सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से राशन कार्डों के आधार पर बेची जाती हैं।

नोट

4.12. अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. अर्थ बाजार को परिभाषित करते हुए उसकी विशेषताओं का वर्णन करो।
2. व्युत्पन्न माँग क्या है संक्षेप में वर्णन करो।
3. रिकार्डो का क्या सिद्धांत है? सिद्धांत की संक्षेप में व्याख्या करो।
4. श्रम संघ से आपका क्या तात्पर्य है?
5. स्थिति लगान से आपका क्या तात्पर्य है?
6. नियंत्रित कीमत क्या है? ये उपभोक्ताओं को किसी प्रकार प्रभावित करती है?
7. समर्थन कीमत क्या है? इसका उत्पादकों पर क्या प्रभाव पड़ता है?
8. सांकेतिक कीमत क्या है? किसी वस्तु की सांकेतिक कीमत रखने के पीछे क्या उद्देश्य होता है?
9. दोहरी कीमत नीति की पद्धति की व्याख्या कीजिए। यह गरीबों की सहायता कैसे करती है?
10. कर और आर्थिक सहायता किसी वस्तु की बाजार कीमत को कैसे प्रभावित करते हैं?
11. सार्वजनिक वितरण प्रणाली से क्या अभिप्राय है? इसके आवश्यक तत्वों की संक्षेप में व्याख्या कीजिए।